उड़ते पत्ते

[मौलिक सामाजिक उपन्यास]

लेखक
देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

प्रकाशक
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०,
इलाहाबाद
१९५६

प्रकाशक
बी० एन० माथुर,
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०,
इलाहाबाद

मूल्य २॥

मुद्रक
अग्रवाल प्रेस,
इलाहाबाद



लेखक

अपनी बात

'उड़ते पत्ते' मेरा ग्यारहवाँ मौलिक उपन्यास है। अपने जीवन के पैंतालीस वसन्त देखकर जिस मोड़ पर इस समय मैं जा पहुँचा हूँ, उसे देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः यही मेरा अन्तिम उपन्यास रहे। इसका कथानक गणतंत्र भारत के स्वतंत्र वातावरण की ऐसी प्रारंभिक परिस्थितियों और विडम्बनाओं की पृष्ठभूमि पर निर्मित किया गया है, जो राष्ट्र, समाज और व्यक्ति—सभी के लिए किसी इन्द्रजाल से कम नहीं।

स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए जिन अगणित व्यक्तियों ने अपनी आहुतियाँ दीं; जिन अनेक साहित्यकारों ने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से जन-जन को प्रबुद्ध बनाया; किन्तु स्वयं तिल-तिलकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देने की अभिशप्त घड़ियों का उन्हें सामना करना पड़ा और अब तक जिनके सामने यही विवशता है, उनकी ओर न तो हमारे राष्ट्र ने समुचित ध्यान दिया, न समाज ने। इस विषम वातावरण ने हमारे समाज को इतना विषाक्त कर दिया है कि आज घर-घर में घोर अशान्ति और दारुण व्यथा-पीड़ा की ही काली छाया दीख रही है।

बीसवीं सदी की उच्च शिक्षाप्राप्त सन्तति भी अपने माता-पिता और समाज के प्रति कितनी उच्छृङ्खल, कर्त्तव्यच्युत और उद्दण्ड सिद्ध हो रही है, इसकी सजीव झाँकी 'उड़ते पत्ते' में चित्रित करने की चेष्टा की गई है। प्रकारान्तर में ऐसी सन्तति हमारे राष्ट्र के लिए कितनी विघातक होगी, यह कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

शाखा-च्युत उड़ते पत्ते जिस प्रकार सर्वथा अस्तित्त्वहीन रहते हैं, ठीक उसी प्रकार इस विश्व के रंगमंच पर मानव भी, परिस्थितियों की आँधी के झोंकों से, कहीं-का-कहीं जा पहुँचता है और किसी काम का नहीं रह जाता। वह न केवल कर्त्तव्यच्युत और उच्छृङ्खल हो जाता है; प्रत्युत किसी अज्ञात-सी चिनगारी का स्पर्श पाकर जहाँ स्वयं जलकर भस्म हो जाता है, वहीं दूसरों को भी जलाकर भस्म कर डालता है। यह विनाशक प्रवृत्ति आज के मानव में और आज की सन्तति में क्यों पनप रही है, इसका मनोवैज्ञानिक और सकेतिक विश्लेषण 'उड़ते पत्ते' की कथावस्तु में सन्निहित है।

'उड़ते पत्ते' मूलतः सामाजिक उपन्यास है; किन्तु राष्ट्रीय चेतना की उस पृष्ठभूमि पर इसका निर्माण किया गया है, जो आज के युग में समाज के प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति को प्रभावित कर रही है। इस उपन्यास के देवदत्त शर्मा, प्रफुल्ल घोष, निर्मल नागर और सुमित्रा तथा नलिनी की विचार-धाराएँ, यदि पाठकों के मनोरंजन के साथ-साथ उनको तनिक भी प्रभावित कर सकीं और हरीश-जैसी उच्च-शिक्षाप्राप्त, किन्तु कर्त्तव्य-च्युत और उच्छृङ्खल सन्तति से सदा सतर्क रहने और उसके प्रति अपने माया-मोह के आवरण को उतार फेकने की प्रेरणा दे सकीं, तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

हिन्दी संसार के मूर्धन्य समालोचक, साहित्य-वाचस्पति श्री पदुमलाल पुन्नालालजी बख्शी ने 'उड़ते पत्ते' की पाण्डुलिपि देखकर ही मई १९५५ की 'सरस्वती' में इसके संबंध में जो आलोचनात्मक और प्रशंसात्मक विचार व्यक्त किए थे, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ और मुझे यह विश्वास है कि जो रस श्री बख्शीजी को इस उपन्यास में मिला है, वही रस इसके सभी पाठकों को उपलब्ध होगा।

इलाहाबाद,
२० जुलाई, १९५६

—देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

उड़ते पत्ते

—१—

थकी-माँदी सुमित्रा बिस्तर पर जाकर लेटी ही थी कि टेलीफोन की घण्टी टनटना उठी। क्षण भर को वह एक खीझ से भर उठी। यह टेलीफोन भी अजीब बला है! दिन हो या रात, कोई सोता हो या जागता; लेकिन टेलीफोन की घण्टी है कि अचानक टनटना उठती है, और जब तक रिसीवर हाथ में लेकर उसके एक छोर को कान के पास और दूसरे को ओठों के निकट ले जाकर दो-एक बातें न कर ली जाएँ, तब तक छुटकारा नहीं मिलता। यों प्रेम की उस रङ्गीन दुनिया की बात दूसरी है, जिसमें प्रेमी-प्रेमिका इस टेलीफोन की घण्टी को ही मिलन-दूत समझा करते हैं।

सुमित्रा अभी-अभी शहर से लौटकर घर आई थी। भारतीय गणतन्त्र के जन्मोत्सव पर मनाए गए दीपोत्सव को देखने वह गई थी। यह दीपोत्सव ही भारतीय इतिहास की वह मंगल वेला थी, जिसे प्राप्त करने के लिए हमारे देशवासियों ने जाने क्या-क्या होम कर दिया! अगणित बलिदानों और असीम अत्याचारों की कहानियाँ इस मंगल वेला की पृष्ठभूमि पर सिसक रही हैं। यही कारण था कि भारत के जन-जन ने दीपोत्सव मनाकर अपना हर्षोल्लास व्यक्त किया। परन्तु करोड़ों दीपों की इस जगमगाहट में भी एक मूक उदासीनता की छाया का अस्तित्त्व था। अज्ञान और सुप्त मानव भले ही इस काली छाया को न देख सका हो; किन्तु सुमित्रा के अन्दर की जागरूक नारी ने उस छाया को स्पष्टतः देखा, समझा, और कदाचित् इसीलिए दीपोत्सव देखकर लौटते ही वह एकदम लेट रही।

सुमित्रा ने स्वीकार किया कि यह सब स्वाभाविक ही है। किसी त्योहार की रस्मअदाई कर लेने से ही जिस प्रकार आनन्द और उल्लास का उत्स नहीं फूट निकलता, उसी प्रकार दीपोत्सव मना लेने से ही भारत का जन-जन वास्तविक आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता। यह सब तो मानव की परिस्थितियों और तज्जन्य मनोदशा पर ही निर्भर करता है। और, स्वतन्त्र भारत को जिन भूकम्पी परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है, उनमें रहकर सच्चा आनन्द और उल्लास सम्भव नहीं। आज की अगणित समस्याओं के समाधान में उलझकर हमारी राष्ट्रीय सरकार जनसाधारण के भोजन-वस्त्र और मज़दूरों के पारिश्रमिक की उलझी लड़ियाँ भी तो अब तक नहीं सुलझा सकी। फिर, हमारे राष्ट्र का यह दुर्भाग्य ही है कि जिस महापुरुष की कठोर साधना के फलस्वरूप भारत स्वतन्त्र हुआ, उसी की निर्मम हत्या स्वतन्त्रता के प्रथम वर्ष में ही कर डाली गई। राष्ट्रपिता को सदा के लिए खोकर और अप्रत्याशित विषम परिस्थितियों में पड़कर चक्की के दो पाटों के बीच पिसती जनता भला, गणतन्त्र स्थापना की मंगल वेला में भी सच्चे आनन्द और उल्लास का अनुभव कैसे कर सकती ?

सुमित्रा आज प्रभात वेला से ही इन्हीं विचार-धाराओं पर तिर रही थी। उसकी तनिक भी इच्छा नहीं थी कि वह शहर का दीपोत्सव देखने जाए। परन्तु जिस छात्रावास की वह अभिभाविका है और जिस महिला-विद्यालय की वह आचार्या है, उसकी छात्राओं ने जब विशेष अनुरोध किया, तो उसे अपनी मनोदशा को दबाकर जाना ही पड़ा। उसका मन उद्विग्न था, तन शिथिल था और उसके विचारों में एक ज्वार था। ऐसी स्थिति में छात्राओं के साथ इधर-उधर घूमते-घामते वह शीघ्र ही थककर चूर हो गई। यही कारण था कि लौटते ही वह अपने बिस्तर पर जा लेटी।

उद्विग्न सुमित्रा जब चुपचाप लेटी रहना चाहती थी, तभी टेलीफोन की घण्टी टनटना उठी। बड़ी खीझ हुई सुमित्रा को; परन्तु इस खीझ पर नियन्त्रण कर वह उठ बैठी, और परिचारिका न जब टेलीफोन का रिसीवर उसके हाथों पर धर दिया, तो वह सचेष्ट होती हुई बोली—'हल्लो !'

टेलीफोन में सुनाई पड़ा—'गान्धी-महिला-विद्यालय की आचार्या कुमारी सुमित्राजी से मैं बात करना चाहती हूँ।'

आवाज़ पहचानने में सुमित्रा को देर नहीं लगी। श्रीमती नागर बोल रही थीं। इस नागर-परिवार से सुमित्रा की बड़ी घनिष्ठता है। पंजाब के नाते इस परिवार का स्नेह सुमित्रा को स्वभावतः प्राप्त हो चुका है।

वह दिन क्या सुमित्रा कभी इस जीवन में भूल सकती है, जब पाकिस्तान के कुछ हिमायती दानवों ने पश्चिमी पंजाब पर कहर बरसा दिया था। वहाँ के अल्पसंख्यक हिन्दुओं का जीवन नरक बन गया था और अपनी ही जन्मभूमि में उन्हें साँस लेना भी दूभर हो उठा था। आगजनी, लूटमार, बलात्कार और दिन-दहाड़े होनेवाली हत्याओं से त्रस्त होकर अन्य अल्पसंख्यक हिन्दुओं की भाँति सुमित्रा को भी अपने कहे जानेवाले पंजाब से सदा के लिए बिदा ले लेनी पड़ी थी।

मीलों लम्बे काफिले के साथ सुमित्रा अपने पिता के साथ भारत की राजधानी दिल्ली की तरफ बढ़ी आ रही थी कि मार्ग में ही आक्रमणकारियों का भीषण हमला हुआ और सैकड़ों नर-नारियों के साथ सुमित्रा के पिता भी उसी हमले में इस दुनिया से कूच कर गए।

सुमित्रा को उस दिन की स्मृति चाहे जब दुःखी कर जाती है। आँसुओं की गंगा-यमुना से उसने अपने पिता के निर्जीव शरीर को तर कर दिया था, और अपने जन्मदाता की ससम्मान अन्त्येष्टि करने की साध पूरी न होते देख, सिसक-सिसककर अपनी चेतना खो दी थी। उसे स्मरण नहीं कि उसकी मूर्च्छना के बीच, उसके पिता की अन्त्येष्टि किस प्रकार और कहाँ की गई। काफिले के परिचित लोगों ने उस घटनास्थल से लगभग बीस-पच्चीस मील की दूरी पर, रात्रि के सघन अन्धकार में, सुमित्रा की चेतना लौटने पर यही कहा था कि अन्य सैकड़ों आहत नर-नारियों के साथ उसके पिता को भी घटनास्थल पर ही ससम्मान दफना दिया गया था।

अपने पिता को खोकर सुमित्रा रात-दिन अभिभूत रहने लगी। किन्तु जब ३० जनवरी १९४८ को संध्या समय एक आततायी मरहठा नाथूराम विना-

यक गोडसे ने पिस्तौल की गोलियों का निशाना बनाकर राष्ट्रपिता गान्धी की हत्या कर डाली, तब सुमित्रा के मन पर गहरी प्रतिक्रिया हुई। उसने स्वीकार किया कि जब सारा राष्ट्र अपने राष्ट्रपिता के प्राणों की रक्षा न कर सका, तब सुमित्रा बेचारी अपने पिता की रक्षा कैसे कर सकती थी! और, राष्ट्र-पिता के निधन पर समस्त राष्ट्र के बहनेवाले आँसुओं ने, सुमित्रा के उस दुःख को बहुत-कुछ धूमिल कर दिया, जो उसे अपने पिता के निधन पर रात-दिन बेचैन किए रह ा था। उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि राष्ट्रपिता के सिद्धान्तों पर चलकर वह अपने देश की बहिनों की सेवा कर अपने मानवीय कर्त्तव्यों को पूरा करेगी।

दिल्ली पहुँचकर उसे अपने परिचितों का स्मरण करना पड़ा। श्रीमती नागर का ध्यान उसे इसी सिलसिले में आया। एक समय था, जब श्रीमती नागर–नलिनी–उसकी सहपाठिनी रह चुकी थी। परन्तु मैट्रिक हो जाने पर नलिनी के पिता ने एक सम्पन्न परिवार के तरुण के साथ नलिनी के हाथ पीले कर दिए थे और उसकी शिक्षा बन्द हो गई थी। सुमित्रा एम० ए० तक पढ़ती चली गई और बाद में एक कालेज में प्रोफ़ेसर हो गई थी।

नालिनी अपने पति के साथ तभी से प्रयाग में रहती है। जब कभी वह अपनी जन्मभूमि गई, तब इस सुमित्रा से बराबर मिलती रही। इसी स्नेह-सम्बन्ध के आधार पर सुमित्रा ने दिल्ली से नलिनी को बिना किसी प्रकार की सूचना दिए ही, इलाहाबाद के लिए प्रस्थान कर दिया। डूबते को तिनके का सहारा।

और, जब पता लगाते-लगाते सुमित्रा अचानक ही नलिनी के घर जा पहुँची, तब नलिनी को पहले तो कुछ आश्चर्य हुआ; परन्तु समाचारपत्रों में पढ़े समाचारों और स्वयं सुमित्रा के मुख से उसकी करुण कहानी सुनकर उसे सन्तोष हुआ कि उसकी सहपाठिनी किसी तरह जीवित तो है। स्वभावतः सुमित्रा को समस्त सुविधाएँ नलिनी के परिवार में बिना माँगे मिल गईं।

राष्ट्रपिता की अप्रत्याशित हत्या हो जाने पर उनकी स्मृति में प्रयाग के कुछ कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं की प्रेरणा से गान्धी-महिला-विद्यालय की स्थापना

ली गई। इस स्थापना में नलिनी के पति का अनन्य हाथ था। इस दशा में आचार्या की नियुक्ति का प्रश्न उपस्थित होने पर सुमित्रा को ही यह सम्मान दिया गया। सुमित्रा ने अपनी योग्यता से शीघ्र ही यह प्रमाणित कर दिया कि उसका चुनाव सर्वथा उपयुक्त था।

सुमित्रा के जीवन की इतनी बड़ी कहानी जिस नलिनी के साथ विजड़ित हो, उसकी आवाज को टेलीफोन में पहचानने में भला, सुमित्रा कैसे चूक सकती थी। उसने मुसकराते हुए कहा—'नमस्ते, जीजी! कहिए, इतनी रात बीते कैसे स्मरण किया?'

'अरे, आज भारतीय जनतन्त्र के जन्मोत्सव की मंगल वेला में जब घर-घर दीपोत्सव मनाया जा रहा है, तब तुम मेरे यहाँ नहीं आईं?'

'मैंने व्यक्तिगत रूप से यह दीपोत्सव नहीं मनाया, जीजी! और.....।'

'इसीलिए मेरे यहाँ नहीं आईं।' बीच में ही नलिनी बोल उठी—'मैं तुम्हारा हृदय जानती हूँ, तुम्हारे हृदय की पीड़ा भी पहचानती हूँ। लेकिन मेरे यहाँ तुम्हें आना ही होगा। मैं जानती हूँ, अकेली रहकर तुम वहाँ जाने क्या-क्या सोच रही होगी। अभी आओ। कार भेज रही हूँ। हम सब तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे हैं। लता बेटी भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। नहीं आओगी, तो जानती हो, दीपावली पर जिस प्रकार जुवा खेला जाता है, आज भी हम लोग जुवा खेलने की तैयारी कर रहे हैं, और तुम्हारे न आने पर मैं तुम्हें ही जुए के दाँव पर लगा दूँगी। बड़ी बहिन के नाते मुझे यह अधिकार है। कहीं मैं हार गई, तो समझ लो कि......।'

'नहीं—नहीं, ऐसा न कीजिए।' सुमित्रा ने मुसकराते हुए कहा—'गाड़ी भेज दीजिए, मैं फौरन चली आऊँगी।' और सुमित्रा ने रिसीवर रख दिया। इस प्रसंग को सुमित्रा आगे नहीं बढ़ाना चाहती थी।

— २ —

दीपोत्सव और उल्लास !

पूजन और जुवा !

सुमित्रा को जागरूक नारी ने स्वीकार किया कि इस दुनिया का अपना रङ्ग-ढङ्ग कभी बदल नहीं सकता। जिस तरह सूरज, चाँद और सितारे अपनी रफ्तार से सदा प्रकाश और अन्धकार के साथ आँखमिचौनी खेलते रहतें हैं, उसी तरह इस दुनिया की गतिविधि में भी कभी कोई अन्तर न आएगा। कोई मरे या जिए, कोई भूखा रहे या नंगा; उत्सवों और त्योहारों का उल्लास किसी-न-किसी रूप में बराबर बना रहेगा।

सुमित्रा अनिच्छापूर्वक बिस्तर से उठी। उसने अपनी पोशाक बदली और ड्राइंगरूम में बैठ, वह कार की प्रतीक्षा करने लगी।

सुमित्रा को कहीं बाहर जाने के लिए तैयार देख, परिचारिका ने पूछा—'कहीं जा रही हैं आप ?'

'हाँ, नागर बहिन ने बुलाया है। कार आ रही है।'

और, ठीक इसी समय हार्न देती कार फाटक पर आ खड़ी हुई। सुमित्रा ने परिचारिका से कहा—'कम-से-कम दो घण्टे लगेंगे। तुम सो जाना। मैं आकर 'काल-बैल' दबाकर तुम्हें जगा लूँगी।' और सुमित्रा कार की तरफ बढ़ ही रही थी कि टेलीफोन की घण्टी फिर एक बार जोरों से टनटना उठी।

सुमित्रा के बढ़ते पग अचानक रुक गए। उसे लगा कि यह टेलीफोन की घण्टी आज शायद उसे दम न लेने देगी––सोना तो बहुत दूर की बात है। फिर नागर बहिन की कार फाटक पर खड़ी है। उन्हें वह अभी-अभी वचन भी दे चुकी है। इस दशा में उसे कार पर जाना ही होगा।

सुमित्रा कुछ क्षण इसी उलझन में खड़ी रही कि वह कार की ओर बढ़े या लौटकर टेलीफोन सुनने जाए।

परिचारिका अपनी स्वामिनी की उलझन शायद समझ गई; बोली—'यह टेलीफोन की घण्टी आज आपको बड़ा परेशान कर रही है। आपके चले जाने पर तो मैं कह देती कि...... ।'

'कि मैं बाहर गई हूँ!' बीच में ही सुमित्रा ने परिचारिका की बात पूरी कर दी––'यही न?'

'जी! आप कहें तो यही कह दूँ मैं? आप जाइए, रात भीग रही है।' पारिचारिका ने अनुरोध के स्वर में कहा।

'नहीं!' सुमित्रा ने कहा––'जब तक मैं यहाँ हूँ, झूठ क्यों कहा जाए। फिर पता नहीं, किसका फोन हो और कैसा जरूरी काम हो। मैं स्वयं उत्तर दिए देती हूँ। आज भारतीय जनतन्त्र के जन्मोत्सव की इस मंगल वेला में जब घर-घर दीपोत्सव मनाया जा रहा हो, तब हम सभी को यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि राष्ट्रपिता गान्धी के व्रत—सत्य और अहिंसा—का हम आजीवन पालन करेंगे। फिर किसीको झूठ कहकर धोखा क्यों दिया जाए?' और सुमित्रा टेलीफोन की तरफ बढ़ गई।

परन्तु टेलीफोन की घण्टी थी कि दम नहीं ले रही थी—अनवरत टनटना रही थी। बड़ी खीझ हुई सुमित्रा को। एक क्षण को उसे लगा कि इस टेलीफोन को वह अपने निवास-स्थान से हटाकर छात्रावास में कहीं रख दे। लेकिन छात्रावास में, सम्भव है, इस टेलीफोन का दुरुपयोग होने लगे और कुछ मनचली छात्राओं का रोमांस चलने लगे। नहीं-नहीं, ऐसा वह नहीं करेगी।····

'हलो !' टेलीफोन का रिसीवर उठाकर सुमित्रा ने पूछा—'किससे बात करना चाहते हैं आप ?'

'जी, मैं आचार्या सुमित्राजी से बात करना चाहती हूँ ।' बोलनेवाली ने 'चाहती' पर पर्याप्त जोर दिया ।

'क्षमा कीजिए मेरे सम्बोधन पर ।' सुमित्रा ने मुसकराते हुए कहा—'कहिए, मैं ही सुमित्रा हूँ ।'

'ओह ! नमस्ते ! मैं डिप्टी कलेक्टर सिनहा साहब के घर से बोल रहीं हूँ । आपकी शिष्या रजनी की माँ हूँ ।'

'हाँ-हाँ, कहिए, क्या आज्ञा है ? रजनी तो आज छात्रावास से छुट्टी लेकर आपके साथ घर पर है न ! भारतीय गणतन्त्र के जन्मोत्सव की मंगल वेला में मनाए जानेवाले इस दीपोत्सव पर आप मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार कीजिए ।'

'शुभकामनाओं के लिए हम लोग आपके आभारी हैं । रजनी कह रही है कि इस अभूतपूर्व अवसर पर हम लोग जो दीपोत्सव मना रहे हैं, उसमें पधारने की प्रार्थना वह पहले ही आपसे कर चुकी है; परन्तु अब तक आप आ नहीं सकीं । यदि कष्ट न हो, तो कार भेज दूँ ? दस मिनट के लिए ही सही; परन्तु आइए अवश्य ।'

'सचमुच मैं भूल गई । कुछ छात्राओं के साथ मुझे अनिच्छापूर्वक शहर जाना पड़ा । थककर चूर हो रही हूँ । लेकिन रजनी का आग्रह टाल नहीं सकती । फिर आपने स्वयं इतनी चिन्ता की है । मैं अभी आ रही हूँ । कार भेजने की आवश्यकता नहीं । श्रीमती नागर की कार अभी-अभी आ चुकी है । उनके यहाँ होती हुई, उन्हीं की कार पर मैं आपकी सेवा में भी पहुँच रही हूँ । श्रीमती नागर के घर कुछ देर लग जाए, तो आप यह न समझ लें कि मैं फिर भूल गई । उनसे छुट्टी मिलते ही मैं आपके यहाँ निश्चय ही पहुँचूँगी ।'

'अच्छी बात। हम सब आपकी बाट जोहेंगे। अग्रिम धन्यवाद !'

सुमित्रा ने रिसीवर फोन पर रख दिया और ड्राइंगरूम की तरफ बढ़ गई। परिचारिका से बोली—'अब मैं जा रही हूँ। एक जगह का निमन्त्रण और मिल गया है। बहुत देर होगी लौटने में।' और सुमित्रा जाकर कार पर बैठ गई।

बिजली के अगणित रंग-बिरंगे लट्टुओं के जगमगाते प्रकाश में कार तीव्र गति से श्रीमती नागर के घर की ओर दौड़ी जा रही थी। सड़क की दोनों बाजुओं पर खड़े मकानों की ऊँची-ऊँची छतों पर सहस्त्रों जलते दीपक यह सूचित कर रहे थे कि हमारा राष्ट्र अभूतपूर्व उल्लास मना रहा है।

दूर कहीं किसी घण्टा घर की घड़ी दस बजा रही थी। परन्तु कार में बैठी सुमित्रा अपने-आपमें ही उलझ रही थी। टेलीफोन की घण्टी को लेकर वह वैज्ञानिक आविष्कारों की उन्नति पर एक क्षण के लिए विचार करने लगी। बिजली से लेकर परमाणु-बम और हाईड्रोजन-बम तक का आविष्कार हो चुका है।

वैज्ञानिक आविष्कारों का जहाँ तक सम्बन्ध है, सुमित्रा ने स्वीकार किया कि दुनिया बहुत उन्नत हो चुकी है; परन्तु मानवता का जहाँ तक सम्बन्ध है, यह दुनिया दिनोंदिन घोर संकीर्ण होती जा रही है—स्वार्थ की सीमित-सी संकीर्ण परिधि में सिकुड़ती जा रही है। इन वैज्ञानिक आविष्कारों के सहारे आज का मानव दूसरों पर अपना एकच्छत्र प्रभुत्त्व स्थापित करना चाहता है। निर्बलों को भूनकर नष्ट कर देना चहता है। मानव का कल्याण न कर, वह उसका संहार करने में प्रवृत्त हो रहा है। व्यक्तिगत सुख को ही आज की दुनिया सर्वोपरि समझ रही है। मानवता का यह कैसा परिहास है—कैसी विडम्बना !

फिर, गान्धी के इस देश में यदि मानवता इतनी संकीर्ण रहेगी, तब इस राष्ट्र का उद्धार कैसे होगा—कब होगा ? उसने स्वीकार किया कि आज का

मानव पथभ्रष्ट हो चुका है। वैज्ञानिक आविष्कारों का दुरुपयोग ही वह कर रहा है।

सुमित्रा का मस्तिष्क भन्ना रहा था। वह अपनी मनोदशा को लेकर खीझ रही थी कि सहसा एक झटके के साथ कार खड़ी हो गई। इस झटके से सुमित्रा ने प्रकृतिस्थ होते हुए देखा कि वह श्रीमती नागर के घर पहुँच चुकी है।

—३—

बादलों के छोटे-बड़े टुकड़े नीलाकाश में इधर-उधर तैर रहे थे; किन्तु पानी बरसने के कोई लक्षण नहीं दीख रहे थे। अपने मकान की तिमंजिली खुली छत पर पण्डित देवदत्त शर्मा चुपचाप खड़े थे। आसपास और दूर तक के मकानों पर अगणित दीपक जगमगा रहे थे। सर्वत्र दीपोत्सव मनाया जा रहा था। भारतीय गणतंत्र के जन्मोत्सव की मंगल वेला में भारत के कोटि-कोटि नर-नारियों का उल्लास इस दीपोत्सव के रूप में फूटा पड़ रहा था।

शर्माजी की छत पर भी कुछ दीपक अब तक जगमगा रहे थे। स्नेह चुक जाने पर अनेक दीपक बुझ भी चुके थे। शर्माजी ने एक बुझते हुए दीपक को देखा और उन्हें लगा कि धीरे-धीरे सभी दीपक इसी तरह बुझ जायँगे और पुनः घना अन्धकार फैल जाएगा।

शर्माजी तो दीपक जलाने के पक्ष में ही नहीं थे; किन्तु बड़े लड़के हरीश की तर्कशील प्रवृत्ति के आगे उनकी कोई बात चल नहीं पाती। उसके आग्रह पर उन्हें कह देना पड़ा था—'तुम चाहते हो, तो भले ही दीपक जलाओ; लेकिन दीपक जलाने से ही हमारा वह अन्धकार मिट नहीं सकता, जिसमें हम भटक रहे हैं।'

'लेकिन जब घर-घर दीपक जलेंगे', हरीश ने तर्क करते हुए कहा था—'और हमारे घर में अँधेरा रहेगा, तो पास-पड़ोसवाले क्या कहेंगे?'

'यही न कि देवदत्त शर्मा देशद्रोही है!' शर्माजी ने कुछ तिलमिलाते हुए कह दिया था और एक प्रश्नसूचक दृष्टि से हरीश को ध्यानपूर्वक देखने लगे थे।

'नहीं!' तर्कप्रिय हरीश ने कहा था—'यह तो कोई नहीं कहेगा—कह नहीं सकेगा। तुम्हारी पूरे दो युगों की साहित्य-साधना इस बात की साक्षी है कि तुमने राष्ट्रोत्थान की ही सदा कामना की है; गरीबों और श्रमिकों को सुख-सुविधाएँ दिए जाने का नारा बुलन्द किया है; किन्तु हवा का रुख देखकर भी तो चलना पड़ता है, दादा! आज राष्ट्रोल्लास में सहयोग न देने का गलत अर्थ भी तो लगाया जा सकता है न!'

'तुम ठीक कहते हो, हरीश!' शर्माजी ने कह दिया था—'अवश्य दीपक जलाओ। और हाँ, आठ बजे तक तुम सब जाकर शहर का एक चक्कर भी लगा आना। चौक में आज रंगबिरंगी रोशनी होगी। तुम्हारे छोटे भाई और बहिन को आनन्द आएगा वह रोशनी देखकर।'

और, शर्माजी के प्रस्ताव पर इस समय उनका सारा परिवार जब शहर की रोशनी देखने चला गया, तो वह स्वयं इस तिमंजिली छत पर आकर खड़े हो गए। शर्माजी की पत्नी ने बहुत चाहा कि शर्माजी भी उन सबके साथ शहर जाते; किन्तु शर्माजी ने कह दिया था कि उनके एक साहित्यिक मित्र अभी रात में उनसे भेंट करने आ रहे हैं, अतः घर पर उनका रहना आवश्यक है।

शर्माजी की पत्नी समझदार हैं। पढ़ी-लिखी हैं। स्वयं अच्छी लेखिका और कवयित्री हैं। अनेक साहित्यिक और सरकारी पुरस्कार उन्हें मिल चुके हैं। हवा का रुख पहचानने में वह बड़ी चतुर हैं। शर्माजी की इच्छा न देख, उन्होंने जोर नहीं दिया और बच्चों के साथ दीपोत्सव देखने चली गईं।

खुली छत पर शर्माजी कभी इधर से उधर टहलने लगते और कभी किसी दीपक के पास खड़े होकर आसपास के मकानों पर जगमगानेवाले दीपकों की स्निग्ध झाँकी देखने लगते। कभी-कभी बुझते दीपक देखकर उनके अन्त-

राल में यह ध्वनि गूँज उठती—'धीरे-धीरे सभी दीपक इसी तरह बुझ जायँगे और पुनः घना अँधेरा फैल जाएगा।'

शर्माजी की विचारधारा प्रवाहित होने लगी । उन्हें लगा कि न केवल मिट्टी के ये दीपक बुझ जायँगे; प्रत्युत उन नर-नारियों के जीवन-दीप भी इसी तरह बुझ जायँगे, जो आज यह दीपोत्सव मना रहे हैं। मिट्टी के दीपक को जलने के लिए जिस स्नेह की आवश्यकता है, वह चुका नहीं कि सब समाप्त ! इसी तरह मानव के जीवन-दीप को प्रज्वलित रखने के लिए जिस स्नेह की आवश्यकता है, वह पूरा हुआ नहीं कि सब समाप्त ! और, मानव को जीवित रखने के लिए जिस स्नेह की आवश्यकता है, वह आज उसे मिलता ही कहाँ है ?

जिन अगणित नर-नारियों ने अपना बलिदान देकर देश को स्वतन्त्र किया, उनके ही आत्मीयों और आश्रितों की आज कौन चिन्ता करता है ? माना कि ऐसे कुछ परिवारों को राष्ट्रीय सरकार द्वारा यथोचित आर्थिक सहायता दी जा रही है; परन्तु यह सहायता तो केवल उन लोगों को मिल पाती है, जिनकी पहुँच सत्ताधारियों तक है। अधिकांश व्यक्ति तो सत्ताधीशों तक कभी पहुँच ही नहीं पाते और तिल-तिलकर समाप्त होते जाते हैं।

दूसरों की बात छोड़िए, शर्माजी स्वयं अपनी बात लेकर कभी-कभी द्रवित हो उठते हैं। एकमात्र पत्रकारिता का क्षेत्र अपनाकर उन्होंने सन् १९३१ ई० के सत्याग्रह आन्दोलन में अपनी उच्चशिक्षा का विचार सदा के लिए छोड़ दिया और आज तक राष्ट्रोत्थान के यज्ञ में अपनी आहुति देने में कभी कुछ उठा नहीं रक्खा। इस आहुति का माध्यम उन्होंने साहित्य को ही बनाया। लगभग एक दर्जन मौलिक उपन्यास, आधा दर्जन कहानी-संग्रह और कई कविता-संग्रह आदि उन्होंने अब तक माँ-भारती के मन्दिर में अर्पित कर दिए; परन्तु आज तक उनकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं हो सकी कि अपने रुग्ण आत्मीयों का यथोचित उपचार वह करा सकें; सन्तान को भली भाँति शिक्षा दे सकें और स्वयं अपनी डेढ़ पसलियों को मांसल बना सकें।

क्या वह दिन शर्माजी कभी भूल सकते हैं, जब उनका बड़ा पुत्र हरीश रोग-शय्या पर पड़ा छटपटा रहा था और शहर के सबसे अधिक विख्यात माने जानेवाले डाक्टर घोष का उपचार कराने के लिए उन्हें अपने दो मौलिक उपन्यासों का कापीराइट केवल पचास-पचास रुपए में बेच देना पड़ा था। यह देखकर शर्माजी का हृदय विदीर्ण होने लगता है कि उन्हीं उपन्यासों के अब तक तीन-तीन संस्करण हो चुके हैं; किन्तु शर्माजी को अब एक पाई नहीं मिलती प्रकाशक की ओर से। मिले भी क्यों? इस दुनिया में सौदा ही तो सर्वत्र होता है न! सौदे में सदा स्वार्थ की प्रधानता रहती है। प्रकाशक ने भी सौदा किया था। अब लेखक से उसका क्या नाता?

परन्तु दिन सदा एक से नहीं रहते। कालचक्र सदा अपनी गति से घूमता रहता है। शर्माजी के भी वह दिन बीत गए। जहाँ एक उपन्यास का कापी-राइट उन्हें केवल पचास रुपए पर बेचना पड़ा था, वहाँ अब एक-एक कहानी और लेख पर उन्हें साठ रुपए तक पारिश्रमिक मिलने लगा है। परन्तु पारिश्रमिक में जहाँ यह वृद्धि हुई, वहाँ उनका परिवार भी फला-फूला और उनकी आवश्यकताएँ भी बढ़ गईं। परिणाम यह हुआ कि आज भी शर्माजी के जीवन में संघर्ष और परेशानियाँ ही व्याप्त हैं।

यही कारण है कि दीपोत्सव मनाने की बात जब हरीश ने कही थी, तब शर्माजी ने कह दिया था कि दीपक जलाने से ही हमारा वह अन्धकार मिट नहीं सकता, जिसमें हम भटक रहे हैं। और, अपने अन्तस्तल में दबे इसी विक्षोभ के कारण शर्माजी अपने परिवार के साथ रोशनी देखने नहीं गए। मित्र के आने की जो बात उन्होंने कह दी थी, वह तो समझदार पत्नी को चुप करने का एक बहाना मात्र था।

शर्माजी अपनी छत पर टहलते रहे और उनके मानस में अनेक विचार-तरंगें उठती-गिरती रहीं। अब देश स्वतंत्र हुआ है, तो उसके कलाकारों को भी जीवन की सुविधाएँ प्राप्त होंगी। राष्ट्रीय सरकार अपने देश के साहित्य-

साधकों की सम्मान-रक्षा का अवश्य ध्यान रखेगी। यह सरकार अपने कलाकारों को भूखों न मरने देगी; उन्हें यह अनुभव न होने देगी कि जिस साहित्य के माध्यम से गान्धी और जवाहर, रवीन्द्र और प्रेमचन्द जैसे व्यक्तित्त्व उत्पन्न होकर विश्वव्यापी कीर्त्ति के केन्द्र बन सकते हैं, उस साहित्य के साधक दयनीय हो सकते हैं।

परन्तु दूसरे ही क्षण शर्माजी के विचारों ने पलटा खाया। उन्हें लगा कि सरकार कोई भी हो—अपनी हो या विरानी—शासन के मद से मुक्त नहीं हो सकती। सरकार से कोई आशा करना रेत से तेल निकालना है। फिर, अपने आश्रित ही जब हमारी उचित सेवा-शुश्रूषा नहीं करते और हमारी सुख-सुविधा अथवा सन्तोष की चिन्ता नहीं करते, तब इस दुनिया में दूसरों से क्या आशा की जाए!

छत पर टहलते-टहलते शर्माजी इस विचार के उठते ही ठिठककर खड़े हो गए। अपने-आप उन्ह धीमी-सी हँसी आ गई। आशा? हम किसी से कोई आशा करें ही क्यों? निराश होने पर यही आशा हमें दुःखी कर देती है, हमारी मानसिक शान्ति का अपहरण कर लेती है और प्रकारान्तर में हमारे जीवन की अवधि को भी कम कर देती है। लेकिन दुनिया में रहकर हम कितनी ही चेष्टा क्यों न करें, आशा का मृगजल हमें भ्रमित कर ही देता है।

कितने ही ऐसे अवसर शर्माजी के जीवन में आ चुके हैं, जब उन्हें अपने परिवार से घोर निराशा हाथ लगी है। एक तपस्वी की भाँति शर्माजी ने अपना सर्वस्व जिस परिवार के लिए होम दिया, उसी परिवार से यदि वह किसी सुख-सुविधा और शान्ति की आशा करते हैं, तो इसे अस्वाभाविक कैसे कहा जाए? लेकिन इस दशा में शर्माजी स्वीकार करते कि आशा करने को बात तो साधारण मानव पर ही लागू होती है न! तपस्वी की भाँति यदि उन्होंने सर्वस्व होम दिया ह, तो तपस्वी की भाँति उन्हें इस आशा के मृगजल से अब सावधान भी रहना होगा।

इन्हीं विचार-धाराओं पर जब शर्माजी तिर रहे थे, तभी नीचे के सदर

दरवाजे पर किसी ने कुण्डी खटखटाई। एक क्षण के लिए शर्माजी को लगा कि अरे, इस वक्त कौन कुण्डी खटखटा रहा है ? श्रीमतीजी से जिस मित्र के आने का बहाना उन्होंने बना दिया था, क्या वही अज्ञात मित्र आ टपके ? कोई भी हो, दरवाजा तो खोलना ही होगा।

शर्माजी नीचे गए। दरवाजा खोलकर देखा, तो शैलेन्द्र को खड़ा पाकर उन्होंने कहा—'आओ भाई ! कैसे भटक पड़े ?'

भटक पड़ने की बात शर्माजी ने ठीक ही कही थी। यह शैलेन्द्र हिन्दी का एक प्रख्यात कथाकार है; किन्तु इसका व्यक्तित्त्व सभी के लिए एक पहेली है। वह क्या करता है, कैसे अपना खर्च चलाता है, किसी को ज्ञात नहीं। कहानियाँ लिखता है, यह तो सभी जानते हैं; किन्तु पत्र-पत्रिकाओं में प्रतिमास दो-एक कहानियाँ प्रकाशित हो जाने पर किस कथाकार का खर्च चल सकता है ? कम-से-कम भारत में और हिन्दी कथाकार-जैसे मसिजीवी का पारिवारिक खर्च पूरा हो सकना अब तक तो आकाश-कुसुम ही है। कदाचित् इसीलिए कुछ लोगों का अनुमान है कि शैलेन्द्र एक राजनीतिक पार्टी का गुप्त कार्यकर्त्ता है और पार्टी की ओर से उसे पर्याप्त रकम मिलती रहती है। यदि ऐसा न हो, तो शहर का खर्च चलाना सम्भव नहीं। फिर यह शैलेन्द्र बहुत ही कम शर्माजी से मिलता-जुलता है। शर्माजी 'त्रिवेणी' मासिक पत्रिका के सम्पादक हैं, अतः शैलेन्द्र कभी-कभी उन्हें कोई कहानी दे जाता है, अथवा कभी राह चलते दर्शन हो गए, तो नमस्कार कर लिया करता है। इसीलिए शैलेन्द्र को इस समय अपने दरवाजे पर देखते ही 'भटक पड़ने' की बात उनके मुँह से निकल पड़ी।

'दीपोत्सव देखने चौक जा रहा था।' शैलेन्द्र ने कहा—'सोचा, आपसे भेंट करता चलूँ। सन्देह था कि इस समय आप घर में होंगे; किन्तु दरवाजा भीतर से बन्द देख, कुण्डी खटखटा देना ही मैंने ठीक समझा।'

'और मैं मिल भी गया।' शर्माजी ने शैलेन्द्र के साथ बाहरी बैठक में प्रवेश करते हुए कहा—'बैठिए।'

शैलेन्द्र एक कुर्सी पर बैठते हुए बोला—'एक बात बहुत दिनों से आपसे कहने का इरादा है; परन्तु कभी कह नहीं सका।'

'तो आज कह डालिए।'

'हाँ, आज गणतंत्र-दिवस के जन्मोत्सव की मंगल वेला में मुझे अपनी वह बात अवश्य कह देनी चाहिए।' शैलेन्द्र ने कुछ गम्भीर होते हुए कहा—'देख रहा हूँ, आप सदा आर्थिक संकट के शिकार रहते हैं। आपके परिवार में डाक्टरी उपचार भी सदा चलता रहता है। क्या किया जाय, आजकल पौष्टिक पदार्थ तो मध्यम वर्ग जुटा नहीं पाता, फिर बीमारियाँ क्यों न आक्रमण करेंगी ? इनसे छुटकारा नहीं।'

'यह तो हम हिन्दी-सेवियों के भाग्य की बात है।' शर्माजी ने कहा—'लेकिन इससे मुक्ति कहाँ ? हाँ, आशा की एक किरण मेरे सामने है, जिसे देख-देखकर सारे संकटों का सामना किए जा रहा हूँ। बड़ा लड़का हरीश इंटर में पढ़ रहा है। ईश्वर अनुकूल रहा तो चार-पाँच बरस में वह पी० सी० एस० हो जाएगा। तब संभव है, मेरे संकटों की समाप्ति हो जाए।'

'बुरा न मानिए, शर्माजी !' शैलेन्द्र ने रुक्षता के साथ कहा—'आजकल विश्व-विद्यालयों में जाते ही लड़के माँ-बाप को कुछ नहीं समझते। शायद ही पाँच प्रतिशत लड़के ऐसे निकलते हों, जो अपने माँ-बाप के प्रति सच्चे अर्थों में कर्त्तव्यपरायण रह सकते हों। ऐसी दशा में लड़के का सहारा देखना मृगजल ही समझिए। स्वयं अपने हाथ-पैरों का सहारा लीजिए, स्वयं अपने संकट दूर करने का प्रयत्न कीजिए।' फिर एक क्षण रुककर शैलेन्द्र ने लक्ष्यबेध करते हुए कहा—'संकटों से मुक्ति का उपाय भी है। दो युगों की साहित्यिक तपस्या का फल तो आप देख ही रहे हैं ! इतना वेतन भी तो आपको नहीं मिलता कि घर-खर्च बराबर चला सकें। इधर मुझे देखिए, चैन से जिन्दगी बिता रहा हूँ।'

शैलेन्द्र की ये बातें तीखे तीरों की तरह शर्माजी के हृदय को बेध

बैठीं। बड़े पुत्र हरीश के संबंध में भी शैलेन्द्र ने परोक्ष रूप से जो कुछ कहा, वह शर्माजी को बड़ा अप्रिय लगा। तिलमिलाकर उन्होंने कहा—'लेकिन आपके संबंध में लोगों की क्या धारणा है, इसे आप जानते हैं या नहीं ?'

'जानता क्यों नहीं।' शैलेन्द्र ने कहा—'यही न कि मैं एक विशेष राजनीतिक दल का कार्यकर्त्ता हूँ। लेकिन मुझे इसकी चिन्ता नहीं। कीड़ों-मकोड़ों की तरह जिन्दगी बिताने से, यह कहीं अच्छा है कि हम किसी पार्टी को अपनाकर चैन से रहें।'

'बस कीजिए, शैलेन्द्रजी !' शर्माजी ने उत्तेजित होकर कहा—'मैं अपनी ईमानदारी पर बट्टा नहीं लगा सकता। देश के प्रति विश्वासघात नहीं कर सकता।'

'तो क्या मैं देश के प्रति विश्वासघात कर रहा हूँ, शर्माजी ?'

'अवश्य !' शर्माजी ने कुर्सी से खड़े होते हुए कहा—'मतभेद हो सकता है। तर्क भी अनेक किए जा सकते हैं; किन्तु मैं तर्कप्रिय नहीं हूँ। तर्क करने की बीमारी हमारे देश के तरुणों में बुरी तरह फैल रही है। और, यह तर्क बहुधा तर्क न होकर कुतर्क ही होता है। मेरा बड़ा लड़का हरीश भी बड़ा कुतर्की है, और मैं जानता हूँ, यह कुतर्क ही उसे कभी ले डूबेगा। अच्छा, इस समय क्षमा कीजिए।'

'प्रमाणपत्र तो आपने आज बहुत बुरा दे डाला है, शर्माजी !' शैलेन्द्र ने भी कुर्सी से खड़े होते हुए कहा—'लेकिन आप मुझसे बड़े हैं, इसलिए मैं आपकी बात का बुरा नहीं मानता। इतना अवश्य कहूँगा कि कभी आवश्यकता समझें, तो मेरे प्रस्ताव पर गंभीरता से विचार अवश्य करें।' और नमस्कार कर शैलेन्द्र चला गया।

शर्माजी ने सदर दरवाजा बन्द कर दिया और पुनः छत पर चले गए। उन्हें लगा कि शैलेन्द्र सचमुच अद्‌भुत व्यक्ति है। मैंने उसे देश के प्रति विश्वासघाती तक कह दिया, फिर भी वह अपनी पार्टी का ध्यान रखते हुए भभका नहीं ! कह रहा था कि मेरी बात का वह बुरा नहीं मानता; लेकिन

उसके प्रस्ताव पर मैं गंभीरतापूर्वक विचार अवश्य करूँ। लेकिन जीवन के इस चौथे चरण में क्या अपने सिद्धान्तों की हत्या मैं इस प्रकार कर भी सकूँगा ?

हुँ ! देश के प्रति विश्वासघाती बनने के किसी प्रस्ताव पर विचार करने से पूर्व, मैं इस दुनिया से ही उठ जाना अच्छा समझूँगा ।

कुछ ही देर के बाद फिर बाहरी दरवाजे पर किसी ने कुण्डी खटखटाई । बड़ी खीझ के साथ उन्होंने जाकर दरवाजा खोला । देखा तो श्रीमतीजी बच्चों के साथ दीपोत्सव देखकर लौट आई थीं ।

—४—

दरवाजे पर मोटर का हार्न सुनते ही नलिनी अभूतपूर्व उत्सुकता से भर उठी। बैठकखाने में जिस कोच पर वह बैठी थी, उससे उछलते हुए, सामने बैठे अपने पति—नागर—से बोली—'लो, सुमित्रा बहिन आ गईं।' और वह तेज कदमों से बरामदे में जा पहुँची।

कार से उतरकर सुमित्रा बरामदे की ओर अपने पग बढ़ा ही रही थी कि श्रीमती नागर—नलिनी—ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया—'आओ बहिन!' और उसका एक हाथ अपने हाथ में दबाकर, बैठकखाने की तरफ बढ़ते हुए कहा—'कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं हम लोग!'

अब तक दोनों बैठकखाने में पहुँच चुकी थीं। नागर ने भी खड़े होकर सुमित्रा का स्वागत करते हुए कहा—'आइए, आचार्या सुमित्राजी! जय हिन्द!'

मुसकराते हुए सुमित्रा ने दोनों हाथ जोड़कर कहा—'जय हिन्द।' और नलिनी के साथ ही एक सोफे पर बैठते हुए बोली—'देर के लिए क्षमा चाहती हूँ। क्या करूँ, आज तो टेलीफोन ने मेरा नाक में दम कर दिया। डिप्टी कलैक्टर सिनहा की पुत्री रजनी का भी आग्रह है कि मैं आपके यहाँ से सीधी उसके घर जाऊँ। रजनी की माताजी ने भी स्वयं फोन पर आग्रह किया है।'

'आज का दिन ही ऐसा है, सुमित्राजी!' नलिनी ने कहा—'भारतीय प्रजातन्त्र के जन्मोत्सव की मंगल वेला में भारत के जन-जन का उल्लास फूटा पड़ रहा है। सभी लोग अपने-अपने आत्मीयों के साथ यह उल्लास मनाना चाहते हैं।'

'कुछ अंशों में आपकी बात ठीक है।' सुमित्रा की दार्शनिक नारी ने कहा—प्रजातंत्र की मंगल वेला में भारत के जन-जन को उल्लास मनाना ही चाहिए। परन्तु सम्पन्न वर्ग को छोड़कर उस दीन-हीन वर्ग की ओर भी आपने देखा है, जो अब तक पूँजीवाद की चक्की के पाटों के बीच बुरी तरह पीसा जा रहा है? क्या वह शोषित-पीड़ित वर्ग भी उसी तरह उल्लास मना रहा है, जिस प्रकार हम और आप तथा शहरों का सम्पन्न वर्ग मना रहा है?'

'दो वर्गों का नाम लेना आप भूल गईं, सुमित्राजी!" नागर ने कदाचित् विद्रूप के स्वर में कहा—'एक शरणार्थी और दूसरा कम्युनिस्ट वर्ग!'

'शरणार्थियों का जहाँ तक संबंध है, निश्चय ही वह दीन-हीन वर्ग में गिने जाने योग्य हैं।' सुमित्रा ने कोच से टिकते हुए कहा—'परन्तु कम्युनिस्ट वर्ग को मैं इस श्रेणी से बहुत दूर समझती हूँ। कम्युनिस्ट तो किसी दूसरी ही भावना के शिकार हैं। यह कहना अधिक उचित होगा कि वे प्रजातन्त्र के ही विरोधी हैं।'

'मैं तुमसे एकदम सहमत हूँ।' नलिनी ने कहा—'जिस दीन-हीन वर्ग की बात तुम कर रही हो, उसीमें शरणार्थी गिने जाएँगे। परन्तु कम्युनिस्ट-वर्ग को दीन-हीन कहना सरासर इन शब्दों का दुरुपयोग करना है।'

नागर ने अपनी गलती स्वीकार कर ली; कहा—'कभी-कभी भावावेश में गलती हो ही जाती है। मैं अपने शब्द वापस लेता हूँ।' फिर एक क्षण मौन रहकर नागर ने कहा—'लेकिन स्वतंत्र होते ही, सभी वर्गों को समान रूप से प्रसन्न कर सकना सम्भव नहीं था। हमारी अपनी सरकार धीरे-धीरे ही सबकी सुविधाओं के साधन प्रस्तुत कर सकेगी। किसानों को ज़मींदारों के जाल से, देशी राज्यों की प्रजा को राजा-महाराजाओं के जाल से और श्रमिक वर्ग को पूँजीपतियों के जाल से मुक्त करने का प्रयत्न हमारी राष्ट्रीय सरकार कर ही रही है। नवीन विधान बनाकर समाज के प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र और सुखी करने का प्रयत्न भी किया जा रहा है। परन्तु

धीरे-धीरे ही सफलता हाथ लग सकेगी। क्या विचार है आपका, सुमित्राजी?'

'मैं इन सफलताओं में सन्देह नहीं करती।' सुमित्रा ने कहा—'परन्तु मानव की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति पर हमारी सरकार को तत्काल ध्यान देना था। भोजन, वस्त्र और मकान की पूर्त्ति करना अपनी सरकार का पहला कर्त्तव्य होना चाहिए था। जब तक सर्वसाधारण को ये सुविधाएँ नहीं मिल जातीं, देश के स्वतन्त्र हो जाने अथवा प्रजातंत्र हो जाने का अर्थ जन-साधारण की समझ में नहीं आ सकता।'

'तुम ठीक कह रही हो, बहिन!' नलिनी ने गम्भीर होते हुए कहा—"जिस कांग्रेस के इंगित पर भारतीय जनता बिना किसी हिचकिचाहट के जेलों में गई, लाठियों और बन्दूकों की गोलियों की बौछारें उसने अपने सीने पर झेलीं और अगणित बलिदान दिए, आज उसी कांग्रेस के प्रति जनता का मन बदल रहा है। उसे लगता है कि वही कांग्रेस अब पदारूढ़ होकर जनता को शायद भूलने लगी है। और, जनता की यह धारणा केवल इसलिए बदल रही है कि उसे भोजन, वस्त्र और मकान की सुविधाएँ भी तो नहीं मिल रही हैं। अपनी और परायी सरकार का भेद आखिर जनता समझे कैसे?'

इन दो बौद्धिक नारियों के इस सीधे-सादे तर्क के सामने नागर ने स्वयं को पराभूत अनुभव किया। नागर के पास केवल एक ही उत्तर था, और वह यही कि धीरे-धीरे ही जनता अपनी सरकार के लाभ समझ सकेगी। परन्तु जिस तात्कालिक सुधार की बात सुमित्रा और नलिनी दोनों कह रही हैं, उसे भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

नागर ने दबी वाणी में कहा—'तुम्हारा तर्क भी ठीक है, नलिनी! परन्तु राजदण्ड जिनके हाथों में है, उनकी विवशताओं का ध्यान भी हमें रखना होगा। २६ जनवरी १९५० को आज हमने भारतीय गणतन्त्र की स्थापना की है। परन्तु इस तिथि को छूनेवाले विगत तीन वर्षों में जो घटनाएँ घट चुकी हैं, वे युगों का निर्माण करनेवाली हैं। उन तीन वर्षों

में जो लोमहर्षण काण्ड हुए, वे मानव-इतिहास में अभूतपूर्व कहे जाएँगे। एक महान् साम्राज्य का अस्त हुआ, भारत स्वतन्त्र हुआ और खण्डित भी। इस विभाजन के फलस्वरूप रोमांचकारी साम्प्रदायिक रक्तपात हुआ —लाखों नर-नारी गृहहीन हो गए। और, इसी बीच राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी की हत्या हुई, जिससे सारा भारत विषाद और अवसाद के सागर में डूब गया। और, आज भी हमारे चारों ओर सामाजिक व्यवहार में स्थिरता नहीं है। अभूतपूर्व और अकल्पित निर्मम आघातों से हमारे देशवासी मूर्च्छित-से हैं, विक्षुब्ध हैं और निष्क्रिय क्रोधाग्नि से जल रहे हैं। उनका विवेक काम नहीं कर रहा है। ऐसी असाधारण स्थिति में शासन-सुधार और सुविधा-सफलता की बातें करना प्रलाप ही कहा जाएगा न!'

'इसे आप प्रलाप कहें अथवा आलाप, जीजाजी!' सुमित्रा अपनी सहेली नलिनी के नाते श्री नागर को कभी-कभी जीजा कह बैठती थी—'लेकिन जनता को सैद्धान्तिक बातें कठिनाई से ही समझ में आती हैं। वह तो अपने दैनिक जीवन की कठिनाइयों का हल पहले चाहती है।'

'लेकिन जो समझदार हैं और प्रबुद्ध हैं, उनका कर्त्तव्य हो जाता है कि अपने अनजान देशवासियों को यह समझाने का प्रयत्न करें कि प्रजातन्त्र में उन्नति की गति मन्द होती है। परन्तु प्रजातन्त्र द्वारा की गई उन्नति सदा ठोस होती है और राष्ट्र की स्थायी सम्पत्ति होती है। प्रजातन्त्र की पद्धतियों से परिचित होकर जनता इस प्रगति को तेज कर सकती है। यदि अतृप्त आशाओं से उत्पन्न मनोविकारों को संयत न रक्खा गया, तो वे इस प्रगति में बाधक हो सकते हैं। इन मनोविकारों का संयम प्रजातन्त्र की सफलता के लिए बहुत ही आवश्यक है। इस संयम को स्वेच्छा से ग्रहण करके ही जन-साधारण उस राजनैतिक प्रौढ़ता को प्राप्त कर सकता है, जिसकी राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन के लिए तत्काल आवश्यकता है।'

'छोड़िए भी इस वाद-विवाद को!' नलिनी ने कदाचित् इस राजनीतिक चर्चा से ऊबते हुए कहा—'क्या सुमित्रा बहिन को इसीलिए इतनी रात में

यहाँ बुलाया है कि उनका दिमाग खाली किया जाए ?' और एक प्रश्नसूचक दृष्टि से अपने पति नागर की ओर देखते हुए नलिनी ने इस प्रसंग को मानो समाप्त कर देने का आग्रह किया।

'सचमुच भूल हुई !' नागर ने मुसकराते हुए कहा—'सुमित्राजी, आप मुझे इस रूखी राजनीतिक चर्चा के लिए क्षमा करें।'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं !' सुमित्रा ने कहा—'आज भारत के जन-जन का सम्बन्ध जिस चर्चा से हो, उसे रुक्ष कहकर टाल देना मैं ठीक नहीं समझती। हाँ, यह बात अवश्य है कि आज—इस समय, इतनी रात बीते—इस सम्बन्ध में अधिक तर्क करने की स्थिति में नहीं हूँ मैं।'

और ठीक इसी समय बैठकखाने के भीतरी दरवाज़े पर लटकते रंगीन पर्दे को हटाकर लता ने प्रवेश करते हुए कहा—'मैं तो इस चर्चा से कब की ऊब चुकी हूँ। लेकिन दादा के भय से बीच में आने और कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।'

नलिनी ने कोच से खड़े होकर लता के सिर पर अपना एक हाथ फेरते हुए कहा—'लता बेटी बड़ी रानी है ! अपने पिता का कितना ध्यान रखती है। अच्छा बेटी, चाय-नाश्ता तैयार करा चुकीं या नहीं ?'

'मैंने कहा न, कब से मैं यही बाट जोह रही हूँ कि आप लोगों की यह बहस बन्द हो, तो मैं आचार्यजी को भीतर ले चलूँ !'

सुमित्रा ने भी कोच से उठकर लता की एक हथेली को सस्नेह चूमते हुए कहा—'तुम अपने दादा को इतना डरती हो, बेटी ! बीच में ही आ जातीं मुझे बुलाने।' और लता के सिर पर स्नेह से अपना हाथ फेरने लगी। फिर एक क्षण के बाद कहा—'अच्छा है बेटी, बड़ों की मर्यादा का सदा ऐसा ही ध्यान रखना। चलो, हम सब भीतर चलें।'

भीतरी कमरे में पैर रखते ही सुमित्रा को यह देख आश्चर्य हुआ कि लता की कई सहेलियाँ, खादी की दूध-सी सफेद साड़ियाँ पहने हुए, एक गोल-

मेज के आसपास उसके स्वागतार्थ खड़ी हैं। सुमित्रा के आश्चर्य का कारण इन कुमारियों की उपस्थिति नहीं, बल्कि यह था कि इतनी कुमारियाँ किसी चाय-पार्टी के सिलसिले में एकत्र हों और कोई शोरगुल न हो! कितनी देर से सुमित्रा बगल के बैठकखाने में नागर और नलिनी से बातचीत कर रही थी; परन्तु इस बीच उसे ऐसी कोई भनक भी नहीं सुनाई पड़ी, जो इन कुमारियों की उपस्थिति की सूचना कही जा सकती! कितना अनुशासन है इन कुमारियों में, कितना धैर्य!

'तो यह कहो, लता!' सुमित्रा ने एक क्षण मौन रहने के बाद पूछा—'कि आज तुमने मुझे चाय पीने का आमन्त्रण देकर अन्य किसी विशेष आयोजन की रूपरेखा तैयार कर रक्खी है।'

'लता का कहना है', लता की माँ नलिनी ने सुमित्रा की बात का उत्तर देते हुए कहा—'कि तुम्हें बुलाकर केवल चाय पिलाने का आज कोई अर्थ नहीं। चाय तो तुम चाहे जब इस घर में पी लेती हो।'

'हाँ, मैंने सोचा', यह लता की वाणी थी—' आज प्रजातन्त्र के जन्मोत्सव पर देशवासी तरह-तरह का उल्लास मना रहे हैं, इसलिए हम सहेलियाँ भी अपनी आचार्याजी को आमंत्रित कर विशेष रूप से ही अपना उल्लास व्यक्त करें।'

'आखिर इस उल्लास का रूप-रङ्ग भी जान सकती हूँ?' सुमित्रा ने जिज्ञासा प्रकट की।

'पहले चाय नाश्ता, तब कुछ और!' नलिनी ने कहा; फिर हरिणी की तरह चौंकते हुए बोली—' अरे, तुम अब तक खड़ी हो! बैठो तो सही।' और महाराजिन को आवाज़ देते हुए कहा—'चम्पा, चाय लाओ।'

कमरे के पश्चिमी दरवाज़े पर लटकते पर्दे में कुछ हरकत हुई और एक अधेड़-सी गौरांग नारी ने चाय का ट्रे हाथ में सँभाले हुए प्रवेश किया।

गोल मेज पर रक्खे प्यालों में चम्पा चाय उड़ेलने लगी, और उसके साथ

ही लता अपनी एक सहेली के साथ दो-दो तश्तरियाँ प्रत्येक के पास रखने लगी। एक तश्तरी में मिठाइयाँ और दूसरी में तले हुए नमकीन मेवे तथा फल थे।

बात-की-बात में चाय-नाश्ते की तैयारी कर दी गई और नागर ने कहा—'प्रजातन्त्र के जन्मोत्सव की मंगल वेला में हम चाय-पान करें!'

'भारतीय गणतंत्र चिरजीवी हो!' लता ने मधुर स्वर में कहा, और सबने चाय-पान प्रारम्भ किया।

चाय-पार्टी समाप्त होते ही लता अपनी सहेलियों के साथ उस कमरे से सहन की तरफ जाते-जाते सुमित्रा से कह गई—' अब आप हम सहेलियों के आयोजन का रूप-रङ्ग शीघ्र ही देखेंगी। मैं अभी आती हूँ।'

सुमित्रा ने नलिनी की ओर देखते हुए कहा—'क्या कर रही है यह लता? मैं तो कुछ समझ ही नहीं सकी अब तक।'

'सब समझ जाएँगी।' नागर ने कहा—' सहन में चलकर अभी आप स्वयं देख लेंगी कि लता अपनी सहेलियों के साथ क्या कर रही है।'

'और यही तो कारण था', नलिनी कहने लगी—'कि तुम्हें बुलाने पर हम लोग इतना जोर दे रहे थे।'

'क्यों न हो!' सुमित्रा ने कहा—' आखिर सदियों के बाद हमारे देश में प्रजातंत्र की स्थापना हुई है न! इन बालिकाओं में भी उल्लास का फूट पड़ना स्वाभाविक है।'

इसी तरह की बातचीत चल रही थी कि लता ने आकर सुमित्रा से सहन में चलने का अनुरोध किया।

नागर, नलिनी और सुमित्रा तीनों लता के साथ सहन की तरफ चल पड़े।

—५—

सहन में जाकर सुमित्रा ने देखा कि एक छोटा-सा रङ्गमंच तैयार किया गया है, और वहाँ लटकते हुए रंगीन पर्दे किसी नाटक के अभिनय की पूर्व सूचना दे रहे हैं। सहन में चारों ओर विजली के रङ्गीन लट्टू लटक रहे ह, जिनका स्निग्ध प्रकाश वहाँ के अणु-परमाणु को पुलकित कर रहा है।

सामने लटकते पर्दे पर दिवंगत राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी का एक भव्य चित्र अंकित था, जिनका वरद हस्त स्वर्ग से भारत माता पर पुष्प-वर्षा कर रहा था। गणतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद भारत माता की आरती उतार रहे थे और प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य राष्ट्रीय नेता शंख-ध्वनि कर रहे थे।

सुमित्रा इस चित्र को तल्लीनता के साथ देखती रही। वह शायद कुछ देर तक इसी तरह ध्यानावस्थित रहती कि नलिनी ने उसे टोक दिया—'बैठिए सुमित्राजी! कुछ अन्य परिचित भी आ रहे होंगे। साढ़े दस बजे का समय दिया गया है। बस, पन्द्रह मिनट में आते ही होंगे वे लोग।'

प्रकृतिस्थ होते हुए सुमित्रा ने कहा—'इन कुमारियों का उत्साह और उल्लास प्रशंसनीय है, बहिन! बहुत सुन्दर और भावपूर्ण है यह चित्र!' फिर मानो नलिनी की बात का उत्तर देते हुए उसने कहा—'कुछ अन्य परिचितों के आने की कल्पना मैं पहले ही कर चुकी थी। इतने कोच और कुर्सियाँ यह सूचना दे रही हैं कि दर्शकों की संख्या केवल हम लोगों तक ही सीमित नहीं रहेगी।'

'तो क्या तुम अन्य दर्शकों के साथ यहाँ ठहरना....... ?'

'नहीं—नहीं ।' सुमित्रा ने नलिनी की आशंका को तत्काल भाँपते हुए कहा—'मेरा मतलब आप नहीं समझ सकीं, बहिन ! मुझे भला, आपके परिचितों के साथ ठहरने, बातचीत करने अथवा किसी उत्सव में भाग लेने में कोई आपत्ति क्यों होगी ?'

'एक बात और है, सुमित्राजी !' नागर ने वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा—'जिन लोगों को आमंत्रित किया गया है, वे हमारे महिला विद्यालय के शुभचिन्तक ही हैं । और, प्रायः सबके सब अपनी पत्नियों के साथ आएँगे ।'

इसी बीच नौकर ने आकर खबर दी कि दो-तीन मोटरें आकर दरवाजे पर खड़ी हैं ।

'वह देखिए, आमंत्रित सज्जन आने लगे ।' नागर ने सुमित्रा से कहा—'अच्छा, आप बैठिए । मैं आगन्तुकों का स्वागत करने जा रहा हूँ ।' और नागर लपकते हुए बाहर चले गए।

'नागर जीजा भी कभी-कभी अजीब बात करने लगते हैं, नलिनी जीजी !' सुमित्रा ने एकान्त पाकर कहा—'कह रहे थे, प्रायः सभी आमंत्रित सज्जन अपनी पत्नियों के साथ आएँगे । मानो मैं पुरुषों से छड़कती हूँ ।' और एक मुसकराहट नाच गई उसके ओठों पर ।

'तुम पुरुषों से छड़कती हो अथवा उन पर रीझती हो, यह तो उन्हें मालूम नहीं ।' नलिनी ने धीमी वाणी में सुमित्रा की एक हथेली को अपने दोनों हाथों से दबाते हुए कहा—'परन्तु तुम कुमारी हो और मेरी छोटी बहिन के समान हो, इसलिए उन्हें तुम्हारी कुमारी-सुलभ लज्जा और मर्यादा का ध्यान रखना ही पड़ता है ।'

'लेकिन तुम भूल रही हो, बहिन !' नलिनी की ओर अपने पलक उठाते हुए सुमित्रा ने कहा—'आचार्या होकर मुझे कितने ही पुरुषों से प्रायः नित्य

ही बातचीत करनी पड़ती है, और कुमारी-सुलभ लज्जा तथा मर्यादा की सीमाओं का उल्लंघन करना पड़ता है।'

'लेकिन महिला विद्यालय और घर की सीमाओं में बड़ा अन्तर है, सुमित्रा !' नलिनी शायद इस संबंध में कुछ और कहना चाहती थी कि तभी नागर के कहकहों ने उसका ध्यान बटा लिया। आगंतुकों के साथ नागर सहन की ओर आ रहे थे।

आगन्तुकों में प्रायः सभी पुरुष सपत्नीक थे। सुमित्रा से मिलकर इन सबने प्रसन्नता प्रकट की और यथास्थान बैठ गए। नागरजी इन सबको बैठाकर पुनः बाहर चले गए। दूसरे लोगों का भी उन्हें स्वागत करना था।

पन्द्रह-बीस मिनट में ही सहन में रक्खे हुए कोच और कुर्सियाँ भर गईं। मुश्किल से चार-पाँच कुर्सियाँ बच रहीं। सुमित्रा ने यह देख, नलिनी से पूछा—'अभी कुछ आमंत्रित सज्जन और आएँगे शायद ?'

'अब केवल दो सज्जन और आनेवाले हैं। एक हैं श्री प्रफुल्ल घोष, जो कलकत्ते में बहुधा रहते हैं और परसों ही यहाँ आए हैं। तुम्हारे जीजा के शुभचिन्तक हैं। दूसरे हैं पं० देवदत्त शर्मा, जो 'त्रिवेणी' के सम्पादक और हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ उपन्यासकार हैं।'

'शर्माजी के नाम से मैं अच्छी तरह परिचित हूँ, जीजी ! उनके कई उपन्यास पढ़ चुकी हूँ और 'त्रिवेणी' भी बराबर पढ़ती हूँ। अच्छा है, आज उनके दर्शन भी कर लूँगी। लेकिन प्रफुल्लजी को मैं नहीं जानती।'

'आज उन्हें भी जान लोगी, सुमित्रा ! उनका घर यहीं प्रयाग में है; लेकिन कलकत्ते में व्यवसाय करते हैं। बीच-बीच में यहाँ आते रहते हैं। ये दोनों ही सज्जन समय के बड़े पाबन्द हैं। बस, अब आते ही होंगे।'

इसी बीच सहन से उठकर नागरजी फिर बाहर की तरफ चले गए। नलिनी ने यह देखते ही सुमित्रा से कहा—'वह देखो, तुम्हारे जीजा अब इन्हीं घोष साहब और शर्माजी की प्रतीक्षा में बाहर जा रहे हैं।' फिर एक

क्षण रुककर कहा—'अच्छा, मैं मंच पर जाकर लता को सबके आने की सूचना दे आऊँ।' और अपने कोच से उठकर वह मंच की ओर चली गई।

इसी बीच नागरजी दो आगन्तुकों के साथ सहन में आ पहुँचे। सुमित्रा को यह समझते देर न लगी कि यही आगन्तुक प्रफुल्लजी और देवदत्तजी हैं। यह देख सुमित्रा को आश्चर्य हुआ कि नागर के साथ दोनों आगन्तुक उसीके समक्ष आ खड़े हुए।

अभिवादन कर प्रफुल्ल घोष ने कहा—'आज आपके दर्शन कर बड़ी प्रसन्नता हुई, आचार्याजी! मेरी दो छोटी बहिनें आपके विद्यालय में पढ़ती हैं—कजला और रेणुका। दोनों आपकी प्रशंसा करती हैं।'

'लेकिन मेरी पुत्री लज्जा अभी इतनी छोटी है कि आपके विद्यालय में नहीं पढ़ती। इस दशा में मैं अपने परिचय की शृंखला जोड़ने में असमर्थ हूँ, आचार्याजी!' शर्माजी ने मुसकराते हुए कहा।

सुमित्रा इन दोनों के स्वागतार्थ पहले ही खड़ी हो चुकी थी और अभिवादन भी कर चुकी थी। अब उसने कहा—'मैं भला, किस योग्य हूँ, घोष साहब! यह सब आपकी महानता है।' फिर शर्माजी की ओर देखते हुए बोली—'और आप के उपन्यास तथा 'त्रिवेणी' पढ़नेवाली पाठिका तो आज आपके दर्शन कर स्वयं को धन्य समझती है, शर्माजी!'

'महानता और क्षुद्रता तो संसार में सर्वत्र है, आचार्याजी!' प्रफुल्ल घोष ने कहा—'परन्तु हमें इनमें से क्या हाथ लगती है, यह हमारे ही गुण-दुर्गुण पर निर्भर करता है। आप बैठिए। फिर कभी आपसे मिलने की चेष्टा करूँगा।'

'प्रथम संभाषण में ही आपकी शालीनता का प्रतिबिम्ब देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, सुमित्राजी! अच्छा, आप बैठिए।' शर्माजी ने कहा और प्रफुल्लजी के साथ निकट ही पड़ी कुर्सियों पर जाकर वह बैठ गए। नागर भी वहीं एक कुर्सी पर बैठ गए।

नलिनी इस समय तक मंच से लौटकर दर्शकों के बीच आ चुकी थी। शर्मा-

जी और प्रफुल्लजी को देखते ही उसने दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन किया और सुमित्रा के साथ कोच पर बैठ गई।

नालिनी इधर कोच पर बैठी नहीं कि सामने मंच पर एक घण्टी टनटना उठी और घण्टी की टनटनाहट के साथ ही धीरे-धीरे मंच का पर्दा उठने लगा।

वाद्ययन्त्रों के मनोमोहक स्वरों के उतार-चढ़ाव के साथ दर्शकों ने देखा कि एक कुमारी भारत माता के रूप में उच्चासन पर आसीन है और एक दूसरी कुमारी घी के सात जलते दीपक एक रजत थाल में लेकर भारत-माता की आरती उतार रही है। उनके आसपास सात कुमारियाँ इस मंगल-वेला में गरवा नृत्य द्वारा अपना उल्लास प्रकट कर रही हैं।

कुमारियों का गरवा नृत्य बहुत ही आकर्षक और मनोरम था। यह कलात्मक नृत्य देखकर दर्शक आत्मविभोर हो उठे। इसके बाद कुमारियों ने एक छोटे से रूपक का अभिनय किया, जिसमें भारत के दीन-हीन किसान का वास्तविक रूप दर्शाया गया था। भारतीय प्रजातन्त्र के जन्मोत्सव पर नगरों में मनाए गए दीपोत्सव को एक किसान सर्वथा आश्चर्यजनक मुद्रा में देख रहा था। मानो उसे इस सबकी कोई खबर नहीं, और हो भी तो उसे इस सबका रहस्य ज्ञात नहीं, उसे कोई प्रसन्नता नहीं।

रूपक के अन्त में कुमारियों ने पतंग-नृत्य का प्रदर्शन भी किया। दर्शक इसे देखकर मन्त्र-मुग्ध से रह गए। अन्त में लता ने मंच पर आकर कहा—'सदियों के बाद आज हमारे देश में जनतन्त्र की स्थापना हुई है। परन्तु हमारे देश में जन साधारण को—दीन-हीन किसान और मजदूर-वर्ग को—इतने महान् परिवर्त्तन का पूरा-पूरा पता नहीं। यदि हो भी तो उसे इस मंगल वेला में कोई उल्लास नहीं, कोई अनोखा कहा जानेवाला आनन्द नहीं। इसके लिए हम उस दीन-हीन किसान अथवा मजदूर वर्ग को दोषी नहीं कह सकते। दोष तो बहुत-कुछ हमारा ही है—हमारी सरकार का है। हम उसे यह सब समझने का अवसर नहीं दे सके; उसकी दयनीय स्थिति को सुधार नहीं सके। सरकार के सामने इस समय बड़ी-बड़ी समस्याएँ हैं। इन समस्याओं को वह धीरे-धीरे हल कर रही है। परन्तु जब

किसानों को—जनसाधारण को खुशहाल करने पर सरकार पूरा-पूरा ध्यान देगी, तब चुटकी बजाते किसान और भारत का जन-जन यह समझ जाएगा कि प्रजातन्त्र में मानव का जीवन कितना सुखी और स्वच्छन्द हो सकता है। इसी आशा को लेकर, इसी एक सुनहरी किरण को देखकर हम सहेलियाँ भी आज गणतन्त्र के जन्मोत्सव पर अपना उल्लास व्यक्त कर रही हैं। हम सहेलियों को यदि आपका मनोरंजन करने में कुछ सफलता मिली हो, तो इसका श्रेय हमारी आचार्या कुमारी सुमित्राजी को है, और जो त्रुटियाँ रह गई हों, उनके लिए हम कुमारियाँ ही दोषी हैं।'

और ठीक लता के इस निवेदन की समाप्ति के साथ मंच का पर्दा गिरा दिया गया।

सुमित्रा ने कभी यह कल्पना नहीं की थी कि लता और उसकी सहेलियाँ इतना सुन्दर और कलात्मक अभिनय कर सकेंगी, और वह भी सुमित्रा को बिना कोई पूर्व सूचना दिए ही! फिर लता ने अपने भाषण में इस प्रदर्शन की सफलता का जो सारा श्रेय सुमित्रा को दिया है, वह भी इन सहेलियों की सुमित्रा के प्रति गहरी कृतज्ञता और आत्मीयता का सूचक है।

इस दशा में सुमित्रा ने भी मंच के निकट जाकर दर्शकों से दो शब्द कह देने की आवश्यकता का अनुभव किया। कहा उसने—'गान्धी महिला विद्यालय की कुछ छात्राओं ने आज जो आयोजन किया है, वह उनकी अपनी सूझ है। मुझे उनके रूपक और अभिनय पर गर्व है। यद्यपि इन छात्राओं ने इस संबंध में मुझसे कभी कोई परामर्श नहीं किया, फिर भी मेरे विचारों की पृष्ठभूमि पर ही प्रिय लता ने अपने जो विचार प्रकट किए हैं, उनमें यदि कहीं कोई अनौचित्य हो, तो अपनी छात्राओं की ओर से मैं आप सबसे क्षमा चाहती हूँ।'

तालियों की गड़गड़ाहट हुई और दर्शकों की ओर से घोष महोदय ने आज के इस कार्यक्रम की सफलता पर छात्राओं के साथ-साथ आचार्या सुमित्रा की भी यथेष्ट प्रशंसा करते हुए आभार प्रकट किया।

धीरे-धीरे दर्शक जब विदा हो चुके, तो नलिनी ने सुमित्रा से कहा—'आज तुम्हारा बहुत समय हम लोगों ने लिया, बहिन! अच्छा, अब यह बतलाओ कि तुम छात्रावास जाओगी या रजनी के घर ?'

'रात तो बहुत हो चुकी है!' लता ने बीच में ही कहा—'परन्तु रजनी आपकी राह देख रही होगी, आचार्याजी!'

'तुम चिन्ता न करो, लता!' सुमित्रा ने कहा—'तुम छात्राओं के स्नेह से ही मैं बँधी हूँ। तुम्हें निराश नहीं कर सकती। लेकिन आज जो देर हुई है, इसके लिए मैं दोषी नहीं।' और मुसकराते हुए सुमित्रा ने नलिनी से कहा—'हाँ बहिन, ड्राईवर से कह दो कि मुझे पहले रजनी के घर ले जाए और वहाँ से छात्रावास ले जाकर छोड़ दे।'

नलिनी ने तत्काल ड्राईवर को आवश्यक आदेश दिया और सुमित्रा को विदा किया।

रात बहुत भीग चुकी थी, अतः सुमित्रा ने रजनी के घर अधिक देर तक बैठना ठीक नहीं समझा। दस-पन्द्रह मिनट बैठकर ही उसने नम्रता और शिष्टाचार के साथ विदा माँग ली।

नलिनी की कार सुमित्रा को उसके छात्रावास में पहुँचाकर वापस चली गई।

थकी-माँदी सुमित्रा शीघ्र ही अपनी पोशाक बदलकर पलंग पर जा लेटी। परन्तु प्रयन्त करने पर भी उसे शीघ्र नींद नहीं आ सकी। आज के दीपोत्सव की झाँकी उसकी आँखों के सामने रह-रहकर झूल उठती थी। वह समझ नहीं सकी कि शहरों का सम्पन्न वर्ग जिसे मंगल वेला कह रहा है और अपरिमित खर्च कर इतना उल्लसित हो रहा है, उसे हमारे देश का मेरुदण्ड—दीन-हीन वर्ग—भी क्या मंगल वेला समझ रहा है ?

सुमित्रा के अन्तर की जागरूक नारी ने कहा—नहीं, कभी नहीं।

आज संध्या समय ही छात्रावास के बगीचे में टहलते समय सुमित्रा ने देखा था कि सामने सड़क पर घास-फूस की जो झोपड़ियाँ बनी हुई हैं, उनमें रहने-

वाले अर्द्धनग्न मजदूर आज भी तो सदा की तरह मुंह लटकाए किसी गहन गम्भीर चिन्ता की चिता पर मानो भीतर-ही-भीतर जल रहे थे। तब सुमित्रा कैसे स्वीकार करे कि यह मंगल वेला हमारे देश के जन-जन की तस्वीर है ?

और, पता नहीं, कितनी रात तक सुमित्रा इसी उलझन में व्यस्त रही और कब उसकी आँख लग सकी।

—६—

सम्पादकीय कक्ष में बैठे हुए पं० देवदत्त शर्मा 'त्रिवेणी' के सम्पादन-कार्य में व्यस्त थे कि दरबान ने दबे पाँव आकर उनकी मेज पर एक संज्ञापत्र रख दिया और चला गया।

शर्माजी इस समय ऐसा कार्य नहीं कर रहे थे कि दरबान के आ जाने अथवा खड़े रहने से कोई बाधा उत्पन्न होने की आशंका की जाती। परन्तु दरबान को शर्माजी का यही आदेश था कि जब वह किसी कार्य में व्यस्त हों, तो उन्हें टोका न जाए। इसीलिए दरबान उनकी मेज पर संज्ञापत्र रखकर चुपचाप बाहर चला गया।

शर्माजी आज की डाक देख रहे थे। उनके मन में आया कि संज्ञापत्र तत्काल देखकर दरबान को यथोचित आज्ञा दे दी जाए; किन्तु पता नहीं, क्या सोचकर उन्होंने ऐसा नहीं किया।

दरबान के चले जाने पर शर्माजी ने संज्ञापत्र देखा और तत्काल मेज पर रखी घण्टी का बटन दबा दिया। घण्टी की टनटनाहट सुनते ही दरबान भीतर दौड़ा आया। वह कुछ कहे, इसके पूर्व ही शर्माजी ने आदेश दिया—'उन्हें आने दो।'

दूसरे ही क्षण दरवाजे का पर्दा हटाते हुए एक आधुनिक तरुणी ने कमरे में प्रवेश किया और सामने बैठे हुए शर्माजी को दोनों हाथ जोड़ नमस्कार किया।

शर्माजी ने खड़े होकर आगंतुक का स्वागत करते हुए कहा—'आइए, आचार्या सुमित्राजी!'

सामने की कुर्सी पर बैठते हुए सुमित्रा ने कहा—'बहुत दिनों से आपसे मिलना चाहती थी; किन्तु कोई अवसर नहीं मिला।'

'मेरा सौभाग्य है कि वह अवसर आज मिल गया।' शर्माजी ने मुसकराते हुए कहा—'कहिए, क्या आज्ञा है ?'

शर्माजी के उत्तर का प्रारम्भिक अंश सुमित्रा को जितना मधुर लगा, अन्तिम अंश उतना ही तिक्त। यह बात नहीं कि सुमित्रा किसी सम्पादक अथवा पत्रकार से इसके पूर्व कभी मिली न हो और उसने कोई बात न की हो; किन्तु प्रथम वाक्य में ही 'क्या आज्ञा है' कहकर शर्माजी मानो काम के अतिरिक्त इधर-उधर की कोई बात नहीं करना चाहते।

सुमित्रा को लगा, अपने-अपने स्वभाव की बात है ! उसने शर्माजी की ओर ध्यानपूर्वक देखा। गम्भीर मुद्रा, सिर पर बड़े-बड़े बाल, जिनमें कंघा करने की छाप के साथ-साथ बुढ़ापे के चिन्ह भी झलकने लगे हैं; बड़ी-बड़ी, किन्तु सावधानी के साथ कटी-छँटी मूंछें; चौड़ा ललाट, घनी भौंहें, बड़ी-बड़ी और प्रतिभा टपकाती आँखें, गाल कुछ-कुछ पिचके हुए। सफेद खादी का एक कुर्त्ता, खुले कालर का साधारण-सा कोट और धोती। पैरों में साधारण-से बाटा के स्लीपर।

सुमित्रा के अन्तर की नारी ने स्वीकार किया कि शर्माजी अनुमानतः इस जीवन के चालीस वसन्तों से कुछ अधिक ही पार कर चुके हैं। कदाचित् इसीलिए उन्हें इस दुनिया में कोई विशेष आकर्षण नहीं रह गया है। सुमित्रा को अपने कौमार्य और रूप-सौन्दर्य पर इतना विश्वास था कि उसे देखकर कोई भी पुरुष उससे बातें करने में जल्द ऊब नहीं सकता; परन्तु आज उसका यह विश्वास कुछ लड़खड़ा उठा। शर्माजी के व्यक्तित्व का उस पर अदभुत् प्रभाव पड़ा। अधिक कुछ सोचने-विचारने का अवसर नहीं था। सुमित्रा ने अपने हाथ में दबे हुए एक लेख को शर्माजी की ओर बढ़ाते हुए कहा—'गणतंत्र दिवस की बरस-गाँठ पर मैंने भी कुछ लिख डाला है। 'त्रिवेणी' के लिए उपयुक्त समझें तो प्रकाशित कर दीजिएगा, अन्यथा वापस भेज दीजिएगा।' और कुर्सी से उठते हुए सुमित्रा ने कहा—'बस, यही कार्य था।'

"यदि समयाभाव न हो, तो दो-चार मिनट बैठ जाइए।' शर्माजी ने लेख लेते हुए और सुमित्रा की ओर देखते हुए कहा—'मैं अभी इसे देखकर अपना विचार बतलाए देता हूं। आशा-निराशा के झूले पर मैं आपको झुलाना नहीं चाहता।' और शर्माजी लेख पढ़ने लगे।

सुमित्रा फिर कुर्सी पर बैठ गई। उसे फिर शर्माजी के संबंध में मन-ही-मन कुछ सोचने-विचारने का समय मिल गया। एक क्षण पूर्व शर्माजी की पहली बात सुनकर सुमित्रा उनके संबंध में जो धारणा बनाने लगी थी, वह फिर डगमगा उठी। उसने स्वीकार किया कि अपने संबंध में उसका जो विश्वास अभी-अभी डगमगा उठा था, वह शायद भ्रम था। हाँ, भ्रम! यदि शर्माजी सुमित्रा के रूप-सौन्दर्य से तनिक भी प्रभावित न हुए होते, तो इस प्रकार कुछ मिनट बैठने का यह अनुरोध क्यों करते? जो व्यक्ति प्रथम वाक्य में ही काम की बात करने का स्पष्ट संकेत कर देता है, वह इस प्रकार बैठने का अनुरोध नहीं कर सकता। परन्तु दूसरे ही क्षण सुमित्रा को लगा, हो सकता है, शर्माजी अपना सम्पादकीय कर्त्तव्य इसी प्रकार तत्क्षण करने के आदी हों। जो भी हो, शर्माजी की इस सहृदयता के लिए वह कृतज्ञ रहेगी।

लेख का कुछ प्रारंभिक, कुछ मध्यम और अन्तिम अंश देखकर शर्माजी ने कहा—'लेख आपका बड़ा प्रभावोत्पादक है। प्रतीत होता है, यह आपकी अपनी अनुभूतियों से ही ओतप्रोत है। मैं इसे 'त्रिवेणी' के आगामी अंक में ही प्रकाशित कर दूँगा।'

सुमित्रा को एक क्षण को लगा कि वह भी अब कह दे कि बस, काम की बात हो चुकी, और वह जा रही है। परन्तु ऐसा वह कह नहीं सकी। नारी-सुलभ शील-संकोच और पुरुष की परुषता में आखिर कुछ तो अन्तर रहता ही है। फिर जो पुरुष अपने जीवन के चालीस से अधिक वसन्त बिता चुका हो, और जो नारी अभी बाईस बसन्त ही कठिनाई से बिता सकी हो और कुमारी भी हो, उन दोनों की व्यावहारिकता में भी धरती-आकाश का अन्तर होना अवश्यम्भावी है। इसीलिए सुमित्रा ने कहा—'हाँ, शर्माजी; इस लेख में मेरी अपनी अनुभूतियाँ तो हैं ही, कुछ उन

सामने की कुर्सी पर बैठते हुए सुमित्रा ने कहा—'बहुत दिनों से आपसे मिलना चाहती थी; किन्तु कोई अवसर नहीं मिला।'

'मेरा सौभाग्य है कि वह अवसर आज मिल गया।' शर्माजी ने मुसकराते हुए कहा—'कहिए, क्या आज्ञा है ?'

शर्माजी के उत्तर का प्रारम्भिक अंश सुमित्रा को जितना मधुर लगा, अन्तिम अंश उतना ही तिक्त। यह बात नहीं कि सुमित्रा किसी सम्पादक अथवा पत्रकार से इसके पूर्व कभी मिली न हो और उसने कोई बात न की हो; किन्तु प्रथम वाक्य में ही 'क्या आज्ञा है' कहकर शर्माजी मानो काम के अतिरिक्त इधर-उधर की कोई बात नहीं करना चाहते।

सुमित्रा को लगा, अपने-अपने स्वभाव की बात है ! उसने शर्माजी की ओर ध्यानपूर्वक देखा। गम्भीर मुद्रा, सिर पर बड़े-बड़े बाल, जिनमें कंघा करने की छाप के साथ-साथ बुढ़ापे के चिन्ह भी झलकने लगे हैं; बड़ी-बड़ी, किन्तु सावधानी के साथ कटी-छँटी मूंछें; चौड़ा ललाट, घनी भौंहें, बड़ी-बड़ी और प्रतिभा टपकाती आँखें, गाल कुछ-कुछ पिचके हुए। सफेद खादी का एक कुर्त्ता, खुले कालर का साधारण-सा कोट और धोती। पैरों में साधारण-से बाटा के स्लीपर।

सुमित्रा के अन्तर की नारी ने स्वीकार किया कि शर्माजी अनुमानतः इस जीवन के चालीस वसन्तों से कुछ अधिक ही पार कर चुके हैं। कदाचित् इसीलिए उन्हें इस दुनिया में कोई विशेष आकर्षण नहीं रह गया है। सुमित्रा को अपने कौमार्य और रूप-सौन्दर्य पर इतना विश्वास था कि उसे देखकर कोई भी पुरुष उससे बातें करने में जल्द ऊब नहीं सकता; परन्तु आज उसका यह विश्वास कुछ लड़खड़ा उठा। शर्माजी के व्यक्तित्व का उस पर अदभुत् प्रभाव पड़ा। अधिक कुछ सोचने-विचारने का अवसर नहीं था। सुमित्रा ने अपने हाथ में दबे हुए एक लेख को शर्माजी की ओर बढ़ाते हुए कहा—'गणतंत्र दिवस की बरस-गाँठ पर मैंने भी कुछ लिख डाला है। 'त्रिवेणी' के लिए उपयुक्त समझें तो प्रकाशित कर दीजिएगा, अन्यथा वापस भेज दीजिएगा।' और कुर्सी से उठते हुए सुमित्रा ने कहा—'बस, यही कार्य था।'

"यदि समयाभाव न हो, तो दो-चार मिनट बैठ जाइए।' शर्माजी ने लेख लेते हुए और सुमित्रा की ओर देखते हुए कहा—'मैं अभी इसे देखकर अपना विचार बतलाए देता हूं। आशा-निराशा के भूले पर मैं आपको भुलाना नहीं चाहता।' और शर्माजी लेख पढ़ने लगे।

सुमित्रा फिर कुर्सी पर बैठ गई। उसे फिर शर्माजी के संबंध में मन-ही-मन कुछ सोचने-विचारने का समय मिल गया। एक क्षण पूर्व शर्माजी की पहली बात सुनकर सुमित्रा उनके संबंध में जो धारणा बनाने लगी थी, वह फिर डगमगा उठी। उसने स्वीकार किया कि अपने संबंध में उसका जो विश्वास अभी-अभी डगमगा उठा था, वह शायद भ्रम था। हाँ, भ्रम! यदि शर्माजी सुमित्रा के रूप-सौन्दर्य से तनिक भी प्रभावित न हुए होते, तो इस प्रकार कुछ मिनट बैठने का यह अनुरोध क्यों करते? जो व्यक्ति प्रथम वाक्य में ही काम की बात करने का स्पष्ट संकेत कर देता है, वह इस प्रकार बैठने का अनुरोध नहीं कर सकता। परन्तु दूसरे ही क्षण सुमित्रा को लगा, हो सकता है, शर्माजी अपना सम्पादकीय कर्त्तव्य इसी प्रकार तत्क्षण करने के आदी हों। जो भी हो, शर्माजी की इस सहृदयता के लिए वह कृतज्ञ रहेगी।

लेख का कुछ प्रारंभिक, कुछ मध्यम और अन्तिम अंश देखकर शर्माजी ने कहा—'लेख आपका बड़ा प्रभावोत्पादक है। प्रतीत होता है, यह आपकी अपनी अनुभूतियों से ही ओतप्रोत है। मैं इसे 'त्रिवेणी' के आगामी अंक में ही प्रकाशित कर दूँगा।'

सुमित्रा को एक क्षण को लगा कि वह भी अब कह दे कि बस, काम की बात हो चुकी, और वह जा रही है। परन्तु ऐसा वह कह नहीं सकी। नारी-सुलभ शील-संकोच और पुरुष की परुषता में आखिर कुछ तो अन्तर रहता ही है। फिर जो पुरुष अपने जीवन के चालीस से अधिक वसन्त बिता चुका हो, और जो नारी अभी बाईस बसन्त ही कठिनाई से बिता सकी हो और कुमारी भी हो, उन दोनों की व्यावहारिकता में भी धरती-आकाश का अन्तर होना अवश्यम्भावी है। इसीलिए सुमित्रा ने कहा—'हाँ, शर्माजी; इस लेख में मेरी अपनी अनुभूतियाँ तो हैं ही, कुछ उन

अगणित शरणार्थियों की भी हैं, जिन्हें अपनी मातृभूमि से सदा के लिए बिदा लेकर दूसरों के आश्रय और कृपा पर अपने जीवन की साँसें गिननी पड़ रही हैं।'

'सफल रचना का निर्माण इन्हीं तत्त्वों पर निर्भर करता है।' शर्माजी ने कहा—'अपनी अनुभूति के साथ कुछ कल्पना और कुछ देखी-सुनी घटनाओं का सत्यांश जब कलात्मक ढंग से एकाकार हो जाता है, तब कथा-साहित्य जहाँ प्राणप्रद और ओजपूर्ण हो उठता है, वहाँ निबन्ध भी अत्यन्त प्रभावपूर्ण और प्रवहमान हो जाता है। आपके निबंध में यही विशेषता है। आप बहुत अच्छा लिखती हैं।'

कुछ रुककर शर्माजी ने अपनी आँखों पर चढ़े चश्मे को उतारते हुए और उसे मेज पर पड़े घरे में रखते हुए कहा—'कभी-कभी इसी प्रकार 'त्रिवेणी' में आप अपने निबन्ध देती रहें, तो कृपा होगी।'

'आपसे प्रोत्साहन मिला, तो अवश्य लिखती रहूँगी।'

'प्रोत्साहन तो उदीयमान लेखक – लेखिकाओं को दिया जाता है।' शर्माजी ने कहा—'आप तो अँगरेजी पत्रों में लिखा ही करती हैं। फिर गांधी महिला विद्यालय जैसी प्रतिष्ठित शिक्षण-संस्था की आप आचार्या हैं। यह कहना उचित होगा कि 'त्रिवेणी' को आप अपना सहयोग देकर मुझे उपकृत करेंगी।'

'यह आपका सौजन्य है, शर्माजी!' सुमित्रा ने गंभीर मुद्रा से कहा—'आप जैसे अनुभवी पत्रकार की प्रतिष्ठित पत्रिका में मेरे हिन्दी निबन्धों का प्रकाशन मेरे लिए गौरव की बात होगी।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'अच्छा, अब आज्ञा दीजिए। कभी-कभी मैं आपसे मिलने और आपके अनुभवों से लाभान्वित होने की चेष्टा करती रहूँगी।'

'मैं सहर्ष यथासाध्य सेवा करन के लिए तत्पर रहूँगा।' और शर्माजी ने खड़े होकर आचार्या सुमित्रा को बिदा किया।

सुमित्रा के चले जाने पर शर्माजी बहुत देर तक उसके संबंध में सोचते रह। क्या रूप-सौन्दर्य और शील-संकोच पाया है इस सुमित्रा ने! प्रतिभा भी अनोखी

पाई है ! हिन्दी-अँगरेजी में समान रूप निबन्ध लिखने में वह दक्ष है। किन्तु भाग्य की विडम्बना है कि बेचारी को शरणार्थी होकर अपनी मातृभूमि से सदा के लिए बिछुड़कर इतनी दूर आ जाना पड़ा। गनीमत है कि निर्मल नागर के प्रयत्न से यहाँ आचार्या हो गई।

उसका निबन्ध उसकी संवेदनशीलता का प्रतिबिम्ब है। कितनी मार्मिकता है उसकी अभिव्यक्ति में। कदाचित् यही कारण है कि वह अब तक कुमारी है। उसे अपने अनुरूप जीवन-संगी मिल जाना भी तो साधारण बात नहीं ।

शर्माजी को अपने देश की इस सामाजिक स्थिति पर तरस आ गया। उनका हृदय भर आया। कितने अरमानों से उसके माता-पिता ने उसे पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया होगा; परन्तु आज उसे कौमार्य का कठोर अनुभव करना पड़ रहा है। लड़कियों को अधिक शिक्षित करना भी एक बला है। उनकी शिक्षा-दीक्षा पर खर्च करो, फिर उनके विवाह में भी खर्च करो और अन्त में खर्च करनेवाले के हाथ कुछ भी नहीं लगता। उसे अकिंचन ही रहना पड़ता है। फिर अनुकूल वर मिलने में जो कठिनाइयाँ सामने आती हैं, वे अलग !.....

शर्माजी ने स्वीकार किया, इस मृत्युलोक में जन्म लेकर कोई भी मानव सम्पूर्ण अर्थों में कभी सुखी नहीं रह सकता। संघर्षों और अभावों का नाम ही मानव-जीवन है । स्वयं उनका अपना जीवन कितने संघर्षों में बीत रहा है !

अपने संघर्षों की बात अधिक देर तक शर्माजी सोचने-विचारने से घबरा उठते हैं। ऐसी बातें सोच-विचारकर उनका हृदय फटने लगता है । इसीलिए इस विचारधारा के उठते ही वह अपने संपादकीय कक्ष से उठकर बाहर चले गए।

'त्रिवेणी' कार्यालय के सामने ही एक बड़ा बगीचा है। उसी में जाकर शर्माजी ऐसे अवसर पर जा बैठते और यत्किंचित् सन्तोष का अनुभव करते। किन्तु आज इस बगीचे में आकर भी वह अपने संघर्षोंवाली मनोवेदना से मुक्ति न पा सके। उन्हें स्मरण आ गया उस कथाकार शैलेन्द्र का, जो उन्हें अपनी पार्टी में सम्मिलित होने का लोभ दिखला रहा था।

चार दिनों की जिन्दगी के संघर्ष से ऊबकर कर्त्तव्यच्युत होना शर्माजी की

समझ में मानव की सबसे बड़ी कायरता है। साहसपूर्वक संघर्षों का सामना करना ही बहादुरी है। उस शैलेन्द्र से यह सुमित्रा लाख बार वन्दनीय है। कितने संघर्षों का सामना उसे करना पड़ा, फिर भी बहादुरी से जीवन-संग्राम के मोर्चे पर डटी हुई है।

बहुत देर तक इन्हीं विचारधाराओं पर शर्माजी तिरते रहे और पुनः अपने कार्यालय में चले गए ।

— ७ —

गान्धी महिला-विद्यालय की आचार्या सुमित्रा का नाम तो प्रफुल्ल घोष ने उसी समय से सुन रक्खा था, जब निर्मलकुमार नागर के प्रस्ताव पर उसे नियुक्त किया गया था। यह भी ज्ञात हो चुका था कि वह अब तक कुमारी है, और पंजाब के अगणित शरणार्थियों की भाँति वह भी दुर्दिन की मारी है। परन्तु सुमित्रा को निकट से देखने का अवसर प्रफुल्ल घोष को अब तक नहीं मिला था। मिलता कैसे? प्रफुल्ल को अपने कारबार के सिलसिले में प्रायः कलकत्ते में ही रहना पड़ता है।

सिगरेट का एक बड़ा कारखाना कलकत्ते में चल रहा है। वह कारखाना विदेशियों का था—अँगरेजों का। परन्तु भारत जब स्वतन्त्र होने की तूफानी तैयारियाँ करने लगा और अँगरेज अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर यहाँ से भागने लगे, तब इस कारखाने को भी इसके मालिकों ने बेच दिया और वे अपने देश चले गए। प्रफुल्ल घोष ने इस कारखाने को खरीद लिया और बड़ी लगन से उसे चला रहा है।

प्रफुल्ल अपने मुँह में चाँदी की चम्मच लेकर इस संसार में उत्पन्न हुआ है। लाखों की सम्पत्ति उसके पिता छोड़ गए हैं। सौभाग्य या दुर्भाग्य से प्रफुल्ल के बड़े भाई का देहान्त हो चुका है, और आज अतुल पैतृक सम्पत्ति का वह एकमात्र अधिकारी है। पैतृक भवन इलाहाबाद में ही है, अतः प्रफुल्ल का परिवार यहीं रहता है।

प्रफुल्ल का परिवार बहुत बड़ा नहीं है। सन्तानहीन विधवा भाभी है, जो

रात-दिन पूजा-पाठ में लगी रहती है। पति के देहावसान के बाद उसे मानो इस दुनिया में कहीं कोई रस नहीं रह गया है। दो छोटी बहिनें हैं, जो गान्धी महिला-विद्यालय में पढ़ती हैं। इनके अतिरिक्त प्रफुल्ल घोष की पत्नी भी थी, जो चार-पाँच वर्ष पूर्व ही इस घर में आई थी; परन्तु एक पुत्र को जन्म देकर वह बेचारी इस दुनिया से उठ चुकी। हाँ, उसका पुत्र इस समय तीन वर्ष का है।

इस परिवार को लेकर प्रफुल्ल कलकत्ते नहीं जाना चाहता। एक तो कलकत्ता बहुत महँगा है, दूसरे इलाहाबाद का आलीशान पैतृक भवन न तो वह सूना छोड़ने के पक्ष में है, न उसे किराए पर देना ठीक समझता है। यही कारण है कि प्रफुल्ल कभी अपने बच्चे के साथ और कभी अकेले ही कलकत्ते में महीनों बना रहता है। बीच-बीच में प्रयाग आकर परिवार की देखभाल कर जाता है और शहर के मित्रों से मिल-भेंट जाता है।

प्रफुल्ल के मित्रों में निर्मलकुमार नागर का स्थान सर्वोपरि है। दोनों ही कालेज में सहपाठी थे। तभी से एक - दूसरे को बहुत चाहते हैं। दोनों ही सार्वजनिक कार्यों में हाथ बँटाने के आकांक्षी हैं। यही कारण है कि निर्मल नागर ने जब गान्धी महिला-विद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव रक्खा, तब प्रफुल्ल ने, न केवल उसका समर्थन किया, प्रत्युत हाथ खोलकर आर्थिक सहयोग भी दिया।

कल रात्रि में जब नागर के निवासस्थान पर प्रफुल्ल ने गान्धी महिला-विद्यालय की कुछ कुमारियों द्वारा अभिनीत रूपक देखा, तब आचार्या सुमित्रा के प्रति अनायास ही वह एक आकर्षण से भर उठा। अपनी छोटी बहिनों से भी कई बार सुमित्रा की प्रशंसा वह सुन चुका था।

सुमित्रा के रूप-रङ्ग, मांसल शरीर, शिष्ट व्यवहार और उसकी मधुर वाणी में प्रफुल्ल को एक अनोखा आकर्षण प्रतीत हुआ। सुबह की चाय पीकर वह अपनी बैठक में बैठा-बैठा आज इस सुमित्रा को ही लेकर घण्टों उलझा रहा।

इसी सिलसिले में उसे सहसा अपनी दिवंगत पत्नी का ध्यान आ गया। कितनी सुन्दर थी उसकी पत्नी शैल! नवबधू के रूप में जिस दिन उसने प्रफुल्ल के घर में पग रक्खा था, वह दिन क्या प्रफुल्ल कभी भूल सकता है? शैल की

अप्रतिम रूपराशि पर प्रफुल्ल न्योछावर हो उठा था। फिर उसके आज्ञाकारी रूप ने तो मानो प्रफुल्ल को खरीद ही लिया था। इस आज्ञाकारिता के साथ-साथ शैल में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह प्रफुल्ल की प्रत्येक रुचि-अरुचि को बहुत ही जल्दी समझ चुकी थी—पढ़ चुकी थी। प्रफुल्ल ने तभी स्वीकार किया था कि दाम्पत्य जीवन के रङ्गमहल को नन्दन-वन की भाँति सुखद और सुवासित करने के लिए यह परख ही सर्वोपरि है। शैल में यह सब परखने की अद्भुत क्षमता थी।

शैल के देहावसान के बाद अनेक विवाह-प्रस्ताव आए; परन्तु प्रफुल्ल ने किसी को स्वीकार नहीं किया। उसे भय था कि पत्नी संज्ञा के साथ जो सुखद स्मृतियाँ शैल छोड़ गई है, वे कहीं चकनाचूर न हो जाएँ। कौन कह सकता है कि जो दूसरी कुमारी उसकी पत्नी बनकर आएगी, वह शैल के रिक्त स्थान की सभी अर्थों में पूर्त्ति कर सकेगी। इसीलिए प्रफुल्ल ने यह कहकर इन प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया कि अभी हाल वह विवाह नहीं करना चाहता।

परन्तु इस सुमित्रा को कल रात्रि में जब से प्रफुल्ल ने देखा है, एक सर्वथा अप्रत्याशित विचार-धारा के भँवर-जाल में वह डूबने-उतराने लगा है। पता नहीं, हृदय के किस अज्ञात कक्ष से रह-रहकर एक ध्वनि उठती है कि यह सुमित्रा भी शैल से कम सुन्दर नहीं है।

तो क्या नारी की सुन्दरता ही सब-कुछ है ? नारी का रूप और यौवन ही सर्वोपरि है ? परन्तु प्रफुल्ल स्वयं इन प्रश्नों का उत्तर खोज नहीं पाता। वह कैसे खोज सकता है? इन प्रश्नों का उत्तर तो वही भुक्तभोगी दे सकता है, जिसने नारी के रूप और यौवन को, उसके उभार तथा उतार को समान रूप से देखा-समझा हो। प्रफुल्ल ने केवल ज्वार देखा है, भाटा नहीं। नारी के रूप और यौवन के सम्बन्ध में उसकी जो रँगीली धारणाएँ हैं, उन्हें वह जर्जरता की अनिवार्यता से रसहीन नहीं बनाना चाहता। जब जो होगा, देखा जाएगा। 'खाओ-पियो और मौज उड़ाओ। दो दिन का जीवन और एक दिन की जवानी !' परन्तु प्रफुल्ल ऐसे प्रश्नों को उद्भूत न होने देगा—हरगिज नहीं। वह तो कुछ पुस्तकों में ऐसी बातें पढ

चुका है और जब कभी अपने मित्रों से भी यह सब सुन चुका है, इसीलिए कभी-कभी ऐसे प्रश्न अनायास उसके अन्तस्तल को मथने लगते हैं।

पैसे का जहाँ तक सम्बन्ध है, प्रफुल्ल को कोई कमी नहीं। तरुणाई भी उस को इस समय ज्वार पर है। परन्तु यह ज्वार क्या सदा अक्षुण्ण रहेगा? नहीं, हरगिज नहीं। प्रकृति के अटल नियम को कब, कौन रोक सका है? तब प्रफुल्ल इस तरुणाई में ही क्यों जीवन की रंगीनियों से दूर रहे? परन्तु ऐसा विचार उठते ही शैल की जो स्मृति और उसकी मूर्त्ति आँखों के सामने सहसा आ जाती है, उसे प्रफुल्ल कैसे दूर करे?

शैल और सुमित्रा!

इन दोनों नारियों को लेकर प्रफुल्ल एक विकट समस्या में उलझ गया है। एक दिवंगत है, दूसरी जीवित है—सामने है। एक के रसाकर्षण का प्रफुल्ल स्वयं अनुभव कर चुका है; परन्तु जी भरकर नहीं। एक अतृप्ति रह गई है। वह अतृप्ति यदि सुमित्रा को प्राप्त कर पूरी की जा सके, तो क्या बुराई है? हाँ, शैल आज इस दुनिया में होती, तो निश्चय ही प्रफुल्ल यह सब सोचने-विचारने की हिमाकत न करता। और, सुमित्रा यदि विवाहित होती, तो भी प्रफुल्ल इस भावना को अपने मन में कभी न उठने देता। परन्तु सुमित्रा है कुमारी और दुर्दिन की मारी। यदि किसी तरह सुमित्रा को वह अपनी ओर आकर्षित कर सके, अपनी बना सके, तो उसके जीवन की शुष्कता निश्चय ही सरसता में परिणत हो सकती है। यद्यपि यह कोई नहीं कह सकता कि सुमित्रा प्रफुल्ल के प्रति आकृष्ट हो ही जाएगी; परन्तु प्रयत्न करने से चूकना ठीक न होगा।

तभी प्रफुल्ल के मन में दूसरी आशंका उत्पन्न हुई। सुमित्रा है पंजाबी और वह रहा बंगाली। पता नहीं, सुमित्रा अन्तर्जातीय विवाह करना स्वीकार भी करेगी या नहीं? लेकिन करेगी क्यों नहीं? आज के प्रगतिशील युग में यह सब ढकोसले तीव्रता से मिटते जा रहे हैं। हमारे नेताओं ने इस दिशा में स्तुत्य पग बढ़ा दिया है। कितने ही चोटी के नेताओं ने अपने पुत्र-पुत्रियों के अन्तर्जातीय विवाह कर डाले हैं और यह अवरुद्ध-सा मार्ग मानो सबके लिए प्रशस्त कर दिया

है । फिर, सुमित्रा यदि अन्तर्जातीय विवाह न करना चाहेगी, तब देखा जाएगा।...

बहुत देर तक इसी सम्बन्ध में प्रफुल्ल आज तानाबाना बुनता रहा। अन्त में उसने अपनी छोटी बहिन कजला को बुलाया और कहा—'कजला, आज सन्ध्या समय तुम अपनी आचार्या कुमारी सुमित्राजी को अपने घर जलपान के लिए आमंत्रित कर देना। मेरा मतलब यह है कि विद्यालय में पहुँचते ही उनसे मेरी ओर से अनुरोध कर देना।'

'मैं बहुत दिनों से चाहती थी दादा, कि आचार्याजी को अपने घर बुलाऊँ।' कजला ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'परन्तु आप यहाँ नहीं थे, इसलिए मैंने अपना विचार स्थगित कर रक्खा था।'

'तब ठीक है।' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा—'आज तुम अपना विचार कार्य रूप में परिणत कर डालो, कजला!'

'लेकिन आप भी फोन पर उन्हें निमंत्रण दे दें, तो अधिक अच्छा होगा।' कजला ने अनुरोध के स्वर में कहा।

'अच्छा, मैं भी दो बजे के बाद फोन पर सुमित्राजी को निमंत्रण दे दूँगा। परन्तु तुम विद्यालय में पहुंचते ही मौखिक निमंत्रण अवश्य दे देना।'

'आपका आदेश क्या मैं भूल जाऊँगी, दादा?' और मुसकराती हुई कजला उस कमरे से चली गई।

—८—

रात में बहुत देर से सुमित्रा सो सकी थी, इसलिए सुबह देर से वह जाग सकी। चाय पीकर वह अपने बैठकखाने में बैठी-बैठी कल रात की ही बातों में अनायास उलझने लगी। नलिनी की पुत्री लता और उसकी सहेलियों ने जिस रूपक का अभिनय किया था, वह बहुत ही सामयिक और प्रभावोत्पादक रहा। और, इन छात्राओं के बुद्धि-कौशल तथा सफल अभिनय के कारण सुमित्रा को अनायास और अप्रत्याशित श्रेय भी मिल गया।

दर्शकों की ओर से यह श्रेय जिस व्यक्ति ने दिया था, उसका एक चित्र सुमित्रा की आँखों के सामने नाच उठा। गौर वर्ण, उन्नत ललाट, बड़ी-बड़ी आँखें, खुला सिर और दूध-सी श्वेत खादी की पोशाक। और बंगाली होकर भी विशुद्ध हिन्दी बोल सकना मानो उस व्यक्तित्त्व की अपनी विशेषता थी।

सुमित्रा को स्मरण आया, नलिनी कह रही थी कि यह बंगाली सज्जन—प्रफुल्ल घोष—इस गान्धी महिला-विद्यालय के अनन्य सहायकों में से हैं। लेकिन जिस प्रकार प्रायः सभी आमन्त्रित दर्शक सपत्नीक आए थे, प्रफुल्ल घोष भी सपत्नीक क्यों नहीं आए? तभी सुमित्रा को स्मरण आया कि व्यापार के सिलसिले में वह कलकत्ते में रहते हैं। सम्भव है, उनकी पत्नी कलकत्ते में हों, अथवा अन्य किसी कारण वह न आ सकी हों। जो भी हो, सुमित्रा ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि वह आज प्रफुल्ल की छोटी बहिनों—कजला और रेणुका—से इस सम्बन्ध में पूछताछ करेगी।

तभी सुमित्रा की बौद्धिक नारी ने बाधा दी—किसी पर-पुरुष के सम्बन्ध में,

उसकी पत्नी को लेकर कोई पूछताछ करना, एक कुमारी के लिए कहाँ तक उचित होगा ? सुमित्रा अपने-आप मानो किसी लज्जा का अनुभव कर संकुचित-सी हो उठी। जहाँ तक हो सकेगा, अब कजला अथवा रेणुका से वह ऐसी कोई बात नहीं पूछेगी। यदि पूछेगी भी, तो किसी यथोचित भूमिका के साथ ही ऐसा करेगी। यों वह नलिनी बहिन से भी अपनी इस जिज्ञासा का समाधान कर सकती है।

इन्हीं विचारों में डूबती-उतराती सुमित्रा सम्भवतः बहुत देर तक आज बैठी रहती कि परिचारिका ने आकर उसका ध्यान बँटा लिया; कहा—'नौ बज चुके हैं, सरकार! आप स्नान-भोजन की तैयारी नहीं करेंगी आज ?'

सुमित्रा ने कुछ चौंकते हुए कहा—'अरे, मैं यह सब भूल ही गई थी। चलो, मैं अभी स्नान करने आ रही हूँ। विद्यालय में आज छुट्टी थोड़े ही है।' और सुमित्रा बैठक से उठकर नहाने-धोने की तैयारी में जुट गई।

ठीक समय पर तैयार होकर सुमित्रा विद्यालय में जा पहुँची। अपने कमरे में पहुँच, वह आवश्यक कागज-पत्रों में खो जाने की चेष्टा करने लगी। परन्तु इस प्रयत्न में उसे सफलता न मिल सकी। उसका मन किसी काम में नहीं लग रहा था। इस बीच जितनी भी अध्यापिकाएँ उसके पास आईं, सुमित्रा सदा की तरह खुलकर उनसे कोई बात न कर सकी। सुमित्रा स्वयं अपने इस रुख पर विचार करने लगी और मन-ही-मन एक खीझ से भर उठी। उसने स्वीकार किया, यह सब उसके लिए अशोभन है। परन्तु मन की उड़ान पर उस-जैसी मानवी का वश ही क्या ?

इसी बीच उसके कमरे में सहसा कजला ने प्रवेश किया और दोनों हाथ जोड़ अभिवादन किया।

सुमित्रा ने मुसकराते हुए उसका अभिवादन स्वीकार किया और कहा—'आओ कजला, बैठो।'

कजला को देखते ही जो मुस्कान सुमित्रा के ओठों पर सहसा नाच उठी, उस पर स्वयं उसे तनिक-सा आश्चर्य हुआ। आज सुबह से अब तक सुमित्रा जिस

गम्भीरता से ओतप्रोत थी, वह इस कजला को देखते ही सहसा भाप-जैसी कहाँ विलीन हो गई! आखिर क्यों? क्या किसी मेघ-पटल को विदीर्ण कर कोई सुनहरी किरणें उसके सामने नाच उठी हैं? और इस प्रश्न का उत्तर खोजने, सुमित्रा को कहीं दूर नहीं जाना पड़ा। तत्काल उसने अर्द्धविदित रूप में यह स्वीकार किया कि जिस प्रफुल्ल को लेकर वह आज सुबह से ही उलझ रही है, उसकी बहिन कजला को सामने देखकर ही यह मुस्कान उसके ओठों पर सहसा नाच उठी है।

कजला चुपचाप बैठी अपनी आचार्या को ध्यानावस्थित-सी देख रही थी। तभी सुमित्रा ने पूछा—'कहो कजला, क्या बात है? पढ़ाई-लिखाई ठीक चल रही है न?'

'जी, ठीक चल रही है।' कजला ने उत्सुकता के साथ कहा—'आज एक अनुरोध लेकर आई हूँ।'

'तो इतने संकोच की बात क्या है, कजला!' सुमित्रा ने मुसकराते हुए कहा—'सुनूँ भी, क्या अनुरोध है तुम्हारा?'

'आज सन्ध्या समय आप मेरे घर चलकर जलपान कीजिए!' कजला ने प्रसन्नता से भरकर कहा—'दादा ने यह अनुरोध किया है।'

कजला के दादा का नाम सुनते ही सुमित्रा एक पुलक-प्रकम्प से भर उठी। तो यह अनुरोध प्रफुल्ल घोष ने किया है! जिनको लेकर आज वह स्वयं उलझ रही है, उनका अनुरोध वह कैसे टाल सकेगी!

सुमित्रा को इस प्रकार चुप देख, कजला का सारा उत्साह ठण्ढा पड़ने लगा। तो क्या उसकी आचार्या जलपान का यह निमंत्रण स्वीकार न करेंगी? अधीर होकर उसने फिर कहा—'दादा भी सम्भवतः दो बजे के बाद आपको टेलीफोन द्वारा यह निमन्त्रण देंगे।'

कजला की यह बात सुनते ही सुमित्रा का रोम-रोम पुलकित हो उठा। प्रफुल्ल घोष स्वयं टेलीफोन द्वारा उसे आमन्त्रित करेंगे, यह क्या कम प्रसन्नता की बात है!

सुमित्रा ने गद्‌गद होते हुए कहा—'टेलीफोन द्वारा निमन्त्रण देने की तो कोई आवश्यकता नहीं, कजला!'

कजला की निराशा उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। कैसी हैं यह आचार्या? मैं स्वयं निमन्त्रण दे रही हूँ, दादा भी टेलीफोन द्वारा निमंत्रण देंगे; परन्तु यह हैं कि स्वीकृति देने में इतना आगा-पीछा सोच रही हैं! कजला ने कुछ तीक्ष्ण दृष्टि से अपनी आचार्या को देखते हुए कहा—'तो क्या आपने हमारा निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया?'

'अरे, यह मैंने कब कहा, कजला?' सुमित्रा ने आश्चर्यचकित होकर कहा और एक मधुर मुस्कान उसके ओठों पर नाच उठी।

किसी नीर-भरी बदली के बीच मानो बिजली चमक उठी। कजला को आशा की सूक्ष्म सुनहरी किरणों का दर्शन हुआ। कहा उसने—'लेकिन आपकी स्वीकृति तो अब तक नहीं मिली?'

'स्नेह और आत्मीयता से भरे निमन्त्रण को भला, कौन टाल सकता है, कजला?' सुमित्रा ने कजला का—उसके दादा का—निमंत्रण स्वीकार करते हुए कहा—'मैं अवश्य आऊंगी तुम्हारे घर।' फिर एक क्षण रुककर बोली—'मेरा मतलब तुम नहीं समझ सकीं, कजला! तुम्हें शायद कुछ भ्रम हो गया। टेलीफोन द्वारा निमंत्रण देने को मैंने इसलिए अनावश्यक कहा था कि जब तुम स्वयं निमंत्रण दे रही हो, तब तुम्हारे दादा को टेलीफोन करने का कष्ट उठाना अनावश्यक है।'

'बिलकुल यही भ्रम हो गया था, आचार्याजी!' कजला ने कहा—'अच्छा, सन्ध्या समय हम लोग आपकी राह देखेंगे।' और मुसकराती हुई कजला उस कमरे से अपनी कक्षा में चली गई।

अपने ही जीवन-पृष्ठों को उलट-पुलटकर देखने और उन पर मन-ही मन विचार-विमर्श करने की सनक पं० देवदत्त शर्मा में विशेष रूप से घर कर चुकी है। आज संध्या समय 'त्रिवेणी' का नया अङ्क सामने रखकर वह अपना हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे और उस पत्रिका के संबंध में सोच-विचार रहे थे, जिसे छोड़कर उन्हें 'त्रिवेणी' का सम्पादन-भार वहन करना पड़ा।

अपनी पत्नी मीरा की लम्बी बीमारी में उस समय शर्माजी को दुनिया का बड़ा कटु अनुभव हुआ। मियादी बुखार से मीरा पीड़ित हो गई थी। पूरे सात सप्ताह तक उस मियादी बुखार ने पिण्ड नहीं छोड़ा था। इस मोतीझिरा में बुखार के साथ-साथ मीरा को और भी अनेक उपसर्गों का शिकार हो जाना पड़ा था, जिनके फलस्वरूप न तो मीरा का पहले-जैसा मांसल शरीर रहा, न कान्ति अथवा शक्ति। उसका शरीर अस्थि-पंजर मात्र रह गया था। लेकिन इसी अस्थिपंजर को बचा लेने के लिए शर्माजी ने आकाश-पाताल के कुलाबे एक कर दिए थे। शहर के बड़े-से-बड़े और अधिक-से-अधिक फीस लेनेवाले डाक्टरों को उन्होंने कई बार अपनी पत्नी को देखने के लिए घर बुलाया। दवा-दारू में सीमा से बाहर उन्होंने खर्च कर डाला, जिसका प्रायश्चित्त उन्हें अब तक करना पड़ रहा है।

इस बीमारी में शर्माजी को लंबी छुट्टी लेनी पड़ी। फलतः जिस पत्रिका का शर्माजी संपादन करते थे, उसके संचालक ने उनकी सेवाएं लेना बन्द कर दिया। पूँजीवादी युग जो ठहरा! इस युग म पूँजीपतियों का स्वार्थ—दूसरों का शोषण—ही जहाँ सर्वोपरि है, वहाँ मानवता की झाँकी दुर्लभ हो चुकी है। फिर

शाब्दिक सहानुभूति उँड़ेलकर हमारे मित्र होने का दम्भ दिखलानेवाले भी हमारे संकट का अनुचित लाभ उठाने में तनिक नहीं हिचकते। ऐसे ही एक मित्र उस पत्रिका का सम्पादन करने लगे। दाल-रोटी का बँधा-बँधाया सिलसिला भी शर्माजी का टूट गया।

ऐसी परिस्थितियों में भी शर्माजी विचलित नहीं हुए। इस समय तो उनके समक्ष पत्नी मीरा के स्वस्थ हो जाने की समस्या ही सबसे बड़ी थी।

यह बात नहीं कि आर्थिक और मानसिक हथौड़ों की निरन्तर चोटों से शर्मा-जी का अन्तस्तल तिलमिला न उठा हो। परन्तु इस तिलमिलाहट को वह अपने ही अन्तराल में दबाए रखना चाहते थे। अस्वस्थ पत्नी को इस तिलमिलाहट से वह अभिभूत नहीं करना चाहते थे।

दूर के एक साहित्यिक मित्र ने इस संकटापन्न स्थिति में अपनी सामयिक सहायता देकर शर्माजी को अन्धकार में भी प्रकाश की किरणों का दर्शन कराया। सैकड़ों मील दूर रहनेवाले इस स्नेही साहित्यिक ने एक दिन अनायास ही मनो-आर्डर द्वारा कुछ रुपया भेज दिया और लिख दिया—'भाभी के उपचार के लिए यह अकिंचन सहायता स्वीकार कीजिए। इसे लौटाइए नहीं, अन्यथा मुझे असह्य कष्ट होगा।'

कहते हैं, स्वर्ग-नरक, सुख-दुख, मित्र-शत्रु, साधु-शैतान, फूल-काँटे सब इसी दुनिया में हैं। उस दिन शर्माजी ने इन बातों में से मित्र और शत्रुवाली बात का प्रत्यक्ष अनुभव किया। एक वह साहित्यिक है, जिसने शर्माजी की स्थिति को दयनीय समझते हुए भी उनकी रोजी छीन ली, और दूसरा यह साहित्यिक है, जिसने सैकड़ों मील दूर रहने पर भी और नाम-मात्र का परिचय होते हुए अपनी हैसियत के अनुसार नकद आर्थिक सहायता दी।

नौकरी छूट जाने से शर्माजी को कुछ चिन्ता तो अवश्य हुई, लेकिन पत्नी की अस्वस्थताजन्य चिन्ता के समक्ष वह नगण्य ही रही। वह जानते थे, यदि पत्नी स्वस्थ न हो सकी, तो उनकी गृहस्थी का रङ्गमहल धूल-धूसरित हो जाएगा। छोटे-छोटे अबोध बच्चों का पालन-पोषण सर्वथा असंभव हो जाएगा। बड़े बच्चे

हरीश को छोड़, लज्जा बेटी और शम्भु तो इतने अल्पवयस्क हैं कि उनकी देखभाल करना और उन्हें पालना-पोसना देवदत्त—जैसे श्रमजीवी लेखक और पत्रकार के बस की बात नहीं।

जिस परिवार के पौधों को मीरा के साथ-साथ शर्माजी ने अपने शरीर के रक्त से सींच-सींचकर पाला-पोसा है, उनके उजड़ जाने की कल्पना करते ही शर्माजी काँप उठते थे। जब कभी मीरा को हृदय-रोग के दौर आने लगते, उसकी नाड़ी गायब होने लगती, तब शर्माजी को लगता कि उनकी जिंदगी शायद इस संसार में मात्र दुखों का पहाड़ ढोने में ही समाप्त हो जाएगी। जब बच्चों के बड़े होने, उनके ब्याह होने आदि के दिन निकट आ रहे हैं, तब क्या उनका जीवन-संगिनी उनका साथ छोड़कर चली जाएगी और उनके अब तक के दुखी जीवन को और भी अधिक दुखों से ढँक जाएगी ?

उन प्रसंगों की धूमिल स्मृति से शर्माजी इस समय गहरे पश्चात्ताप से भर उठे, जब इस सती-साध्वी पत्नी को उन्होंने तनिक-तनिक-सी गलती पर अपशब्दों की बौछार से गीला कर दिया और कभी-कभी उस पर बरस भी पड़े। यह बात नहीं कि ऐसा करने में सारा दोष शर्माजी का ही रहा हो; किन्तु इस समय शर्माजी दूसरों के दोषों पर नहीं, स्वयं अपने दोषों और अपनी त्रुटियों पर अभिभूत हो रहे थे।

ऐसी परिस्थितियों में जब पूरे उनचास दिनों के पश्चात् मीरा को पथ्य दिया जाने लगा, तो इसे उन्होंने बच्चों का भाग्य समझ, एक हलके संतोष की साँस ली। जब तक मीरा चलने-फिरने न लगे और पूर्ववत् गृहस्थी का भार वहन न करने लगे, तब तक शर्माजी पूर्ण सन्तोष का अनुभव कैसे कर सकते थे ?

चालीस के मोड़ पर पहुंचकर देवदत्त का मन अब दुनिया की रंगीनियों से अपने-आपको बहुत दूर का प्राणी समझने लगा है। पत्नी के बचने की उस समय कोई आशा उन्हें नहीं रह गई थी। इस दशा में उसके पुनर्जन्म पर, स्वभावतः शर्माजी ने जब अपने ही जीवन के पिछले अध्यायों पर एक दृष्टि डाली, तो सारा जीवन उन्हें किसी हरित-भूमि-सा प्रतीत हुआ।

मन की इस छलना पर देवदत्त को स्वयं आश्चर्य हुआ। जिस गृहस्थी में रह-कर देवदत्त अपने जीवन की एक खासी लंबी अवधि को, सरसता और रुक्षता, आनन्द और खिन्नता, फूलों और काँटों, सुखों और दुखों आदि के बीच बिता चुके हैं, वही गृहस्थी आज उन्हें सुखद स्वप्नों-सी रंगीन-ही-रंगीन प्रतीत हो रही थी!

सुख के साथ दुख, फूल के साथ काँटे, आनन्द के साथ खिन्नता और सरसता के साथ रुक्षता का जो समावेश देवदत्त देख चुके हैं, उन्होंने स्वीकार किया कि वह सब तो उसी तरह अनिवार्य और सार्थक है, जिस प्रकार दिन के जगमग उजाले के बाद रात्रि का कुहू अन्धकार।

ईश्वर जब आय का एक द्वार बन्द कर देता है, तब दूसरा भी कहीं-न-कहीं खोल देता है। शर्त्त यही है कि मानव कर्महीन होकर निश्चेष्ट न बैठ रहे। और कर्म का जहाँ तक संबंध है, शर्माजी घोर कर्मठ हैं। उनको कर्मठता ने ही उन्हें 'त्रिवेणी' जैसी सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका का सम्पादक बना दिया है। 'त्रिवेणी' के संचालक शर्माजी की सेवाओं से पहले से ही परिचित थे। अवसर देखकर उन्होंने शर्माजी की सेवाएँ प्राप्त कर लीं।

अर्थोपार्जन ही यदि जीवन के समस्त सुखों का मूलाधार होता, तो शर्माजी का जीवन आज परम सुखी होता। परन्तु अर्थोपार्जन के साथ-साथ कितने ही अभिशाप उनके जीवन पर काली घटाओं की तरह छाए रहते हैं और उन्हें कभी चैन नहीं लेने देते। पारिवारिक अस्वस्थता और तज्जन्य अशान्ति उनका कभी पिण्ड नहीं छोड़ती।

तरुणाई की शहनाई जब देवदत्त के रोम-रोम से बज उठी थी और मीरा ने उनके जीवन में सहस्र दीपों-सी जगमग दीवाली का स्निग्ध प्रकाश भर दिया था, तब दुनिया के सभी तरुणों की भाँति देवदत्त भी फूले नहीं समाए थे। जीवन की रंगीनियों का मादक स्पर्श करते हुए उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन की देहरी पर पग बढ़ाकर अपने-आपको परम सुखी अनुभवी किया था। परन्तु रंगीन सपनों का इन्द्रधनुष धीरे-धीरे धूमिल होने लगा और जीवन-नाटक के पट-परिवर्त्तन

उन्हें निरन्तर परेशान करने लगे। वह रात-दिन अभिभूत रहने लगे।

इधर अपने बड़े पुत्र हरीश की गतिविधि पर शर्माजी को दिनोंदिन असन्तोष रहने लगा है। अशिष्टता, उद्दण्डता और उच्छृङ्खलता उसमें दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग और उपार्जन जिस पुत्र के निर्माण में उन्होंने न्योछावर कर दिया, उसकी इस अप्रत्याशित गतिविधि पर उन्हें जो मानसिक क्लेश और अशान्ति होने लगी है, उसका विषाक्त प्रभाव उनके स्वास्थ्य और स्वभाव पर भी पड़ने लगा है। धीरे-धीरे उनका शरीर कृश और दुर्बल होने लगा है और स्वभाव एकदम चिड़चिड़ा। तनिक-तनिक-सी बात पर अब शर्माजी खीझ उठते हैं।

यह सब स्वाभाविक ही था। जिस पुत्र की साधारण-असाधारण सभी माँगों को देवदत्त ने पूरा करने में कभी कुछ उठा न रक्खा हो, उसकी ओर से किसी भी अशिष्टता को वह सहन कैसे कर सकते?

एक दिन की बात है। शर्माजी अपनी डैस्क पर झुके सदा की तरह कुछ लिख रहे थे। सहसा हरीश आया और बोला—'दादा, एक खुश-खबरी सुनाता हूँ। लेकिन मेरी एक माँग तुम्हें पूरी करनी होगी।'

'क्या माँग है तुम्हारी, बेटा?' देवदत्त ने कलम रखते हुए पूछा—'आखिर सुनूँ भी वह खुशखबरी?'

'तो मेरी माँग पूरी कर दोगे न?' हरीश ने दोहराया।

'वह खुशखबरी तुम्हारी माँग पूरी करने योग्य होगी, तो अवश्य कर दूँगा।'

'है, तभी मैं ऐसा कह रहा हूँ।'

'क्यों नहीं, तुम बी० ए० में पढ़ रहे हो और तर्कशील भी हो, अतः तुम्हारी माँग तर्कसंगत होनी ही चाहिए।'

'तो सुनो, प्रान्तीय सरकार ने तुम्हें और माँ को दो पुस्तकों पर एक हजार रुपए का पुरस्कार प्रदान किया है। अभी-अभी मैं अखबार में पढ़कर आ रहा हूँ।'

'ईश्वर को धन्यवाद!' देवदत्त ने कहा—'जब हमें एक हजार रुपया

मिला है, तो तुम्हारी माँग मैं अवश्य पूरी करूँगा। सुनूँ तो क्या है वह माँग?'

'एक बढ़िया रेडियो ले दो, दादा!'

'अवश्य ले दूँगा।'

और पुरस्कार की रकम मिलते ही शर्माजी ने चार सौ रुपए का एक रेडियो-सेट खरीद दिया। यद्यपि पत्नी ने बहुत रोका कि अभी लड़के की उच्च शिक्षा का बोझिल खर्च हमारे सिर पर है, उसका ब्याह भी अब किसी दिन शीघ्र ही करना होगा। ऐसी दशा में रेडियो पर इतना रुपया बहाना ठीक नहीं। परन्तु देवदत्त ने कहा—'ईश्वर सब पूरा करेगा। मेरी स्थिति तो ऐसी है नहीं कि लड़के के लिए रेडियो खरीद सकूँ। परन्तु ईश्वर ने एक हजार रुपया दिया है, तो लड़के की इस अभिलाषा पर क्यों तुषारपात करूँ? वह भी कभी कहेगा कि दादा ने अपनी स्थिति से बाहर खर्च कर उसकी माँगें पूरी करने में कभी कुछ उठा नहीं रक्खा था।'

लेकिन हरीश ने ऐसा कभी नहीं कहा, कभी नहीं सोचा; उलटे शर्माजी को पग-पग पर क्लेश देने का ही निन्दनीय कर्म किया। इसीलिए शर्माजी इस पुत्र की ओर से रात-दिन परेशान रहने लगे हैं।

कभी-कभी शर्माजी को लगता है, रेडियो खरीदकर उन्होंने अच्छा नहीं किया। रेडियो पर सदा फिल्मी गीत सुन-सुनकर ही शायद हरीश के संस्कार दूषित हो उठे हैं। परन्तु यह विचार अधिक देर तक टिक न पाता। उन्हें लगता कि आज घर-घर रेडियो-सैट हैं और सभी लड़के रेडियो के फिल्मी गीत सुनते हैं; किन्तु सभी लड़के हरीश की भाँति उच्छृङ्खल और माता-पिता को कष्ट देनेवाले नहीं होते। यह सब तो अपने-अपने भाग्य का खेल है—पूर्व जन्म के कृत्यों का फल।

इन्हीं विचार-धाराओं पर शर्माजी तिर रहे थे कि छोटा बच्चा शम्भु आकर उनसे झूम गया और बोला—'चलो दादा! कहानी सुनाओ। नींद आ रही है मुझे।'

और नित्य की भाँति देवदत्त शर्मा अपने छोटे बच्चे शम्भु को लेकर बिस्तर

पर जा लेटे और उसे परियों की मनोरंजक कहानियाँ सुनाने लगे।

जब शम्भु सो गया, तो देवदत्त पुनः यह सोचकर अभिभत हो उठे कि यह बच्चा तो इतना छोटा है कि जब तक बड़ा होगा और इससे किसी सुख-संतोष की अपेक्षा की जा सकेगी, तब तक शर्माजी के इस दुनिया से कूच कर जाने का समय बहुत ही निकट आ चुकेगा। सुख-संतोष की आशा आज के युग में प्रथम सन्तान से ही की जा सकती है; किन्तु हरीश ने इस आशा पर एकदम तुषारपात कर दिया है।

यही सब सोचते-विचारते शर्माजी भी सोने की चेष्टा करने लगे।

—१०—

कजला से जलपान का निमन्त्रण पाकर सुमित्रा की सारी उदासीनता दूर हो गई। आज सुबह से जिस प्रफुल्ल को लेकर वह उलझ रही थी, उसीका स्नेह-सिक्त निमन्त्रण पाकर उसकी सारी उलझन तिरोहित हो गई।

नलिनी से जिसकी उदारता की कहानी संक्षेप में वह सुन चुकी थी; जिसके आकर्षक व्यक्तित्त्व को सुमित्रा अपनी आँखों देख चुकी थी, और जिसकी प्रशंसात्मक वाणी ने उसे सहसा मुग्ध कर लिया था, उसी प्रफुल्ल द्वारा जलपान का आमंत्रण पाकर सुमित्रा का रोम-रोम पुलकित हो उठा। आत्मविभोर होकर वह बहुत देर तक जाने क्या-क्या सोचती रही।

सहसा उसे अपने दिवंगत पिता का स्मरण हो आया। कितनी आत्मीयता से उसके पिताजी कहा करते थे—'सुमित्रा, तुझे पढ़ा-लिखाकर और एक कालेज में अध्यापिका नियुक्त करा देने के बाद अब केवल एक चिन्ता और रह गई है।'

पिताजी की इस चिन्ता को सुमित्रा न समझती हो, सो बात नहीं। फिर भी भोलेपन के साथ वह पूछ बैठती—'वह क्या पिताजी?'

'अरे, तू इतनी बड़ी हो गई; लेकिन कुछ भी नहीं समझती! भारतीय परिवार की कोई भी बेटी, चाहे वह कितनी ही लाड़ली क्यों न हो, सदा माता-पिता की छाया में नहीं रह सकती।' और अत्यन्त करुण तथा धीमे स्वर से वह गुनगुना उठते थे—'बाबुल का घर छोड़के गोरी, हो गई आज परायी रे!'

पिता की यह बात सुन, सुमित्रा उनके कन्धे से झूम उठती और कहने लगती थी—'कहाँ परायी हो गई, बाबा! यह रही तुम्हारी गोरी तुम्हारे घर में—तुम्हारी छाया में, और सदा रहेगी तुम्हारे पास!'

'न बेटी!' पिताजी अचानक सजल हो उठनेवाली अपनी आँखों को पोंछते हुए कह उठते थे—'यह कैसे हो सकता है? इससे मुझे सन्तोष न होगा। दुनिया में जब तक तुझे दुनियादारी के उपकरणों और सुखों के बीच में न देख लूँगा, तब तक मेरी आत्मा को सन्तोष न मिल सकेगा।'

आत्मा! सन्तोष!!

सुमित्रा की आँखें एकदम गीली हो उठीं। सहसा उसकी दृष्टि सामने दीवार पर लटकते महात्मा गान्धी और बुद्ध के भव्य चित्रों पर जा अटकी। रूमाल से उसने अपनी गीली आँखें पोंछ लीं और अपने दिवंगत पिता को मौन-मूक श्रद्धांजलि अर्पित कर दी।

सुमित्रा को लगा कि वह बड़ी अभागिन है। अपने स्नेहशील पिता की अन्तिम इच्छा को वह उनके जीवन-काल में कभी पूरा न कर सकी। लेकिन वह करती क्या? जब कोई उचित जीवन-साथी मिलता, तभी न पिता की इस इच्छा को वह पूरा कर सकती! और, कौन जानता था कि उसके पिताजी की यह इच्छा उनके जीवन-काल में कभी पूरी न हो सकेगी—मृगजल ही बनी रहेगी।

लेकिन अपने पिता की उस अधूरी इच्छा को वह पूरा अवश्य करेगी। उसे करना ही होगा। नहीं करेगी, तो पिताजी की आत्मा को सन्तोष कैसे मिलेगा? उनकी अतृप्त आत्मा को परलोक में वह परेशान नहीं रखना चाहती। उनके जीवन-काल में यदि परिस्थितियों-वश, वह उन्हें सन्तोष नहीं दे सकी, तो अब अवश्य देगी।

सुमित्रा को याद आया, नलिनी ने एक दिन उससे ऐसा ही प्रश्न किया था—'बहिन, तुम क्या सदा कुमारी रहोगी?'

'तो क्या कुमारी रहकर जीवित रहना सम्भव नहीं, जीजी ?' सुमित्रा ने सहज-सरल मुद्रा से कह दिया था।

'सम्भव क्यों नहीं, बहिन !' नलिनी ने ध्यानपूर्वक सुमित्रा को देखते हुए उत्तर दिया था—'परन्तु संसार में आकर सांसारिकता के अनुभव से शून्य रहना, जीवन की अमूल्य निधियों से वंचित रह जाना है।'

और, सुमित्रा ने उसी दिन पहली बार अनुभव किया था कि उसके पिताजी क्यों उसे विवाहित देखना चाहते थे। तभी उसने मन-ही-मन संकल्प कर लिया था कि वह अपने पिताजी की अधूरी इच्छा को किसी स्वर्ण-संयोग के हाथ लगते ही अवश्य पूरा करने की चेष्टा करेगी।

परन्तु आज प्रफुल्ल घोष द्वारा जलपान का आमन्त्रण पाकर यह सब भावनाएँ सुमित्रा के अन्तस्तल में क्यों सहसा उमड़ने-घुमड़ने लगीं ? बहुत कुछ सोचने-समझने पर भी सुमित्रा इस प्रश्न का उत्तर न खोज सकी। केवल इतना ही उसे लगा कि यह सब तो आनेवाला समय ही बतला सकेगा। वह इस सम्बन्ध में भला, क्या कह सकती है !

और तभी सुमित्रा को ध्यान आया कि अरे, कजला तो कभी की चली गई; लेकिन वह यह कहाँ पूछ सकी कि उसकी भाभी कैसी हैं, कहाँ हैं, अथवा हैं भी या नहीं। परन्तु उसकी बौद्धिक नारी ने उसे फिर झकझोर दिया—किसी पर-पुरुष के सम्बन्ध में, उसकी पत्नी को लेकर कोई पूछताछ करना, एक कुमारी के लिए कहाँ तक उचित होगा ?

सुमित्रा अपनी कुर्सी से सहसा उठ बैठी। कमरे के बाहर वह जा खड़ी हुई और विद्यालय का निरीक्षण करने चली गई।

उस दिन इसी तरह दो बज गए। वह अपने कमरे में जाकर फिर बैठ गई। कजला की वह बात सुमित्रा को भली भाँति याद थी—'दादा भी सम्भवतः दो बजे के बाद आपको टेलीफोन द्वारा निमंत्रण देंगे।'

कुछ देर तक सुमित्रा रंगीन विचार-तरङ्गों पर तिरती रही कि सहसा

टेलीफोन की घण्टी टनटना उठी। जान-बूझकर उसने टेलीफोन का रिसीवर शीघ्रतापूर्वक हाथ में नहीं लिया। इस टनटनाहट के साथ-साथ सुमित्रा की हृदय-तन्त्री का तार-तार खिचता-सा प्रतीत हुआ। एक अविदित-सा आह्लाद उसके रोम-रोम में व्याप्त हो उठा। तभी उसे लगा कि यह टेलीफोन प्रफुल्ल का न होकर अन्य किसी का भी तो हो सकता है। और, इस भावना के उदय होते ही उसने तत्काल टेलीफोन का रिसीवर अपने दाहिने हाथ से उठा लिया और उसका एक छोर दाहिने कान के निकट तथा दूसरा छोर ओठों के निकट ले जाकर कहा—'हल्लो! आप कहाँ से बोल रहे हैं?'

'मैं यहीं—इलाहाबाद—से बोल रहा हूँ। गान्धी महिला-विद्यालय की आचार्या कुमारी सुमित्राजी से बात करना चाहता हूँ।'

सुमित्रा यद्यपि प्रफुल्ल घोष से कल रात में एक बार बातचीत कर चुकी थी; परन्तु टेलीफोन पर यह उसकी ही आवाज है अथवा नहीं, इसका कोई निश्चय न कर सकी। इसलिए उसने कहा—'मैं ही सुमित्रा हूँ। आपका शुभ नाम?'

प्रफुल्ल मन-ही-मन पुलकित हो उठा। सुमित्रा की मधुर वाणी पर मुग्ध होते हुए उसने कहा—'ओह! क्षमा कीजिए, मैंने अब तक अपना नाम नहीं बतलाया......!'

बीच में ही सुमित्रा बोल उठी—'आपने कोई अपराध नहीं किया कि क्षमा-याचना की आवश्यकता हो। फोन पर यह होता ही रहता है।'

'मैं प्रफुल्ल घोष हूँ।' टेलीफोन के दूसरे छोर से आवाज आई।

सुमित्रा को यह नाम सुनते ही रोमांच हो आया। जिसे लेकर वह कल रात से अब तक नाना प्रकार के कल्प-वयन में उलझी रही, वही टेलीफोन पर बोल रहा है। सुमित्रा ने कहा—'ओह! आप हैं! नमस्कार!'

'नमस्कार! आपसे एक निवेदन कर रहा हूँ।'

'आदेश कीजिए!' सुमित्रा ने मुसकराते हुए कहा—'आप इस विद्यालय के अनन्य सहायक हैं।' इस समय सुमित्रा यह भूल ही गई कि प्रफुल्ल अपनी बहिन कजला द्वारा पहले ही अपना निवेदन उसके पास भेज चुका है।

'क्या आज सन्ध्या समय आप हमारे यहाँ आकर जलपान करने की कृपा कर सकेंगी?' प्रफुल्ल ने अपने स्वर में सारी मधुरता और नम्रता भरकर कहा।

'आपका निमंत्रण कजला मुझे पहले ही दे चुकी है।' सुमित्रा ने कहा।

'लेकिन आपकी स्वीकृति तो अब तक...।' बीच में ही प्रफुल्ल ने कुछ कहना चाहा।

सुमित्रा ने भी बीच में ही उसे टोक दिया—'आपके स्नेह-सिक्त निमंत्रण को क्या मैं अस्वीकार करने की धृष्टता कर सकती हूँ?'

'यह आपका सौजन्य है, अन्यथा ऐसे निमंत्रण तो आपको नित्य ही मिलते होंगे।'

'जी नहीं!' सुमित्रा ने कहा—'स्नेह-सिक्त निमंत्रण बहुत कम मिलते हैं। कदाचित् यही कारण है कि मैं सभी निमंत्रण स्वीकार नहीं कर पाती।'

'तो यह मेरा सौभाग्य है कि आपने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया!' प्रफुल्ल ने एक क्षण रुककर पूछा—'आप किस समय आ सकेंगी?'

'जब आप बुलावें।'

'छः बजे ठीक होगा?'

'मुझे कोई असुविधा न होगी!'

'तो मेरी कार आपको लेने साढ़े पाँच बजे पहुँच जाएगी। साथ में कजला भी रहेगी, जिससे आप मेरी कार पहचान सकें।'

'हाँ, यह व्यवस्था करना ही ठीक होगा। कहीं कोई दूसरे सज्जन उसी

समय अपनी कार भेजकर मुझे बहका न ले जाएँ।' सुमित्रा ने कहा।

टेलीफोन के दूसरे छोर पर हँसी का फव्वारा छूटता सुनाई पड़ा। हँसी रोककर प्रफुल्ल ने कहा—'यह आपने खूब कहा! अजी, आप जैसी आचार्या को कौन बहका सकता है!'

'अच्छा, मैं तैयार रहूँगी।'

'अनेक धन्यवाद!' और प्रफुल्ल ने रिसीवर रख दिया।

सुमित्रा ने भी अपने फोन का रिसीवर यथास्थान रख दिया। एक अभूत-पूर्व प्रसन्नता से भरकर सुमित्रा का मन-मयूर नाच उठा। सामने रखे हुए रेडियो का स्विच उसने दबा दिया। किसी मधुर कण्ठ का स्वर सुमित्रा के कमरे के सूने आलम में गूँज उठा—'पिया-मिलन को जाना!'

—११—

छोटा बच्चा शम्भु जब कहानी सुनते-सुनते सो गया, तब देवदत्त स्वयं सोने की चेष्टा करने लगे; किन्तु उनकी झपकी शीघ्र ही टूट गई। इसका एक कारण था। बड़ा बच्चा हरीश अपनी छोटी बहिन लज्जावती को पढ़ा रहा था। गणित का कोई प्रश्न था, जिसे लज्जा हल करना चाहती थी; परन्तु उसकी बाल-बुद्धि उसका साथ नहीं दे रही थी। उधर पढ़ानेवाला खीझ-खीझ उठता था। उसकी यह खीझ लज्जा पर रह-रहकर चाँटे बरसा रही थी। लगातार जब कई चाँटे हरीश ने उसे रसीद कर दिए, दो वह चीख उठी। उसकी इसी चीख से देवदत्त की झपकी टूट गई।

झपकी टूट जाने पर भी पहले तो देवदत्त कुछ क्षणों तक चुपचाप पलंग पर लेटे रहे; किन्तु हरीश के चाँटे रसीद करने की गति जब उत्तरोत्तर बढ़ने लगी, तो उनकी आत्मा चीख उठी और पलंग से उछलकर वह हरीश के पास जा पहुँचे। क्रोध से तमतमाते हुए शर्माजी बोले—'हरीश, मैं देख रहा हूँ, आज तुम्हारा हाथ लज्जा पर अनियंत्रित होकर छूट रहा है। अभी-अभी तुम उसे कई चाँटे रसीद कर चुके हो। क्या इसी तरह पढ़ाया जाता है छोटे बच्चों को?'

'हाँ, इसी तरह पढ़ाया जाता है।' हरीश ने तनकर कहा—'जब कोई बात उसकी समझ में ही नहीं आती, तो.....।'

'तो मारने के सिवा और क्या किया जा सकता है!' देवदत्त बीच में ही चीख उठे—'यही न?'

'हाँ !' हरीश ने किसी महामहोपाध्याय की मुद्रा बनाकर तीखा उत्तर दिया।

देवदत्त की क्रोधाग्नि में यह लड़का इसी तरह आहुति छोड़ने का अभ्यस्त हो रहा है। पिता को क्रोधित देखकर तनिक भी शान्त होना यह जानता ही नहीं। देवदत्त ने क्षुब्ध होकर कहा—'यदि इसी तरह मैंने तुम्हें पढ़ाया होता, तो शायद ऐसा उत्तर तुम कभी न दे सकते।'

'मैं ऐसा मूर्ख नहीं था, जैसी यह लज्जा है। मैं कभी ऐसी भूल नहीं करता था।' हरीश ने इस ढंग से कह दिया, मानो वह त्रिकालदर्शी हो और अपने बचपन की सारी बातें उसे ज्ञात हों।

'चुप रह, शैतान! मुँहफट कहीं का!' देवदत्त ने गरजते हुए कहा।

लज्जा जोरों से सिसक रही थी। उसके सिर पर अपना स्नेहसिक्त हाथ फेरते हुए देवदत्त ने कहा—'मत पढ़ो इस शैतान से। चलो, हम पढ़ाए देते हैं, बेटी!'

गणित का जो प्रश्न लज्जा हल कर रही थी, उससे मिलता-जुलता एक छोटा और सरल, किन्तु सर्वथा भिन्न राशि का मौखिक उदाहरण देकर देवदत्त ने जब संकेत दिया, तो लज्जा की समझ में वह जटिल प्रश्न सहज ही आ गया और उसने तत्काल उसे हल कर दिया।

यह देख हरीश से चुप न रहा गया, बोल उठा—'इस तरह प्रश्न हल करा देने से वह कभी कुछ न समझ सकेगी—मूर्ख ही बनी रहेगी।'

'तो यह कहो कि अब तुम शिक्षा-पद्धति के भी पण्डित हो गए हो?'

'शिक्षा-पद्धति के किसी पण्डित से जाकर पूछ लो कि मेरी बात गलत है या सही!' हरीश ने अपने पिता की क्रोधाग्नि में और घी छोड़ दिया।

'चुप रहो, हरीश! तुम बी० ए० में क्या पढ़ने लगे हो, अपने-आपको बृहस्पति समझने लगे हो। तुम्हें आखिर यह भी तो मालूम नहीं कि पिता की कोई मर्यादा होती है और उससे बात करने का भी एक ढंग होता है।

मुझे स्वप्न में भी तुमसे इस अशिष्टता की दुराशा नहीं थी। लेकिन मैं देख रहा हूँ, तुम्हारी यह अशिष्टता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।'

'यह सब असीम लाड़-दुलार का दुष्परिणाम है।' देवदत्त की क्रोधपूर्ण झल्लाहट सुनकर उनकी पत्नी मीरा ने इस उत्तेजित घटना-स्थल पर आकर कहा—'छोटे से ही उसे मुँह लगा रक्खा है, अब मर्यादा और शिष्टता का पाठ पढ़ाने चले हैं!'

'हरीश को विगाड़ने में तुम्हारी ऐसी बातों ने भी बड़ा योग दिया है। लाख बार कहा कि ऐसे मौकों पर बीच में मत बोला करो। हटो यहाँ से।' देवदत्त ने चीखते हुए कह दिया और खुली छत पर जाकर टहलने लगे।

युग-युग से सँजोई गई आशाओं के विपरीत यदि मधुर आम फलने के समय किसी वृक्ष में बबूल के तीखे काँटे फूट निकलें, तो उस वृक्ष को रोपनेवाले की सारी अभिलाषाओं का महल सहसा ध्वस्त हो जाता है। तब उसे अतीत का एक-एक क्षण न केवल साकार-सा नाचता दिखलाई पड़ता है, प्रत्युत सवाक् चित्रपट की भाँति तरह-तरह की ध्वनियाँ भी उसके आसपास गूँजती-सी प्रतीत होती हैं और उसे अर्द्धविक्षिप्त-सा कर जाती हैं।

आज की इस घटना ने देवदत्त की मनोदशा में ऐसा ही ज्वार उत्पन्न कर दिया है। दिन-भर के अविराम परिश्रम से देवदत्त इतने श्रान्त-क्लान्त हो जाते हैं कि कार्यालय से लौटकर भोजन करके वह एकदम लेट रहते हैं।

देवदत्त चालीस को पार कर चुके हैं। यों चालीस वर्ष की अवस्था ऐसी नहीं, जिसे बुढ़ापे की संज्ञा दी जा सके। परन्तु दूसरे महायुद्ध के बाद हमारे देश में मध्यम श्रेणी के बुद्धिजीवियों का जीवन, जिन विकट संघर्षों का केन्द्र बनकर रह गया है, उनमें पिसकर आज का पुरुष असमय ही बुढ़ापे का शिकार होने लगा है। दिन-रात परिश्रम किए जाओ, फिर भी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति नहीं। इस दशा में शरीर की कोई क्या चिन्ता कर सकता है? फिर भारतीय परिवारों का यह अभिशाप है कि प्रमुख सदस्य पर ही अर्थोपार्जन का सारा दायित्त्व रहता है। एक सदस्य कमावे और बाकी

सबके सब उस पर आश्रित रहें। तब अर्थोपार्जन करनेवाले का यही कर्त्तव्य रह जाता है कि वह अपने शरीर से अधिक अपने आश्रितों की चिन्ता करे और इसी चिन्ता–चिता पर तिल-तिलकर जलते हुए अपना जीवन भस्म करता रहे।

देवदत्त यही सब कर रहे हैं। इसीलिए चालीस को पार करते-करते वह बुढ़ापे का अनुभव करने लगे हैं। उनके सिर के प्रायः सभी बाल सफेद हो चुके हैं। दाँत भी बहुत से गिर चुके हैं या उखड़वा देने पड़े हैं। उनका शरीर भी अब पहले की भाँति परिश्रम नहीं कर पाता। इसीलिए संध्या में भोजन करके वह चुपचाप लेट रहते हैं और चाहते हैं कि उन्हें कोई दिक न करे; उनकी भावनाओं पर कोई किसी प्रकार का प्रहार न करे। परन्तु उनके चाहने से क्या होता है? परिवारवाले जब उनकी इच्छा-अनिच्छा का ध्यान रख सकें, तब न उन्हें कोई शान्ति मिले।

खुली छत पर टहलते-टहलते देवदत्त ने आकाश की ओर देखा, तो पाया कि सावन के महीने में भी निरभ्र आकाश हँस रहा है; तारे जगमगा रहे हैं। उन्हें लगा कि आजकल ऋतुओं में भी कैसा परिवर्त्तन होने लगा है। सावन-भादों में जब ऐसी घनघोर घटाएँ होनी चाहिए कि हाथ को हाथ न सूझ सके, तब तारे जगमगा रहे हैं! जब वर्षा के पानी से आजकल सर-सरिताओं में कूल-किनारों का अतिक्रमण करनेवाली बाढ़ होनी चाहिए, तब पिछले पन्द्रह-बीस दिनों से पानी की एक बूँद के लिए भी यह धरती तरस रही है!

देवदत्त के अन्तर्मन ने स्वीकार किया कि जब प्रकृति के विधान में इतना परिवर्त्तन होने लगा, तब मानव-प्रकृति के परिवर्त्तन को आश्चर्य-जनक नहीं कहा जा सकता।

अपने अन्तर के अवसाद से अभिभूत होकर देवदत्त फिर पलंग पर जा लेटे। रह-रहकर उन्हें हरीश की बढ़ती हुई अशिष्टता कुरेदने लगी। कितनी आशाओं का केन्द्र मानकर उन्होंने इस हरीश को पाला-पोसा और अब तक अपना

पेट काटकर उसे उच्च शिक्षा दे रहे हैं। परन्तु यह कैसी विडम्बना है कि जब इस पुत्र से शिष्टता और मर्यादा की झलक देखने और सन्तोष प्राप्त करने का समय आया, तब उसकी अशिष्टता उत्तरोत्तर बढ़ रही है ! इससे देवदत्त को जो मर्मान्तिक पीड़ा होती है, उसका शतांश भी कदाचित् यह हरीश नहीं समझ सकता।

कितनी ही बार देवदत्त ने हरीश को समझाया-बुझाया कि बात करने का तुम अपना ढंग ऐसा बदलो कि सुननेवालों को उसमें अशिष्टता और कड़वाहट का बोध न हो। परन्तु हरीश है कि दूसरों की बात तो दूर, अपने पिता से भी मधुरता के आवरण में बात नहीं कर सकता।

देवदत्त जानते हैं कि मानव-प्रकृति का बदलना सहज-सम्भव नहीं। परन्तु शिक्षा का उद्देश्य तो यही होता है कि बच्चे को उसकी अनियंत्रित अराजकता से बाहर खींचकर उसे सभ्य समाज का एक संयत व्यक्ति बनाया जाए। लेकिन कितने बच्चे पढ़-लिखकर इस उद्देश्य के पूरक हो पाते हैं? तब तो वही बात रही कि सभ्यता का दावा करनेवाले आधुनिक मनुष्य को तनिक कुरेदकर देखो, तो उसका बर्बर रूप ही साफ-साफ दिखाई देता है।

देवदत्त का दिमाग भन्ना उठा। तब यह उच्च शिक्षा किस काम की? यदि उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर भी मानव की बर्बरता मिट नहीं सकती; उसके आचरण और व्यवहार में शिष्टता तथा उसकी वाणी में मधुरता नहीं आ सकती, तो फिर किस प्रकार उसे बनाया-सुधारा जाए?

एक क्षण को शर्माजी को लगा कि प्राचीन काल के गुरुकुल इस दृष्टि से लाख दर्जे अच्छे थे। गुरुकुल के स्नातकों में यह बर्बरता, अशिष्टता और उद्दण्डता नहीं पाई जाती थी। उनका मन आजकल के विश्वविद्यालयों के प्रति घोर घृणा से भर उठा। उन्हें लगा कि आजकल के विश्वविद्यालय शिक्षा और संस्कृति का प्रचार करन के लिए नहीं, प्रत्युत फैशनपरस्ती और उच्छृङ्खलता सिखलाने के केन्द्र बन रहे हैं। विश्वविद्यालय के अधिकांश छात्रों

में पोशाकों की तड़क-भड़क जितनी दर्शनीय रहती है, और सिनमा तथा रेडियो के गीत सुनने तथा उन्हें गुनगुनाने की जितनी रुचि पाई जाती है, उतनी ही अपने माँ-बाप और देश-समाज के प्रति कर्त्तव्य-भावना की उपेक्षा देखी जाती है।

परन्तु देवदत्त शर्मा के मन ने पलटा खाया। उन्हें लगा कि कुछ छात्रों में यदि ये त्रुटियाँ पाई जाती हैं, तो यह क्यों समझ लिया जाए कि विश्वविद्यालय फैशनपरस्ती और उच्छृङ्खलता सिखलाने के केन्द्र बन रहे हैं? जिन छात्रों में ये त्रुटियाँ पाई जाती हैं, उनकी परिस्थितियाँ और उनका वातावरण ही क्यों न इसके लिए उत्तरदायी समझा जाए? और तभी देवदत्त को स्मरण आया कि अभी-अभी उनकी पत्नी ने भी ऐसी ही कोई बात कही थी। क्या बात कही थी मीरा ने ? मस्तिष्क पर तनिक-सा जोर देते ही उन्हें स्मरण आ गया। मीरा ने कहा था—'यह सब असीम लाड़ का फल है।'

एक प्रश्नचिह्न और उसकी वक्रता देवदत्त के सामने साकार सी होकर नाच उठी। असीम लाड़? उन्होंने स्वीकार किया कि निश्चय ही किसी सीमा तक उनके लाड़-दुलार का दुष्परिणाम ही इसे कहा जा सकता है। हरीश उनका ज्येष्ठ पुत्र है—प्रथम सन्तान। अपने दाम्पत्य जीवन की तरुणाई के इस प्रतिबिम्ब को उन्होंने निश्चय ही लाड़-दुलार के साथ पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया है। उसकी साधारण-असाधारण किसी भी माँग को देवदत्त ने अपनी स्थिति की चिन्ता न कर किसी भी मूल्य पर पूरा करने में कभी कुछ उठा नहीं रक्खा। परन्तु यह सब क्या उन्होंने इसीलिए किया था कि पुत्र जब पढ़-लिखकर बड़ा होगा, सभ्य होगा और देवदत्त की बराबरी का होगा, तब पिता के साथ वह किसी भी शिष्टता और व्यावहारिकता का ध्यान न रखेगा? तो क्या पुत्र का जन्मोत्सव मना लेना ही पिता के समस्त अपेक्षित सुखों और आशाओं का आदि-अन्त होता है? नहीं! देवदत्त का अन्तर्मन यह सब स्वीकार नहीं कर सकता।

पुत्र के जन्म पर प्रसन्नता मनाने का अर्थ यही होता है कि बड़ा होकर, पढ़-लिखकर पुत्र अपने माता-पिता के प्रति समस्त कर्त्तव्यों का ध्यान रखते हुए उन्हें आत्मीय सन्तोष प्रदान करेगा; बुढ़ापे की लाठी बनकर माता-पिता को सहारा देगा और यशस्वी बनकर अपने पिता के नाम को गौरवास्पद बनाएगा। यदि ये सब बातें किसी पुत्र से पिता को प्राप्त नहीं होतीं, तो न पुत्र का जन्म सार्थक है, न पिता का जीवन।

माना कि देवदत्त ने हरीश को असीम लाड़-दुलार से पाला-पोसा है। परन्तु उन्होंने यह आशा भी बाँध रक्खी थी कि बड़ा होने पर पुत्र में कम-से कम इतनी समझ तो आ ही जाएगी कि पिता के साथ उसे किस प्रकार बात करनी चाहिए। लेकिन देवदत्त ने अपनी इस आशा के सर्वथा विपरीत दिशा में जब हरीश को जाते देखा, तब अनेक बार उन्होंने इसी बात को लेकर न केवल लम्बा-चौड़ा लैक्चर दे डाला, बल्कि प्यार से और कभी-कभी क्रोध से झल्लाकर भी उसे उचित मार्ग दिखलाने का प्रयत्न किया। परन्तु हरीश पर किसी बात का प्रभाव नहीं पड़ा।

देवदत्त यह देख हैरान हैं कि अपने भाई-बहिन के प्रति भी इस हरीश में कोई आत्मीयता नहीं है; बल्कि एक ईर्ष्या की दुर्भावना ही जब-तब उसने प्रकट की है। एक बार हरीश ने अपने छोटे भाई शम्भु का उल्लेख करते हुए देवदत्त से स्पष्ट शब्दों में कहा था—'मैं और शंभु दोनों तुम्हारी दृष्टि में समान होने चाहिएँ। परन्तु देखता हूँ, तुम मेरी तनिक-सी गलती पर भी बेहद बिगड़ जाते हो।'

देवदत्त ने अपना दृष्टिकोण समझाते हुए हरीश से कह दिया था—'शम्भु छोटा है—नासमझ है। तुम बी० ए० के छात्र हो। तुम्हारे और शम्भु के प्रति मेरा एक-सा रुख हरगिज नहीं रह सकता। शम्भु अपने अज्ञान के कारण मेरी दृष्टि में क्षम्य है; परन्तु तुम्हारी गलती को मैं गलती नहीं, उच्छृङ्खलता और उद्दण्डता समझता हूँ; क्योंकि तुम्हें अपनी बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए। लेकिन तुम बेवक़ूफी करते हो, पिता की मर्यादा का ध्यान नहीं

रखते और मेरे लाख बार समझाने पर भी अपनी वाणी में मधुरता नहीं ला सकते। ऐसी दशा में यह आशा करना व्यर्थ है कि शम्भु और तुम दोनों मेरी दृष्टि में समान रहोगे। तुम छोटे थे, तब तुम्हें भी मैंने असीम लाड़-दुलार से रखा। परन्तु उसका प्रतिदान यह नहीं है कि मेरी प्रत्येक बात का तिक्त उत्तर तुम दिए जाओ, और कभी मैं रोग-शय्या पर पड़ा रहूँ, तो तुम मेरे सिरहाने बैठकर मुझसे दो बातें करने की भी आवश्यकता न समझो।'

इस उत्तर को सुनकर भी हरीश के मुख से ऐसा एक भी शब्द नहीं निकला, जिसे सुनकर देवदत्त के अन्तर की विकलता, उनके प्राणों का हाहाकार और उनकी आत्मीयता की अकुलाहट को किंचित् सन्तोष का अनुभव हो सकता।

देवदत्त की आकुलता और बढ़ने लगी। उन्होंने स्वीकार किया, आजकल के लड़के अपने माँ-बाप को पग-पग पर पीड़ित करने की मानो शपथ ले चुके हैं। लाड़-दुलार, पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा आदि का कर्त्तव्य पिता पूरा कर दे, बस इसके बाद पुत्र का कोई कर्त्तव्य नहीं रह जाता। पता नहीं, आजकल के लड़कों को क्या होता जा रहा है कि बुजुर्गों को कुछ समझते ही नहीं। ये लड़के अपने माता-पिता और बुजुर्गों के प्रति जितने अविश्वसनीय और अव्यावहारिक हो उठे हैं, उतने पहले कभी नहीं थे।

एक दिन की बात है। देवदत्त अपने दो दाँत उखड़वाकर पीड़ा से कराहते हुए जब डेण्टिस्ट के यहाँ से लौटकर घर आये, तो हरीश से कहा—'भैय्या, तनिक बाजार जाकर नींद लानेवाली दो गोलियाँ ला दो, जिससे मैं चुप-चुप सो सकूँ।'

'लाए देता हूँ।' कहकर हरीश ऊपरी कमरे में गया और रेडियो खोलकर फिल्मी गीत सुनने लगा।

देवदत्त का क्रोध और परिताप सीमा को पार कर गया। उन्हें लगा कि इस दुष्ट पुत्र को पिता की कराहना और पीड़ा की

भी कोई चिन्ता नहीं। पुत्र स्वयं चिन्ता नहीं करता, यही देवदत्त का दुर्भाग्य है; किन्तु कहने पर भी उपेक्षा दिखलाता है, यह तो घोर दुर्भाग्य है ! देवदत्त उसी तरह कराहते हुए उठे और साइकिल पर स्वयं बाजार जाकर गोलियाँ ले आए। हरीश ने फिल्मी गीतों के सामने पिता की पीड़ा और कराहना की कोई परवाह नहीं की।

इस घटना का स्मरण आते ही देवदत्त की आत्मा चीख उठी। उन्होंने अपना बिगड़ता बुढ़ापा प्रत्यक्ष देखा और दुर्भाग्य के थपेड़ों की पीड़ा से सिसकते हुए पता नहीं, कब सो गए।

—१२—

पूर्व निर्धारित समय पर प्रफुल्ल घोष की कार, गान्धी महिला-विद्यालय की आचार्या कुमारी सुमित्रा को लेने आ पहुँची। कार में ड्राईवर के साथ प्रफुल्ल की बहिन कजला भी थी।

कजला को देखते ही सुमित्रा मन-ही-मन प्रसन्नता से भर उठी। तो प्रफुल्ल-जी अपने दिए गए वचन की रक्षा करना अच्छी तरह जानते हैं। यही होना चाहिए। मानव की महत्ता और सज्जनता का यह सबसे बड़ा लक्षण है।

सुमित्रा पहले से ही तैय्यार हो चुकी थी। कजला के पहुँचते ही वह शीघ्र चल पड़ी। सुमित्रा ज्योंही कार पर बैठी, ड्राईवर ने कार दौड़ा दी। हवा से बातें करती—सनसनाती हुई कार कुछ ही मिनटों में प्रफुल्ल की हवेली में जा पहुंची।

अहाते में प्रवेश करते ही कार पर बैठे-बैठे ही सुमित्रा ने देखा, वह हवेली आधुनिक ढङ्ग की और दर्शनीय है। सामने के भाग में एक सुन्दर उपवन रंग-बिरंगे, देशी-विलायती पुष्पित पौधों को अपने अङ्क में समेटे मुसकरा रहा है। हवेली का ऊपरी भाग काफी ऊँचा है, जिस पर लगे हुए लम्बे बाँस यह सूचित कर रहे हैं कि हवेली में रहनेवाले रेडियो के शौकीन हैं।

कार के रुकते ही प्रतीक्षारत प्रफुल्ल ने स्वयं हवेली के बरामदे से बाहर आकर सुमित्रा का स्वागत करते हुए कहा—'आइए, सुमित्राजी!'

दोनों हाथ जोड़ सुमित्रा, प्रफुल्ल के अभिवादन का मौन उत्तर देते हुए मुस-करा उठी और कार से उतरकर प्रफुल्ल के साथ चल पड़ी। कजला की छोटी बहिन रेणुका भी इसी बीच भीतर से सहसा आ गई और अपनी आचार्या सुमित्रा-

जी को उसने भी प्रसन्न मुद्रा से दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन किया।

'जीती रहो, बेटी!' सुमित्रा ने कहा और उसके सिर पर अपना हाथ धरते हुए पूछा—'अब तक कहाँ थी, रेणुका?'

'जी, मैं आपके जलपान की तैयारी देख रही थी भीतर।' रेणुका ने मन्द स्मित के साथ कह दिया।

कजला ने तभी रेणुका को एक चिकोटी लेकर मानो ऐसा कहने से रोक देने की चेष्टा की। रेणुका चौंक उठी और कजला की ओर घूमकर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगी। कजला ने आँखों-ही-आँखों में उसे कोई संकेत दिया, जिसे शायद वह भली भाँति समझ भी न सकी।

रेणुका को इस प्रकार चौंकते देख, सुमित्रा ने कहा—'क्या बात है, रेणुका?'

'जी, कुछ नहीं।' कहकर रेणुका चुप रह गई। वह कैसे कहती कि कजला ने उसे चिकोटी भरकर चौंका दिया है।

सुमित्रा कुछ न समझ सकी। वह चुपचाप प्रफुल्ल का अनुकरण करती हुई अब तक एक बड़े-से कमरे में पहुंच चुकी थी। कमरा काफी लम्बा-चौड़ा और आधुनिक रुचि का प्रतिबिम्ब था। कमरे के बीचोंबीच संगमर्मर की चमचमाती एक नेत्ररंजक मेज पड़ी थी। उस मेज के चारों ओर एक-एक कुर्सी मानो किसी आगन्तुक को आसीन करने की प्रतीक्षा में ललक रही थी। इस मेज के निकट पहुँचते ही प्रफुल्ल ने कहा—'बैठिए, सुमित्राजी!' फिर एक क्षण रुककर कहा—'मैं अभी आ रहा हूँ। तब तक आप मेरी इन बहिनों से बात कीजिए।' और मुस-कराता हुआ प्रफुल्ल उस कमरे से बाहर चला गया।

सुमित्रा उस संगमर्मर की मेज के सामने पड़ी एक कुर्सी पर बैठकर उस कमरे को एक सरसरी दृष्टि से देखने लगी। कमरे की दीवारें हलके आसमानी रङ्ग से रँगी हुई थीं। बीच-बीच में काफी अन्तर पर कुछ तैल-चित्र इन दीवारों की शोभा में चार चाँद लगा रहे थे। चित्र काफी बड़े आकार-प्रकार के थे। भारत को स्वतंत्रता दिलानेवाले दिवंगत राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी, भारत का मस्तक संसार के साहित्यिकों में गर्वोन्नत करनेवाले दिवंगत कवीन्द्र रवीन्द्र, मानव-मात्र

को कर्मयोग का अक्षय सन्देश देनेवाले गीता-गायक भगवान् कृष्ण और महात्मा बुद्ध तथा ईसा के चित्र प्रफुल्ल की व्यक्तिगत सुरुचि का प्रदर्शन कर रह थे। इन चित्रों के अतिरिक्त कुछ प्राकृतिक दृश्यों के भव्य चित्र भी लटक रहे थे। चित्रों को देख, सुमित्रा को लगा कि प्राकृतिक सौन्दर्य की पूजा करनेवाले प्रफुल्ल-जी भारतीय विभूतियों के ही नहीं, बल्कि मानव का कल्याण करनेवाली विश्व-विभूतियों के भी भक्त हैं।

दीवारों पर लटकते चित्रों से हटकर अब सुमित्रा की दृष्टि कमरे के फर्श पर रखी वस्तुओं पर भी दौड़ने लगी। प्रत्येक द्वार पर तरह-तरह की धातुओं के नेत्ररंजक दो-दो पात्र सुन्दर तिपाइयों पर रक्खे हुए थे। कहीं-कहीं लकड़ी के बड़े-बड़े गमलों में पुष्पित पौधे भी मुसकरा रहे थे और अपनी भीनी-भीनी सुगन्ध से उस कमरे के वातावरण में एक मस्ती घोल रहे थे।

उत्तर की ओर जो दीवार थी, उसके बीचोंबीच नीचे फर्श पर अत्यन्त सुन्दर शीशम की एक मेज रखी थी, जिस पर श्वेत खादी का दूध-सा मेजपोश फैला हुआ था। इस मेज पर किसी तरुणी का अत्यन्त नयनाभिराम चित्र देखकर सुमित्रा क्षण भर के लिए ठगी-सी रह गई। यह चित्र किस तरुणी का है? मन-ही-मन उसने अनुमान किया कि यह चित्र प्रफुल्ल की पत्नी का होगा। चित्र जिस सुरुचि और श्रद्धा के साथ सजाकर रखा गया है, वह अन्य किसी नारी को इस घर में दुर्लभ ही समझना चाहिए। सुमित्रा की जिज्ञासा बाँध तोड़ने लगी। एक बार उसने कमरे में चारों तरफ दृष्टि फेंककर देख लिया कि कहीं प्रफुल्लजी तो वहाँ नहीं हैं। फिर उसने आश्वस्त होकर कजला से प्रश्न किया—'कजला, वह चित्र किसका है?'

'कौन चित्र, आचार्याजी?' कजला ने यह निश्चित कर लेना चाहा कि कमरे में टँगे अनेकानेक चित्रों में से आखिर उसकी आचार्या किस चित्र का परिचय पूछ रही हैं।

सुमित्रा ने हाथ के संकेत से वह चित्र दिखलाते हुए कहा—'वह चित्र कजला, जो शीशम की मेज पर सहेजकर रक्खा गया है; जिसके दोनों ओर फूलों

के दो गुलदस्ते मुसकरा रहे हैं।' सुमित्रा की दृष्टि अब तक उसी चित्र पर केन्द्रित थी।

'ओह!' कजला ने कुछ गम्भीर होते हुए कहा—'वह चित्र मेरी भाभी का है, आचार्यजी।'

'तुम्हारी भाभी का!' मन-ही-मन सुमित्रा ने जो अनुमान कर रक्खा था, उसकी सत्यता पर जाने क्यों सहसा चौंकते हुए कहा—'चलो, तनिक निकट से देख लूँ उन्हें।'

'अवश्य देखिए, सुमित्राजी!' सहसा प्रफुल्ल ने उस कमरे में आकर कहा और स्वयं उस चित्र की ओर चल पड़ा।

सुमित्रा मन-ही-मन अप्रकट संकोच और लज्जा से भर उठी। क्या सोचते होंगे प्रफुल्लजी? कहते होंगे, दूसरे की पत्नी को देखने की आखिर इतनी उत्सुकता क्यों? लेकिन दूसरे ही क्षण सुमित्रा ने स्वीकार किया कि प्रफुल्लजी इतना अवश्य समझते होंगे कि नारी की यह उत्कण्ठा स्वाभाविक होती है। राजमार्ग पर जाती हुई किसी बारात का दृश्य अथवा नववधू की एक झांकी देख लेने के लिए नारियाँ अपने हाथ का काम छोड़कर द्वार से बाहर निकल पड़ती हैं। फिर मैं तो इतने निकट आ चुकी हूँ। भला, मैं कैसे अपनी उत्सुकता दबा सकती हूँ!

दो-चार पग ही सुमित्रा ने उस चित्र की ओर बढ़ाए होंगे कि वह सहसा ठिठककर खड़ी हो गई। किसी अप्रत्याशित-सी दुर्घटना से मानो वह आहत हो उठी हो। तो उसने प्रफुल्ल को लेकर अब तक जो हवाई महल तैयार किए थे, जिन सुनहरी किरणों की झाँकी देखने की आशा बाँध रक्खी थी, वह सब मृगजल था क्या?

मृगजल? हाँ, मृगजल नहीं तो क्या है? सुमित्रा को लगा कि वह सचमुच अभागिन है! उसके पिता की अन्तिम इच्छा शायद ही कभी पूरी हो। इस प्रफुल्ल को लेकर अब तक उसने जो ताना-बाना बुना है, वह सब उसे टूटता-सा प्रतीत होन लगा। जब प्रफुल्लजी की पत्नी इस दुनिया में है, तब यह कैसे हो सकता

है कि किसी अन्य नारी को इस गृह में.....? और संभव भी हो, तो स्वयं सुमित्रा इसे कदापि पसन्द न करेगी।

तभी सुमित्रा की चिन्ता-धारा में सहसा एक अवरोध उत्पन्न हो गया। उसने देखा कि प्रफुल्लजी अपनी पत्नी के चित्र के सामने पहुँचकर न केवल अत्यन्त गम्भीर हो उठे हैं, प्रत्युत उनकी आँखें भी सहसा गीली हो उठी हैं। मौन-मूक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रफुल्ल ने ओठों-ही-ओठों में कुछ कहा भी; परन्तु सुमित्रा कुछ सुन-समझ न सकी।

सुमित्रा अपनी विचार-धारा से छिटककर मानो बहुत दूर जा पड़ी। उसने सहानुभूति के स्वर में कहा—'आप इतने गम्भीर क्यों हो उठे, घोष साहब?'

'भाभी का स्मरण आ जाने पर दादा ऐसे ही गम्भीर हो उठते हैं, आचार्या-जी!' यह कजला का स्वर था।

'मेरी भाभी बड़ी अच्छी थीं, आचार्याजी!' यह रेणुका की अभि-व्यक्ति थी।

'ओह!' सुमित्रा ने कुछ भरे गले से कहा—'तो इस घर की शोभा अब इस दुनिया में नहीं रही?'

'नहीं, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—'शैल हम सबको छोड़ किसी दूसरी दुनिया में चली गई। ईश्वरेच्छा!'

'वास्तव में ईश्वरेच्छा के आगे मानव का कोई वश नहीं चलता।' सुमित्रा ने कहा—'यही समझकर अन्त में हमें सन्तोष करना पड़ता है—हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि-हाथ।' और सुमित्रा के मन में जहाँ प्रफुल्ल की पत्नी का निधन-समाचार सुन, प्रफुल्ल के प्रति सहानुभूति का स्रोत उमड़ पड़ा, वहीं उसके मन की वह शंका-चिन्ता भी तिरोहित हो गई, जो अभी-अभी कुछ क्षण पहले उसके मानस में उद्वेलित हो उठी थी: 'प्रफुल्ल की पत्नी जब इस दुनिया में है, तब....?' तो क्या उसने जो ताना-बाना बुन रक्खा है,

वह मृगजल नहीं है ? जिन सुनहरी किरणों को देखने की उसने आशा बाँध रक्खी है, वह कौशल के साथ पग बढ़ाने पर सत्य भी हो सकती है ?

'हाँ, सुमित्राजी !' प्रफुल्ल ने कहा—'ईश्वर का अस्तित्त्व ऐसे ही स्थलों पर आकर मानव को स्वीकार करना पड़ता है। आज के वैज्ञानिक युग में मानव ने जाने किन-किन रहस्यों का पता लगा लिया है। समुद्र की अगम तली से लेकर न केवल हिमालय की चोटी तक वह पहुँच चुका है; बल्कि चन्द्र, मंगल आदि ग्रहों में भी पहुँचने के प्रयत्न में वह सफलता का छोर छू रहा है; परन्तु मृत्यु पर विजय प्राप्त करन में उसे तनिक भी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।' फिर एक क्षण रुककर उसने यह प्रसङ्ग बदलते हुए कहा—'अच्छा, चलिए; चाय पिएँ हम लोग।'और घूमकर संगमर्मर की मेज की तरफ वह चल पड़ा।

सुमित्रा भी कजला और रेणुका के साथ कमरे के बीचोंबीच पड़ी उस संगमर्मर की मेज की ओर चल पड़ी, जिस पर इस बीच प्रफुल्ल के नौकरों ने बंगाली मिठा-इयों और नमकीन खाद्य सामग्री की तश्तरियाँ सजाकर रख छोड़ी थीं। फलों और चाय की भी व्यवस्था थी।

मेज के निकट पहुँचकर सुमित्रा ने कहा—'ओह! आपने तो मुझे चाय पिलाने के बहाने पूरा भोजन कराने की व्यवस्था कर रक्खी है !'

संकेत से सुमित्रा को कुर्सी पर बैठने की व्यावहारिकता दिखलाते और स्वयं मेज की दूसरी ओर की कुर्सी पर बैठते हुए प्रफुल्ल ने कहा—'भोजन तो इसे आप किसी भी दशा में नहीं कह सकतीं, सुमित्राजी ! है तो यह चाय-पान ही।'

'तो किसी दूसरे दिन हमारी आचार्याजी को भोजन का भी निमन्त्रण दे दिया जाए, दादा ?' कजला ने प्रश्नसूचक दृष्टि से प्रफुल्ल की ओर देखते हुए कहा।

'तुम्हारी आचार्याजी स्वीकार करें तब न ?' प्रफुल्ल ने सुमित्रा की ओर मुसकराते हुए देखकर कहा।

'जिसे आप चाय-पान अथवा जलपान कह रहे हैं,' सुमित्रा ने भी मुसक-राहट के साथ कहा—'उसे ही मैं भोजन समझ रही हूँ।'

'इसका अर्थ यही हुआ कि आप कजला का अनुरोध अस्वीकार कर रही हैं।' प्रफुल्ल ने कहा—'अच्छा, चाय-नाश्ता शुरू कीजिए, सुमित्राजी! यह बात-चीत तो चलती ही रहेगी।'

सुमित्रा ने चाय-पान प्रारम्भ करते हुए कहा—'आप लोगों का निमंत्रण जिस आत्मीयता से भरा हुआ मुझे मिला और मिल रहा है, उसे अस्वीकार करने की धृष्टता मैं स्वप्न में भी नहीं कर सकती। परन्तु इस प्रकार घने-घने आमंत्रण-निमंत्रण......।'

'दुनिया की नजरों में उचित प्रतीत नहीं होते!' प्रफुल्ल ने सुमित्रा को बीच में ही टोकते हुए कह दिया।

सिर हिलाकर सुमित्रा ने मानो कह दिया कि हाँ, यही बात है।

'परन्तु दुनिया की नजरों और आलोचनाओं का हमें वहीं तक ध्यान रखना चाहिए, सुमित्राजी, जहाँ तक हमारा अहित होने की सम्भावना न हो।' प्रफुल्ल का दार्शनिक मुखर हो उठा—'मैं इस बात का कायल नहीं कि दुनिया की नजरों का खयाल रखकर हम स्वयं अपना अहित कर बैठें। हो सकता है, आप यह तर्क करने लगें कि हम लोगों का आमंत्रण-निमंत्रण अस्वीकार कर देने से आपका आखिर क्या अहित हो सकता है?'

'लेकिन मैंने तो यह तर्क किया नहीं, घोष साहब।' सुमित्रा ने बीच में ही प्रफुल्ल को टोकते हुए अपनी कैफियत देनी चाही।

'मैंने भी यह नहीं कहा, सुमित्राजी, कि आप यह तर्क कर रही हैं। मेरे शब्दों पर तनिक ध्यान दीजिए। मैंने तो सम्भावना ही दर्शाई है कि हो सकता है, आप ऐसा तर्क करने लगें। हाँ, तो मैं कह रहा था कि आप सहर्ष हम लोगों का आमंत्रण अस्वीकार कर सकती हैं; परन्तु दुनिया की नजरों के ख्याल से अथवा भय से ऐसा न कीजिए। यदि आपकी अन्तरात्मा ऐसा करना चाहे, तो आप निःसकोच ऐसा कर सकती हैं। मैं आत्मा को ही सर्वोपरि समझता हूँ। आत्मा अक्षत ह, सुमित्राजी! आत्मा का अस्तित्त्व हमारा शरीरान्त हो जाने पर भी बना रहता

है। शैल का निधन हो जाने पर मैंने परलोकवाद का जो थोड़ा-बहुत अध्ययन किया है, उससे आत्मा के अक्षत रहने के सम्बन्ध में मेरे विचार और भी दृढ़ हो गए हैं।'

'आत्मा!' सुमित्रा ने कुछ अवरुद्ध गले से कहा—'मैं भी यही मानती हूँ कि आत्मा अक्षत है। और इसीलिए हमें दिवंगत आत्मा की इच्छा-अनिच्छा और सन्तोष का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए, घोष साहब!'

सुमित्रा को अपने दिवंगत पिता की अन्तिम और अधूरी इच्छा का सहसा ध्यान आ गया—'दुनिया में जब तक तुझे दुनियादारी के सभी उपकरणों और सुखों के बीच में न देख लूँगा, तब तक मेरी आत्मा को सन्तोष न मिल सकेगा।' और अपने पिता की इस अन्तिम इच्छा की पूर्ति करने के लिए ही सुमित्रा इस प्रफुल्ल घोष की ओर इतनी आकर्षित हो उठी है। उसके इस आकर्षण का रहस्य उसकी अपनी अन्तरात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं समझ सकता। कोई समझ ही कैसे सकता है?

सुमित्रा की इस बात का रहस्य प्रफुल्ल नहीं समझ सका। उसने केवल यही समझा कि आत्मा के अक्षत रहने की जो बात उसने कही है, उसका समर्थन-मात्र कर रही है सुमित्रा। इसीलिए प्रफुल्ल ने कहा—'हाँ, सुमित्राजी, दिवंगत आत्मा की इच्छा-अनिच्छा और सन्तोष का हमें पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए।'

परन्तु यह क्या? प्रफुल्ल ने आँख उठाकर सुमित्रा के मुख की ओर देखा, तो पाया कि उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की काली-काली पुतलियाँ अश्रु-मोतियों की माला पिरो रही हैं।

'क्या बात है, सुमित्राजी?' प्रफुल्ल ने आश्चर्य एवं करुणा से भरकर कहा—'आपकी आँखें सजल क्यों हो उठीं?'

सुमित्रा ने रूमाल से अपनी गीली आँखें पोंछ लीं, फिर कुछ प्रकृतिस्थ होने की चेष्टा करते हुए कहा—'कुछ नहीं, घोष साहब! मानव के मानस में कब कैसा ज्वारभाटा आ जाता है, इसे सदा शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।'

'यदि मेरे शब्दों से आपके अन्तस्तल पर कोई आघात पहुंचा हो, तो मैं क्षमा..।'

'नहीं-नहीं!' सुमित्रा ने बीच में ही प्रफुल्ल को टोक दिया--'आप मुझसे बारबार यह क्षमा-याचना न किया करें।' फिर एक क्षण रुककर उसने कजला और रेणुका की ओर देखा--गौर से देखा।

प्रफुल्ल शायद सुमित्रा का मनोभाव समझ गया, इसीलिए उसने कहा--'कजला, तुम रेणुका के साथ अब अपने कमरे में जाओ। मैं अभी तुम्हारी आचार्याजी को लेकर वहाँ आऊँगा।'

'जी, अच्छा!' कहकर कजला खड़ी हो गई और रेणुका के साथ उस कमरे से बाहर चली गई।

—१३—

'यह आपने ठीक नहीं किया!' सुमित्रा ने प्रफुल्ल की ओर गंभीर मुद्रा से देखते हुए कहा।

'क्या, सुमित्राजी?' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए पूछा।

'कजला और रेणुका को यहाँ से चले जाने का आदेश देने की भला क्या आवश्यकता थी?'

'यह आप स्वयं अपनी आत्मा से पूछ देखिए।' प्रफुल्ल ने एक सिगरेट सुलगाते हुए कहा।

'तो यह कहिए कि परलोकवाद का अध्ययन करके आप दूसरों के मन की बात भी समझने लगे हैं?'

'कुछ-कुछ।' फिर एक क्षण रुककर प्रफुल्ल ने कहा—'अच्छा, सुमित्राजी; जब आप मुझे क्षमा-याचना करने का निषेध कर चुकी हैं, तब मैं आपसे खुलकर दो-एक बातें पूछना चाहता हूँ।'

'सहर्ष पूछिए।'

'मैं जानना चाहता हूँ कि आपके मानस में अभी चन्द मिनटों पहले कौन-सा ज्वारभाटा आया था?'

'क्या करेंगे यह सब जानकर?'

'कुछ कर सकूँगा या नहीं, यह निश्चय तो तभी किया जा सकेगा न, जब मैं आपकी बात सुन-समझ लूँगा।'

'मेरी कहानी तो शायद आप पहले ही सुन चुके होंगे!' सुमित्रा ने गम्भीर होते हुए कहा—'नागरजी ने मेरे संबंध में आपको कुछ-न-कुछ अवश्य बतलाया होगा? मेरा अब तक का जीवन एक ज्वारभाटा ही समझिए।'

'हाँ, यह मुझे मालूम हो चुका है कि आप सुशिक्षित कुमारी हैं और दुर्दिन की मारी हैं।' प्रफुल्ल ने सिगरेट का कश खींचते हुए कहा।

'दुर्दिन!' सुमित्रा ने एक ठण्ढी साँस छोड़ते हुए कहा—'देश का विभाजन यदि न होता, तो मुझे इस दुर्दिन का शिकार ही क्यों होना पड़ता? मुझे ही क्यों, लाखों-करोड़ों नर-नारियों को सदियों से बसे हुए अपने पैतृक घरद्वार, हरे-भरे खेत-खलिहान और उद्योग-धन्धे छोड़कर शरणार्थी बन जाना पड़ा—अपने ही देश में परदेसी बन जाना पड़ा। अपने देश में अपना राज हो गया है न—अपना शासन!'

'शासन-चक्र चलाना कौतुक नहीं है, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने सुमित्रा के विद्रूप का उत्तर देते हुए कहा—'शासक को कभी-कभी बड़े निर्दय निर्णय करने पड़ते हैं। आप जानती होंगी, लोकरंजन के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम राम को प्राण नहीं, प्राणाधिका सीता का परित्याग करना पड़ा था; अर्जुन को अपने ही भाई-बन्धुओं की छाती को कराल बाणों की विषाक्त नोकों से छेदने पर विवश होना पड़ा था। इसी तरह भारत के शासकों को भी विवश होकर जन-संख्या का यह विनिमय करना पड़ा।'

'लेकिन शासक को जब हम कर्त्तव्य-पालन में शिथिल देखते हैं, और अकर्मण्यता के शून्य में कल्पना की कलम से आदर्शों के रंगीन चित्र आँकने में तल्लीन पाते हैं, तब हमें यह कहना ही पड़ता है कि व्यावहारिक तथ्यों का कठोर क्रम रोकने में वह कदापि समर्थ नहीं हो सकता। जन-संख्या का विनिमय करने में कोई बुराई नहीं थी; परन्तु मैं पूछती हूँ कि इस विनियम के सिलसिले में शासक का कर्त्तव्य और उसकी शक्तियाँ क्या सो रही थीं? पाकिस्तान की छाया में करोड़ों हिन्दू नर-नारियों पर रात-दिन जो पशाचिक प्रहार होते रहे, उनके प्रतिकार में हमारे शासकों ने क्या किया? हमारी बहू-बेटियों और माताओं के सम्मान

पर होनेवाली क्रूर चोटों को आखिर निर्जीव कायर की भांति हमारे शासक क्यों सहन करते रहे? अपनी दमयन्ती, द्रौपदी, सीता और सावित्री-जैसी ललनाओं के यज्ञ-वह्नि और वेद-ऋचा की भांति पवित्र सतीत्त्व पर जो प्रहार हुए, उनसे हमारे शासकों का हृदय क्यों न खौल उठा? क्या हमारे शासक यह भूल चुके हैं कि हमने एक नारी की सम्मान-रक्षा में अक्षौहिणी सेनाओं को महाभारत की लपकती ज्वालाओं में झोंक दिया था?'

सुमित्रा के गौरवर्ण मुख पर, बिजली के पंखे की हवा के बीच भी स्वेद-कण झलक उठे। रूमाल से अपना मुख पोंछते हुए सुमित्रा ने फिर कहा—'ये सब बातें ऐसी हैं, घोष साहब, जिनकी याद आते ही मेरा खून खौल उठता है। और इसी महानाश के सिलसिले में—जनसंख्या के विनिमय में—मुझे अपने पिता को भी सदा के लिए खो देना पड़ा। उनकी सारी इच्छाएँ, उनके सारे अरमान उन्हीं के साथ समाप्त हो गए।' सुमित्रा सहसा मौन हो गई। उसकी गम्भीर मुद्रा पर स्पष्ट रूप से किसी गहन विषाद की रेखाएँ उभर आई थीं।

'शासन और राजनीति तो शतरंज की चाल है, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने कहा—'हमारे शासक अब दूसरे—पराए—नहीं हैं, बेगाने नहीं हैं। अपने देश में अपना राज है। जन-जन का हित-साधन करनेवाला और जनतन्त्र का कट्टर समर्थन करनेवाला व्यक्तित्त्व हमारे देश का प्रधान मन्त्री है। जवाहरलालजी नेहरू जो कुछ कर रहे हैं, उस पर सन्देह करने की कोई गुंजाइश नहीं है। यह बात दूसरी है, कि परिस्थितियों के घटाटोप में हम उनकी यथार्थता को समझ न सकें—ठीक उसी तरह जिस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र ने जब सीता का परित्याग किया था, तब दूसरे लोगों की बात दूर, स्वयं उनके भाई लक्ष्मण भी राम का उद्देश्य भली-भांति नहीं समझ सके थे। इसीलिए मैं कह रहा हूं कि राजनीति की गुत्थियाँ सुलझाना सर्वसाधारण का काम नहीं।'

'तो आप जवाहरलालजी के इन शब्दों का समर्थन कर रहे हैं कि कठोर अवसर पर वाणी को अधिक-से-अधिक संयत होना चाहिए?' सुमित्रा ने प्रफुल्ल के अन्तस्तल की गहराई को माप लेने का प्रयत्न करना चाहा।

'भारतीय संस्कृति तो हमें यही सिखलाती है, सुमित्राजी!'

'परन्तु संयत वाणी की पृष्ठभूमि पर रहनेवाला प्रभाव जब तक कार्यों की तेजस्विनी शृङ्खला के माध्यम से प्रकट न हो, तब तक उसका महत्त्व ही क्या हो सकता है?' सुमित्रा ने एक क्षण रुककर कहा—'काँटे को फूल की नोक से कभी नहीं निकाला जा सकता। मेरा अपना विश्वास है कि हमारे प्रधान मन्त्री के सौजन्य और सदाशय से ओतप्रोत शब्दों को पाकिस्तान कभी न समझ सकेगा। पूर्वी बंगाल और पंजाब के अगणित मुस्लिम लुटेरों की रक्त-लोलुप रसना को हिन्दू जन-धन और नारी की सस्ती लूट के रक्त का जो स्वाद मिल चुका है, वह पाकिस्तान को भेजे जानेवाले कड़े विरोधी पत्रों के अक्षरों से मिट न सकेगा। जंगली भेड़िए को वाद्य-यन्त्रों की सुरीली स्वर- लहरियों से निरामिष-भोजी नहीं बनाया जा सकता।' कहते-कहते सुमित्रा का चेहरा तमतमा उठा।

'आपका तर्क ठीक हो सकता है, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने अपना अधजला सिगरेट 'ऐश-ट्रे' में फेंकते हुए कहा—'परन्तु राजनीति के दाँव-पेंचों में यह तर्क कहाँ किस प्रकार लागू हो सकता या नहीं, इसे हम नहीं समझ सकते। हाँ, आप चाहें तो दिल्ली चलकर कभी प्रधान मंत्री नेहरूजी से स्वयं यह तर्क कर देखें। मैं आपके साथ दिल्ली चल सकता हूँ और नेहरूजी से आपकी भेंट करा सकता हूँ। वही इसका यथोचित उत्तर दे सकते हैं—ठीक उसी तरह, जिस प्रकार सीता के परित्याग का कारण स्वयं रामचन्द्र ने ही अपने भाई लक्ष्मण तथा अन्य परिजनों को समझाया था।'

'मैं किसी से कोई तर्क करके अपने हृदय के घावों पर नमक छिड़कवाने की गलती नहीं करना चाहती।' सुमित्रा ने उदासीनता के स्वर में कहा—'मैं जब अपना घर-द्वार ही नहीं, बल्कि अपने पिता को भी खो चुकी, तब किसी से तर्क करके अब क्या प्राप्त कर लूँगी?'

'आप चाहें तो बहुत-कुछ प्राप्त कर सकती हैं।'

'आपका मतलब मैं नहीं समझी!'

'ओह!' प्रफुल्ल ने कुछ सतर्कता से काम लेते हुए कहा—'आप मेरा आशय नहीं समझ सकीं, इसका अर्थ यही हुआ न, कि मैं शायद कोई अप्रिय बात कह बैठा हूँ?'

'नहीं, आपके शब्दों में कोई अप्रिय बात नहीं है।' सुमित्रा ने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा—'हाँ, उसमें कुछ अस्पष्टता अवश्य है। 'बहुत कुछ' से मैं आपका आशय एकदम नहीं समझ सकी।'

'बहुत-कुछ से मेरा आशय यही था कि आपको वीतराग बनने की आवश्यकता नहीं है। जीवन-संग्राम के घात-प्रतिघातों से विचलित हो जाना अपने अस्तित्त्व को मिटा देना है, सुमित्राजी! जो हो चुका, उसे धीरे-धीरे भूलने की चेष्टा करना ही बुद्धिमानी है और है सुखी जीवन का रहस्य समझ लेने की दिशा में प्रवृत्त होना।'

'मेरे लिए अब भी आपकी बात अस्पष्ट है, घोष साहब!'

'तो मैं और साफ किए देता हूँ।' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा—'आपकी बातों से मैं यही समझ सका हूँ कि आप अपने पिताजी को खोकर स्वयं को अकिंचन अनुभव कर रही हैं। परन्तु इस भावना को धीरे-धीरे भूलने की चेष्टा आपको करनी होगी।'

'यह कैसे हो सकता है, घोष साहब?'

'हो सकता है, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने गंभीर होकर कहा—'यदि मैं गलत नहीं समझ सका हूँ, तो कह सकता हूँ कि दिवंगत आत्मा की इच्छा-अनिच्छा और संतोष की बात छिड़ते ही आप बहुत गम्भीर हो उठी थीं—कदाचित् अपने पिता की स्मृति से आप भर उठी थीं। इसका अर्थ मैं यही समझ सका हूँ कि आपके पिता की कोई अन्तिम इच्छा अधूरी रह गई है।'

सुमित्रा ने आश्चर्य से भरकर आँखें फैलाते हुए प्रफुल्ल की ओर देखा। उसे इस तरुण की असाधारण बुद्धि पर ईर्ष्या हो उठी। आखिर यह कैसे समझ गया कि सुमित्रा सचमुच अपने पिता की अन्तिम इच्छा को लेकर आजकल इतनी अभिभूत हो रही है—परेशान हो रही है। तो क्या प्रफुल्ल

यह भी समझ गया होगा कि सुमित्रा अपने पिता की अन्तिम इच्छा को पूरा करने के लिए ही प्रफुल्ल की ओर..... ? नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता; यह असम्भव है। पिता को अन्तिम इच्छा अधूरी रह जाने का आभास पा जाना तो सम्भाषण के सिलसिले में ही सम्भव हो सका है। परन्तु मेरे मन के अन्तराल का गोपनीय निश्चय समझ सकना आसान नहीं।

सुमित्रा को इस प्रकार मौन - मूक देख, प्रफुल्ल ने कहा—'क्या मैं जान सकता हूँ, सुमित्राजी; आपके पिताजी की अन्तिम इच्छा क्या थी ?'

इधर सुमित्रा कल से लेकर अब तक जिस बात से परेशान थी, वही सामने आ गई। सुमित्रा के मन में आया कि वह इस स्वर्ण अवसर को हाथ से न जाने दे और अपने पिता की अन्तिम इच्छा को स्पष्ट शब्दों में प्रफुल्ल के सामने रख दे। परन्तु सुमित्रा के अन्तर की नारी गहरे संकोच से भर उठी। नारी की जन्मजात लज्जा एक पुरुष के समक्ष निरावरण होने का दुस्साहस कैसे कर सकती थी ? उसने चतुराई से काम लेते हुए कहा—'ये सब व्यक्तिगत बातें हैं, घोष साहब। इनकी गहराई में जाना......।'

'सबके लिए उचित नहीं।' प्रफुल्ल ने अधीरता के साथ सुमित्रा की बात पूरी होने के पहले ही कह दिया—'सबको इसका अधिकार भी नहीं शायद ! यही आप कहना चाहती हैं न, सुमित्राजी ?'

'नहीं, मेरा यह मतलब नहीं।'

'तब ?'

'पूरी बात सुने बिना ही आप मुझे गलत समझने की चेष्टा न किया करें, तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।' सुमित्रा ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा—'मैं यह कह रही थी कि व्यक्तिगत बातों की गहराई में जाना अपने-आपको व्यर्थ परेशान करना है।'

'तो यह कहिए कि आप मुझे परेशान नहीं करना चाहतीं ?'

'कभी नहीं।'

'अर्थात् आप अपने सुख-दुख से मुझे दूर रखना चाहती हैं?'

'यह भी नहीं।'

'तब यह कहिए कि आप जिस रोग से पीड़ित हैं, जिस चिन्ता से अभिभूत हैं, उसका कोई उपचार भी नहीं करना चाहतीं?'

'ऊँहुँ!' सुमित्रा ने सिर हिलाते और मुसकराते हुए कह दिया।

'यह भी नहीं,वह भी नहीं, तब आखिर बात क्या है?' प्रफुल्ल ने कुछ खीझ दिखलाते हुए कहा—'सुना था कि नारी एक पहेली होती है। पुरुष उसकी गहराई तक कभी पहुँच नहीं सकता। परन्तु इस तथ्य को कभी प्रत्यक्ष नहीं देखा था। आज यह भी देख लिया।'

सुमित्रा अपनी इस अप्रत्याशित विजय पर गर्व का अनुभव करने लगी। उस पुरुष को, जिसे सुमित्रा मन-ही-मन अपनी आराधना के आसन पर आसीन करने का निश्चय कर चुकी है, इस प्रकार वाग्जाल में फँसते देख,सुमित्रा एक अव्यक्त प्रसन्नता से भर उठी। उसे लगा कि जब प्रफुल्ल इतनी आत्मीयता से उसके सुख-दुख की बात पूछ रहा है, तब उससे कोई दुराव रखना उचित न होगा। तो क्या वह अपने पिता की अन्तिम इच्छा प्रफुल्ल को बतला दे? आखिर हानि क्या है बतला देने में? उसने निश्चय कर लिया कि यह बात वह बतला अवश्य देगी; किन्तु अभी नहीं। क्यों न वह प्रफुल्ल घोष को स्वयं अपने निवास-स्थान पर चाय पीने के लिए आमंत्रित करे और वहीं यह बात बतलाई जाए? तभी सुमित्रा ने कहा—'आप मुझे फिर गलत समझ रहे हैं, घोष साहब! नारी गम्भीर होती होगी; परन्तु यह सुमित्रा अभी पूरी नारी नहीं है—अधूरी नारी है। इस दशा में नारी की गहराई मुझमें कहाँ हो सकती है?'

'अधूरी नारी!' प्रफुल्ल ने कहा—'ओह! आपका आशय यह है कि जब तक आप कुमारी हैं, तब तक आपको नारी नहीं कहा जा सकता?

सुमित्रा कुछ न बोलते हुए भी सिर हिलाकर मानो कह बैठी कि हाँ, यही बात है।

'लेकिन यह तो आपके हाथ की बात है।' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा— 'आप जब चाहें, पूरी नारी हो सकती हैं।'

सुमित्रा के गालों पर जो स्वाभाविक लाली दमक रही थी, वह कई गुनी होकर बहुत गहरी हो उठी। उसने गुरु गम्भीर स्वर में कहा—'जिस परिणय को आप इतना सरल समझते हैं—आप ही नहीं, आम तौर पर सारा पुरुष-वर्ग एक खेल समझता है, वह नारी के लिए खेल नहीं, बल्कि जीवन-मरण का सौदा होता है।'

'मैं इसे कब अस्वीकार करता हूँ, सुमित्राजी ?'

'तब आप कैसे कह रहे हैं कि मैं जब चाहूँ, पूरी नारी हो सकती हूं ?'

'इसलिए कि आप साधारण नारी से कहीं बहुत ऊंचे स्तर पर हैं। आप एक महिला-विद्यालय की आचार्या हैं। दुनिया के अनेक संघर्षों का सामना आप कर चुकी हैं। इस दशा में या तो किसी पुरुष को आप अपना जीवन-साथी बनाने का निश्चय कर ही चुकी होगीं या अब कर सकती हैं।'

सुमित्रा को एक बार फिर लगा कि प्रफुल्ल संभवतः उसके आकर्षण को बहुत कुछ भाँप चुका है। यदि यह बात न होती, तो साधारण सम्भाषण के सिल-सिले में न तो इतनी आत्मीयता ही यह प्रकट कर सकता, न मेरे पिता की अन्तिम इच्छा जानने का गहरा आग्रह कर सकता और न इस प्रकार अन्त में परिणय की बात उठा सकता। सुमित्रा को बड़ा मायावी प्रतीत हुआ यह प्रफुल्ल।

सुमित्रा के इस मौन को भंग करने की चेष्टा करते हुए प्रफुल्ल ने कहा— 'अच्छा , सुमित्राजी; इस प्रसंग को बदल देना ही शायद अब ठीक होगा। आप तो खुलकर बात भी नहीं कर रही हैं।'

'हाँ, मैं भी यही चाहती हूं।' सुमित्रा ने कुर्सी से खड़े होते हुए कहा—'एक अनुरोध मुझे भी आपसे करना है। शनिवार को रात में आठ बजे आप मेरे निवासस्थान पर आकर चाय पीने की कृपा कीजिए।'

'एक शर्त्त पर आ सकूँगा।'

'वह क्या?' सुमित्रा ने अधीर उत्सुकता से पूछा।

'यदि आप अपने पिताजी की अन्तिम इच्छा मुझे बता सकें।'

'बतला दूँगी।' सुमित्रा ने प्रसन्न मुद्रा से कहा—'तो मैं आपकी राह देखूँगी। भूल तो नहीं जाएँगे?'

'नहीं भूलूँगा। अवश्य आऊँगा।'

'अग्रिम धन्यवाद।' सुमित्रा ने मुसकराते हुए कहा—'अच्छा, कजला और रेणुका का कमरा कहाँ है? आपने कहा था न, मुझे लेकर आप उनके कमरे में पहुँचेंगे।'

'अरे! मैं तो यह बात एकदम भूल गया था।' प्रफुल्ल ने आगे-आगे पग बढ़ाते हुए कहा—'अवश्य चलिए।'

कजला और रेणुका के कमरे में पहुँचकर सुमित्रा उनसे बातें करने लगी, तो प्रफुल्ल ने कहा—'मैं अभी आता हूं, सुमित्राजी। ड्राईवर से तैयार रहने को कह दूँ।'

'हाँ, मैं अभी पाँच-सात मिनट यहाँ बैठूँगी।'

प्रफुल्ल ने जाकर ड्राईवर को आदेश दिया कि आचार्या सुमित्राजी को गान्धी महिला-विद्यालय के छात्रावास में उनके निवासस्थान पर वह छोड़ आवे।

ड्राईवर तत्काल मोटरखाने से कार लेने चला गया। जब तक ड्राईवर कार लाया, सुमित्रा भी कजला और रेणुका के कमरे से बाहरी बरामदे में आ चुकी थी। उसने कार तैयार देख, प्रफुल्ल को दोनों हाथ जोड़, अभिवादन करते

हुए कहा—'अब आज्ञा दीजिए।'

'आज्ञा न दूँ, तो क्या आप रुक सकेंगी?'

'शायद रुकना पड़े!' मुसकराते हुए सुमित्रा ने कहा।

'नहीं, दुनिया की नजरों का और व्यावहारिकता का खयाल हमें रखना ही होगा।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'कजला और रेणुका को भेजूँ आपके साथ?'

'नहीं, अब रात में इन्हें भेजने की आवश्यकता नहीं।' सुमित्रा ने कहा—'कार किसी बेगाने की तो है नहीं।' और पुनः अभिवादन कर सुमित्रा कार में बैठकर चली गई।

प्रफुल्ल कई क्षणों तक उसी दिशा की ओर देखता रहा, जिस दिशा में सुमित्रा को लेकर कार चली गई थी। राजपथ लगभग सुनसान था। रात्रि का अन्धकार धीरे-धीरे सघन होने लगा था। शुभ्र नीलाकाश में अगणित तारे टिमटिमा रहे थे। इन टिमटिमाते तारों को प्रफुल्ल बहुत देर तक देखता रहा और रहस्यमयी सुमित्रा के सम्बन्ध में जाने क्या-क्या सोचता रहा, जो अपने-आपको अधूरी नारी समझती है; परन्तु बौद्धिक प्रतिभा जिसके रोम-रोम में व्याप्त है, और न केवल व्यावहारिकता, प्रत्युत राजनीति में भी जिसकी गहरी पहुँच है।

वह सोचता रहा और देखता रहा नीलाकाश के टिमटिमाते तारों को। परन्तु उसकी समझ में न आ सका कि यह सुमित्रा आखिर अपने आपको अधूरी नारी क्यों समझती है। यदि परिणय हो जाने से ही कोई नारी अपने-आपमें पूर्णता का अनुभव करने लगती है और सुमित्रा भी यही चाहती है, तो फिर परिणय का प्रसंग छिड़ते ही वह मौन क्यों हो गई थी? कैसी रहस्यमयी है यह सुमित्रा—अधूरी नारी?

प्रफुल्ल का दिमाग भन्ना उठा। उसने अपने सिर को एक हलका-सा झटका दिया और प्रकृतिस्थ होने का प्रयत्न करते हुए अपनी बैठक की तरफ चला गया।

समय सरक जाता है, किन्तु उसकी मीठी-कड़वी स्मृतियाँ मानव-मस्तिष्क में कभी-कभी अनायास ही किसी कुहासे की भाँति छा जाती हैं। स्मृतियों का यह कुहासा बहुधा कष्टप्रद ही होता है। इसका एक कारण है: मीठी स्मृतियों की अपेक्षा कड़वी स्मृतियाँ ही आम तौर पर कुहासे की तरह मानव-मस्तिष्क में धुएँ की भाँति उमड़ती-घुमड़ती रहती हैं। इस कष्ट से मुक्ति पाने का उपाय भी मानव अपनी कल्पना और बुद्धि के सहारे खोजने लगता है। परन्तु जिस उपाय का वह सहारा लेता है, वह सदा कल्याणकारी ही होता हो, यह जोर देकर नहीं कहा जा सकता।

पण्डित देवदत्त शर्मा भी अपने पुत्र हरीश की दिनोंदिन बढ़ती उद्दण्डता और उच्छृङ्खलता से अभिभूत रहने लगे। जिस हरीश की सुख-सुविधा के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया; जिसकी उच्च-शिक्षा के लिए उन्होंने अपना खून सुखा डाला, उसकी ओर से प्रदर्शित तनिक-सी उपेक्षा भी उन्हें सर्पदंश की भाँति प्राणान्तक पीड़ा पहुँचाने लगी।

उस दिन जब रेडियो पर फिल्मी गीतों का कार्यक्रम, वह अपने पिता देवदत्त की कराहना की तनिक भी परवाह न कर बराबर सुनता रहा और स्वयं देवदत्त को बाजार जाकर अपनी दवा लानी पड़ी, तब से एक मर्मान्तिक पीड़ा रह-रहकर देवदत्त को बेचैन करने लगी है। उस दिन उन्होंने स्पष्टतः समझ लिया कि जिस पुत्र को वह अपनी समस्त आशाओं का केन्द्र समझ रहे हैं, वह उनके जीवन का बहुत बड़ा धोखा और मृगजल है।

हरीश की इस उद्दण्डता का आखिर कारण क्या है ? माता-पिता के प्रति उसकी इस रुक्षता और अकर्त्तव्यपरायणता का मूल कारण क्या है ? बहुत सोचते-विचारने पर भी जब देवदत्त की समझ में कोई कारण नहीं आया, तब उन्होंने सोचा, हरीश अब सयाना हो रहा है, वयस्क हो रहा है। बीस वर्ष के तरुण पुत्र को सम्भवतः अब किसी जीवन-संगिनी की आवश्यकता अनिवार्य हो उठी है। तरुणाई का ज्वार प्रत्येक युवक में उठता है। प्रकृति का यह अटल विधान अनादिकाल से अपना प्रबल अस्तित्त्व रखता है और सदा इसका अस्तित्त्व रहेगा। बहुत सम्भव है, एक सुन्दर जीवन-संगिनी की छाया में हरीश की यह उद्दण्डता, उच्छृङ्खलता और अकर्त्तव्यपरायणता तिरोहित होने लगे।

देवदत्त जब अपने अन्तर के हाहाकार को दबाने के लिए हरीश के विवाह की बात सोच रहे थे, तभी काशी के एक अध्यापक अपनी सुन्दर और संस्कृत पढ़ी-लिखी कन्या का विवाह-प्रस्ताव लेकर देवदत्तजी के पास पहुँचे। इन अध्यापक को देवदत्तजी बहुत समय से जानते थे। इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी; किन्तु कुलीनता में कोई सन्देह करने की गुंजाइश नहीं थी। फिर देवदत्तजी आदर्शवादी हैं—सुधारवादी भी। कन्या के विवाह में आर्थिक लेन-देन और दहेज-प्रथा की उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में खुलकर भर्त्सना की है। इस दशा में आर्थिक प्रश्न उनके सामने कोई बाधा उत्पन्न नहीं कर सका।

देवदत्त ने केवल एक शर्त्त रक्खी कि हरीश स्वयं उन अध्यापक की कन्या को देखेगा। आधुनिक युवकों की यह पहली माँग रहती है, जिसकी उपेक्षा वह नहीं करना चाहते। हरीश को यदि कन्या सुन्दर और अनुरूप प्रतीत हुई, तो देवदत्त यह विवाह-प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लेंगे।

हरीश ने स्वयं काशी जाकर अपने माता-पिता के साथ प्रस्तावित कन्या को देखा और वह मुग्ध हो गया। देवदत्त ने प्रसन्नतापूर्वक यह विवाह-प्रस्ताव

स्वीकार कर लिया। ज्येष्ठ पुत्र का विवाह था, अतः बड़े उत्साह से उन्होंने इसे सम्पन्न किया। उनका उत्साह और खर्च देखकर सभी परिचितों ने कहा कि देवदत्तजी ने अपनी हैसियत से बहुत अधिक खर्च किया है। और, यह अतिशयोक्ति नहीं थी। देवदत्त ने अपने जीवन की न केवल सारी गाढ़ी कमाई इस विवाह में लगा दी, बल्कि एक बड़ी रकम भी कर्ज में लेकर उड़ा दी।

जिस दिन पुत्रबधू के साथ देवदत्त ने अपने घर में प्रवेश किया, उनकी उमंगों का उत्स उछल पड़ा। उन्हें लगा कि अब उनका घर गुलजार हो गया। देवदत्त की पत्नी की प्रसन्नता का ज्वार मानो समस्त सुखों की पूर्णिमा के चन्द्रमा का स्पर्श कर बैठा। पुत्रबधू के गृह-प्रवेश के उपलक्ष्य में ऐसा शानदार प्रीतिभोज उन्होंने दिया कि नगर में उनकी प्रशंसा की धूम मच गई।

परन्तु अमित सुख का स्पर्श भी मानव को अधिक समय तक सुखी नहीं रहने देता। इस क्षणभंगुर संसार में प्रत्येक वस्तु का अन्त अवश्यम्भावी है। इस दशा में मानव का सुख स्थिर कैसे रह सकता है? पुत्र के विवाह के आठ महीने के बाद ही देवदत्त के इस अमित सुख के चन्द्रमा पर खग्रास ग्रहण की काली छाया पड़ने लगी। देवदत्त की पत्नी पीलिया से पीड़ित हुई और हरीश की पत्नी भी ज्वर का शिकार हो गई। यों तो देवदत्त की पुत्रबधू ने जिस दिन से इस घर में पैर रक्खा, उसी दिन से बीमारियों और आर्थिक संकट का भयङ्कर ताण्डव प्रारम्भ हो चुका था; किन्तु अब यह ताण्डव अपने चरम बिन्दु पर पहुँच रहा था।

विवाह के बाद ही पुत्रबधू की हथेलियों में भयंकर अपरस हुआ। शहर के एक प्रख्यात डाक्टर का उपचार कराया गया। सीमा से बाहर खर्च किया गया, फिर भी कोई लाभ न हुआ। देवदत्त अब तक पुत्र के विवाह का कर्ज भी पूरा न चुका सके थे कि डाक्टरों की जेबें भरने का क्रम जारी हो गया। स्वभावतः उनकी खीझ और झुँझलाहट बढ़ने लगी।

एक दिन उनके एक मित्र, जो स्वयं होमियोपैथिक डाक्टर थे, उनकी

आपबीती सुनकर कह उठे—'आप व्यर्थ ही डाक्टरों के चक्र में पड़ जाते हैं। मुझसे कहा होता, तो आसानी से आपकी पुत्रबधू का अपरस ठीक हो जाता। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। आप मुझे दवा करने दीजिए।'

मित्र की आत्मीयता से प्रभावित होकर तथा अपनी आर्थिक स्थिति की दयनीयता से विवश होकर देवदत्त ने होमियोपैथिक उपचार प्रारम्भ कर दिया। परन्तु उनकी गृहदशा पर इस समय मानो राहु-केतु की छाया पड़ रही थी। उनके पुत्र हरीश को इस होमियोपैथिक उपचार कराने में पिता के पक्षपात की झलक दीख पड़ी। उसके मन में किसी अज्ञात असन्तोष की जो चिनगारी चमक रही थी, वह अपने विस्फोट का मानो अवसर देख रही थी। यह विस्फोट उस समय हुआ, जब हरीश की माँ पीलिया से पीड़ित हुई और डाक्टर को घर में बुलाकर प्रतिदिन उन्हें तीन-तीन इंजेक्शन दिलाने पड़े।

होनहार बड़ी प्रबल होती है। जिस समय हरीश की माँ पीलिया से पीड़ित हुई, ठीक उसी समय हरीश की पत्नी को भी बुखार आने लगा। हरीश स्वयं अपनी पत्नी को लेकर एक प्रख्यात डाक्टर के पास गया। उसने पाँच-पाँच रुपए मूल्य के कुछ इंजेक्शन प्रतिदिन दिए जाने का परामर्श दिया।

देवदत्त यह स्थिति देख, विक्षुब्ध हो उठे। सीमित-सी आय के एक हिन्दी पत्रकार की आँखों के आगे तितलियाँ नाच उठीं। पत्नी के पीलिया का उपचार यदि नहीं कराया गया, तो अपनी गृहस्थी का सर्वनाश उन्हें साफ दीख रहा था। इधर हरीश की यह हरकत कि साधारण-से बुखार में भी वह पाँच रुपए दिन के इंजेक्शन अपनी पत्नी को दिलाना चाहता है। विषम समस्या थी उनके सामने।

देवदत्त ने स्पष्ट रूप से इतना महँगा उपचार कराने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। बस, देवदत्त की इस असमर्थता ने हरीश के असन्तोष की चिनगारी को प्रज्वलित करने में आहुति का काम कर दिया। उसने अपनी

माँ की बीमारी में ही देवदत्त से साफ कह डाला—'मैं साफ देख रहा हूँ कि मेरे साथ घोर पक्षपात बरता जा रहा है। मेरी पत्नी के अपरस का एलोपैथिक उपचार बन्दकर होमियोपैथिक उपचार कराया गया। अब मेरी पत्नी को इंजेक्शन दिलाने में भी असमर्थता प्रकट की जा रही है। लेकिन माँ की बीमारी में डाक्टर को तीन-तीन बार घर बुलाया जा रहा है। माँ की बीमारी में जितना खर्च किया जा रहा है, उसका तृतीयांश भी मेरी पत्नी पर नहीं किया गया।'

इस विस्फोट से देवदत्त का रोम-रोम जल उठा। मर्मान्तक पीड़ा से व्यथित हो, वह अपना माथा पीटकर रह गए। अपने पुत्र का यह पराया-पन देख, देवदत्त की पत्नी मर्माहित हो उठीं। पास-पड़ोसवाले कलियुगी पुत्र हरीश की इस अभिव्यक्ति पर थू-थू कर उठे। इन सबके इस प्रकार मर्म हत हो उठने का कारण था। देवदत्त ने कभी स्वप्न में भी अपनी पुत्रबधू के इलाज में किसी पक्षपात से काम नहीं लिया। पहले-पहल उन्होंने अपरस का एलो-पैथी इलाज ही कराया था; परन्तु अपरिमित व्यय करने पर भी जब सन्तोषजनक लाभ न हुआ, तो विवश हो उन्हें वह इलाज बदल देना पड़ा। और, जिस होमियोपैथिक इलाज को यह हरीश पक्षपात कह बैठा, उसी इलाज से अन्त में अपरस ठीक भी हुआ। अब जो बुखार पुत्रबधू को आ रहा है, वह केवल तीन दिन का साधारण-सा बुखार है। तत्काल इतने महँगे इंजे-क्शन दिलाने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। यह तो हरीश की हठ-धर्मी है, नई बहू के चोचले हैं और है अपने ऋणग्रस्त और जर्जर पिता की परेशानियों में वृद्धि करने की हरकत।

देवदत्त स्वभावतः क्रोधी हैं। उनका क्रोध जब भभक उठता है, तब दुर्वासा ऋषि का मूर्त्त रूप सामने आ जाता है। हरीश की इस संकुचित अभिव्यक्ति में उन्होंने भयंकर घृणा, अपमान, कृतघ्नता, दुराव, लांछना, कर्त्तव्यहीनता आदि की ज्वालाएँ देखीं और वह झुलस उठे! उन्होंने साफ कह दिया—'आज जब तेरे विवाह के कर्ज से भी मैं मुक्त नहीं हो सका

और तेरी रुग्गा पत्नी का इलाज कराते-कराते मेरा कचूमर निकला जा रहा है, तब तेरी यह घृणित भावना मैं सहन नहीं कर सकता। तुझे शर्म नहीं आती यह लांछन लगाने में कि तेरी पत्नी के उपचार में मैं पक्षपात कर रहा हूँ, और तेरी माँ के इलाज में जितना खर्च मैं कर रहा हूँ, उसका तृतीयांश भी तेरी पत्नी पर नहीं हुआ? आज जब तू एक पाई की कमाई नहीं कर रहा है, तब तेरी यह हरकत और हिमाकत है। जब तू सचमुच कुछ अर्थोपार्जन करने लगेगा, तब भगवान् ही जाने, तू हम लोगों के साथ क्या नीचता करेगा। अब केवल एक रास्ता है: तू अपनी पत्नी के साथ हम लोगों से अलग होकर जहाँ चाहे, वहाँ रह।'

हरीश की बी० ए० फाइनल की परीक्षाएँ समाप्त हो चुकी थीं। बी० ए० में उसके ससम्मान उत्तीर्ण होने में किसी सन्देह की गुंजाइश नहीं थी। उधर उसके सास-ससुर ने इस बीच हरीश को उलटा-सीधा भरने में कोई कमी नहीं रक्खी थी। इन परिस्थितियों में देवदत्त का क्रोध हरीश-जैसे कृतघ्न और कर्त्तव्यच्युत कलियुगी पुत्र को सन्मार्ग पर न लाकर भ्रान्त कर बैठा। हरीश खुलकर अपने पिता से लड़ा-झगड़ा और बीमार माँ की तनिक भी चिन्ता न कर अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ एक दिन ससुराल चला गया।

हरीश के सास-ससुर का मन फूल उठा। किन्तु हरीश के माता-पिता का हृदय टूट गया। हरीश के सास-ससुर के प्रति देवदत्त का क्षोभ बढ़ गया। मन में आया कि काशी जाकर उन्हें कसकर फटकार सुनाई जाए और यह कहा जाए कि तुम्हारे संस्कार इतने निम्न स्तर पर थे, यह हमें ज्ञात होता, तो कभी तुम्हारे यहाँ अपने लड़के का विवाह न करता। अरे, इस समय तो तुम्हारी कुलीनता इसमें थी कि तुम इस बागी और पितृद्रोही हरीश को समझा-बुझाकर हमारे घर लाकर छोड़ जाते; किन्तु तुमने उसे आश्रय देकर और उसकी पीठ थपथपाकर हमारे साथ जो छल किया है, जो विश्वासघात किया है, उसका दण्ड भी ईश्वर तुम्हें देगा। ईश्वर के

दरबार में कभी अन्याय नहीं होता। वहाँ देर हो सकती है; परन्तु अन्धेर नहीं हो सकता।

लेकिन देवदत्त ने हरीश के सास-ससुर के यहाँ जाने का विचार त्याग दिया। अपना दाम खोटा, तो परखैया को क्या दोष ? यदि हरीश कुपुत्र न होता, तो एक सास-ससुर क्या, हजार सास-ससुर भी उसे मातृ-पितृद्रोही बनाने का दुस्साहस न कर सकते।

माता-पिता कितनी मनौतियाँ मनाकर, कितने कष्ट सहकर पुत्र का पालन-पोषण करते हैं और अपना पेट काट-काटकर उसे शिक्षा दिलाते हैं, यह सब हरीश भूल गया । पिता के क्रोध का कारण क्या है, इसे लाख समझाने पर भी उसने समझने की चेष्टा नहीं की। माता-पिता की माया-ममता, उनकी मर्यादा, उनके प्रति कर्त्तव्यपरायणता आदि को हरीश ने क्षण भर में चकनाचूर कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है, कि वह ऐसे किसी अवसर की खोज में ही था। इसीलिए आज उसने पिता के मुख से चले जाने की बात पकड़ ली और सपत्नीक उनके घर से बाहर हो गया।

क्रोधावेग में माता-पिता कुछ भी कह दें, किन्तु अपने हृदय के प्रतिबिम्ब को आँखों से ओझल देख बेचैन हो उठते हैं। देवदत्त और उनकी अस्वस्थ पत्नी का भी यही हाल हुआ । हरीश की नीचता, दुष्टता और पराएपन से पूर्णतः परिचित होने पर भी उनके हृदय में रह-रहकर एक कसक—टीस उठने लगी।

पुत्र के पृथक्करण से हरीश की माँ को अब हृदय-रोग के दौरे आने लगे। देवदत्त की मानसिक एवं आर्थिक परेशानियाँ विकट से विकटतर होती गईं। उन्होंने हरीश को पुनः घर आ जाने के स्नेहपूर्ण संकेत भी दिए, किन्तु सब व्यर्थ।

भाग्य का खेल और पूर्वजन्म के कर्मफल का प्रायश्चित्त समझ, देवदत्त किसी तरह अपनी जीवन-डगर पर बढ़ते रहे। अस्वस्थ पत्नी का उपचार कराने, छोटे बच्चे और पुत्री का पालन-पोषण करने और उन्हें शिक्षित करने

का गुरु गम्भीर दायित्त्व देवदत्त के सामने था। इस सबकी उपेक्षा वह कैसे कर सकते थे? स्वयं तिल-तिलकर भस्म होते हुए देवदत्त अब इस जीवन में अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं होना चाहते। पूर्वजन्म में कदाचित् इसी प्रकार की कोई त्रुटि उनसे हो चुकी होगी, जिसका बदला पुत्ररूप में यह हरीश ले रहा है और उनके जीवन का सारा सुख-सन्तोष छिन्न-भिन्न कर रहा है। अब वह जानबूझकर और इतना सब क्लेश पाकर, ऐसी कोई गलती नहीं करना चाहते, जिसका प्रायश्चित्त उन्हें आगामी जीवन में इस प्रकार तिल-तिलकर करना पड़े। अपनी इसी धारणा की मशाल जलाए, देवदत्त अपने जीवन की कण्टकाकीर्ण और अँधेरी पगडण्डी पर बढ़ते जा रहे हैं—सदा बढ़ते जाएँगे।

सुमित्रा के चले जाने पर प्रफुल्ल अपनी बैठक में जाकर एक आरामकुर्सी पर गुमसुम-सा फैल गया। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो किसी आत्मीय को दूर देश की यात्रा पर उसने भेज दिया हो। आँखों से ओझल हो जाने पर किसी बिछुड़ते आत्मीय की स्मृतियाँ जिस प्रकार हमारे मानस में प्रतिबिम्बित होकर नाचने लगती हैं, ठीक उसी प्रकार सुमित्रा के चले जाने पर आज उससे प्रफुल्ल की जो बातें हुई थीं, उनमें से कुछ उसकी आत्मा के अन्तराल में प्रतिध्वनित-सी होने लगीं।

सुमित्रा से प्रफुल्ल की आज जो भेट हुई है, उसे प्रफुल्ल किरण वेला समझ रहा है। हाँ, किरण-वेला। कारण, आज के पहले वह सुमित्रा के रूप-रङ्ग और शिक्षा-दीक्षा से ही प्रभावित था; परन्तु अब वह उसके वाक्-चातुर्य्य से भी गद्गद हो उठा है।

चंचलता और गम्भीरता का साकार रूप सुमित्रा में वह देख चुका है। यह बात साधारणतः अपवाद भले ही हो, परन्तु असम्भव नहीं है। पहाड़ी सरिता यदि कहीं उथली और चंचल होती है, तो कहीं गहरी भी होती है। ठीक इसी प्रकार यह सुमित्रा कभी चंचल और कभी गम्भीर रहती है। और इन दोनों विशेषताओं के बिना नारी अधूरी रहती है। मनोरमा प्रेयसी के रूप में यदि नारी चंचल न रहे, तो वह अपने उपास्य को प्रणय-सुधा का सरस पान क्या कराएगी और स्वर्गोपम जीवन का अनुभव क्या होने देगी? इसी तरह जीवन-संघर्षों के विकट मोर्चों पर यदि नारी गहन-गम्भीर न

रहे, तो उलझी गुत्थियाँ सुलझाने में वह समर्थ कसे हो सकेगी ?

प्रफुल्ल को सन्तोष है कि सुमित्रा चंचल होकर भी गहन-गम्भीर है। उसने स्वीकार किया कि सुमित्रा किसी पर्वत-शिखर की भाँति बहुत ऊँची है—इतनी ऊँची कि उसे सरलतापूर्वक स्पर्श नहीं किया जा सकता और सागर की भाँति बहुत गहरी भी है—सर्वथा अगम। सुमित्रा की इन सभी विशेषताओं को पढ़-समझकर ही प्रफुल्ल आज उसकी ओर बहुत अधिक आकृष्ट हो उठा है। सुमित्रा की सरलता पर वह न्योछावर हो चुका है। कैसी भोली है यह सुमित्रा ! इतनी सारी विशेषताओं के रहते हुए भी कह रही थी—'नारी गम्भीर होती होगी; परन्तु यह सुमित्रा अभी पूरी नारी नहीं है—अधूरी नारी है। इस दशा में नारी की गहराई मुझमें कहाँ हो सकती है ?'

प्रफुल्ल को लगा कि कहने को तो सुमित्रा यह बात कह गई; परन्तु उसके मन में यह विचार शायद ही आया हो—शायद ही वह यह समझती हो कि ऐसा कहनेवाली नारी अन्य किसी सांसारिक अर्थ में भले ही अधूरी हो; परन्तु बौद्धिक प्रतिभा और मानवीय विशेषताओं का जहाँ तक सम्बन्ध है, कदापि अधूरी नहीं हो सकती।

जाते समय सुमित्रा अपनी आत्मीयता का जो अमृत लुटा गई है, अनजाने ही जो अतुल स्नेह दे गई है और प्रफुल्ल को अपनत्त्व के घेरे में घेर गई है, इसे सम्भवतः वह स्वयं न समझती होगी। सुमित्रा ने कहा था—'कार किसी बेगाने की तो है नहीं।' इस बात को लेकर प्रफुल्ल कितना प्रफुल्लित हो उठा है, इसे सुमित्रा शायद कभी न समझ सकेगी। मिठाई खिलानेवाला स्वयं यह नहीं समझ सकता कि खानेवाले को वह कितनी रुच सकी।

सुमित्रा की इस बात को प्रफुल्ल जाने कितनी बार मन-ही-मन दोहरा चुका है। प्रत्येक बार इस बात को दोहराते समय प्रफुल्ल एक अप्रकट प्रसन्नता से भर उठता है। उसने स्वीकार किया कि सुमित्रा निश्चय ही उसे अपनत्त्व की परिधि में घेर रही है। यदि प्रफुल्ल के प्रति सुमित्रा के

हृदय में आत्मीयता न होती, आकर्षण न होता और सहानुभूति न होती, तो आत्मीयता से ओतप्रोत यह अभिव्यक्ति सर्वथा असम्भव रहती।

प्रफुल्ल की आन्तरिक प्रसन्नता की लहरों में एक ज्वार आ गया। उसे आशा होने लगी कि सुमित्रा के साथ उसके जीवन का शुष्क अध्याय सरसता का स्पर्श करने में सम्भवतः सफल हो सकेगा।' 'सम्भवतः' शब्द पर उसने मन-ही-मन कुछ जोर दिया। इस जोर देने की भावना में एक प्रश्न-चिह्न लगा हुआ था! यह प्रश्नचिह्न सुमित्रा स्वयं आज के सम्भाषण के सिलसिले में लगा गई है। जब प्रफुल्ल ने कहा था—'आप जब चाहें पूरी नारी हो सकती हैं' तब न केवल सुमित्रा के गालों पर दमक उठनेवाली लाली अप्रत्याशित रूप में गहरी हो उठी थी, प्रत्युत उसने एक कटु सत्य कह डाला था, जिसका विश्लेषण कर प्रफुल्ल अभी अपनी आकांक्षा के पूरा हो जाने का विश्वास नहीं कर सकता। उसने साफ कह दिया था—'जिस परिणय को आप इतना सरल समझते हैं—आप ही नहीं, आम तौर पर सारा पुरुष-वर्ग एक खेल समझता है, वह नारी के लिए खेल नहीं, बल्कि जीवन-मरण का सौदा होता है।'

जीवन-मरण का सौदा? प्रफुल्ल ने स्वीकार किया कि सुमित्रा ने बात तो बावन तोले पाव रत्ती ठीक कही है। दो जीवन-सूत्र जब किसी एक माला के मनके बनकर परस्पर गुम्फित होते हैं, तब उनका पृथक्करण सहज-सम्भव नहीं रह जाता। परन्तु प्रफुल्ल को लगा कि आम तौर पर जो विवाह होते हैं, उनमें कौन इतनी गहराई तक जाता है और इतना विचार-विमर्ष करता है? लेकिन उसी क्षण प्रफुल्ल के विवेक ने उसे झकझोर दिया—'आम तौर पर कोई इतनी गहराई तक नहीं जाता, तो क्या सुमित्रा भी परिणय-जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय पर कोई विचार-विमर्ष न करे—गहराई में न उतरे?'

प्रफुल्ल को अपने-आप पर हँसी आ गई। उसे लगा कि यह सब आखिर वह क्या सोच रहा है और क्यों सोच रहा है? सुमित्रा ने जो बात कही है,

वह आम तौर पर परिणय के सम्बन्ध में पुरुष-वर्ग की धारणा सूचित करनेवाली है। फिर जो-कुछ उसने कहा है, उसमें कहीं कोई अतिरंजित अथवा एकांगी आक्षेप भी नहीं है।

फिर, प्रफुल्ल को सहसा ऐसी व्यक्तिगत बात भी तो नहीं करनी थी। माना कि बात सर्वथा अप्रासंगिक नहीं थी। सुमित्रा ने जब स्वयं को अधूरी नारी कहा था, तभी प्रफुल्ल ने परिणय की बात करते हुए कह दिया था कि यह तो आपके हाथ की बात है। आप जब चाहें, पूरी नारी हो सकती हैं। हो सकता है, सुमित्रा ने यही समझ लिया हो कि मैं अपने साथ ही उसके परिणय का प्रस्ताव इस रूप में रख रहा हूँ। परन्तु इसमें बुराई क्या है ? सुमित्रा यदि यही समझ चुकी हो, तो प्रफुल्ल इसे अपने लिए अच्छा ही समझता है। आज नहीं तो कल, जब उसे यह प्रस्ताव उसके सामने रखना ही है, तब इस प्रकार प्रसंगानुसार परोक्ष रूप में लक्ष्यबेध करनेवाली अभिव्यक्ति को निषिद्ध क्यों समझा जाए ?

प्रफुल्ल जब सुमित्रा की बातों के विश्लेषण में इस प्रकार उलझा हुआ था, तभी नौकर ने आकर कहा—'नागरजी आए हैं, सरकार !'

लेकिन सरकार थे कि उनका ध्यान भङ्ग नहीं हुआ।

नौकर ने कुछ और निकट पहुँच, तनिक तेज स्वर में दोहराया—'नागरजी आए हैं, सरकार !'

अब कहीं प्रफुल्लजी की समाधि भङ्ग हुई; सो भी नौकर की बात शायद वह पूरी तरह नहीं सुन सके। इसीलिए कुछ प्रकृतिस्थ होते हुए पूछा —'क्या बात है, भोला ?'

भोला को हँसी आ रही थी; परन्तु उसने आती हुई हँसी को सयत्न दबाते हुए तीसरी बार नागरजी के आने की बात कह दी। भोला को हँसी आने का कारण था : उसने आज तक कभी अपने स्वामी—प्रफुल्ल—को इस प्रकार ध्यानस्थ नहीं देखा। सदा उन्हें सजग-सतर्क ही पाया है। इसीलिए अपने मालिक को इस प्रकार ध्यानस्थ देख, उसे हँसी आ रही थी। परन्तु प्रफुल्ल

की ऐसी मनोदशा का कारण, बहुत चेष्टा करने पर भी भोला समझ नहीं सका। उसे समझने का अवसर भी नहीं मिला। आगन्तुक से उसके मालिक की जो घनिष्ठता है, उसे भोला अच्छी तरह जानता है। यह कभी हो नहीं सकता कि नागरजी इस हवेली में आकर प्रफुल्ल से बिना भेंट किए वापस चले जाएँ। उनका नाम सुनते ही प्रफुल्ल मानो उछल पड़ता है। इस दशा में भोला को एक ओर यह चिन्ता थी कि नागरजी को व्यर्थ ही प्रतीक्षा करनी पड़ रही होगी, और दूसरी ओर उसे अपने मालिक की इस परिवर्तित मनोदशा का कारण जानने की भी चिन्ता बढ़ रही थी। इसी उलझन में वह समझ नहीं सका कि उसके मालिक आज इस प्रकार क्यों ध्यानस्थ हैं।

भोला की बात सुन, प्रफुल्ल ने कहा—'बहुत अच्छा हुआ कि नागर आ गए। इस समय मुझे उनकी ही जरूरत थी।'

'सरकार ने हुक्म दिया होता, तो.... !'

'हुक्म!' प्रफुल्ल ने कहा और मन-ही-मन सोचा कि पहले से क्या मैं जानता था कि सुमित्रा की भेंट के बाद उसकी बातों को लेकर मैं इतना उलझ जाऊँगा और नागर-जैसे अभिन्न मित्र की उपस्थिति आवश्यक समझने लगूँगा।

'हाँ, सरकार!' भोला ने फिर अपने मालिक को मौन देखकर कहा—'आपने हुक्म दिया होता, तो मैं उन्हें कभी का बुला लाया होता।'

'ओह! मैं फिर... !' प्रफुल्ल ने एक क्षण रुककर कहा—'फिर कुछ सोचने लगा, भोला! हाँ, तुम जाओ और नागर को फौरन ले आओ।'

'जो हुक्म, सरकार!' कहकर भोला बाहर चला गया।

—१६—

बैठक में नागर के पहुँचते ही, प्रफुल्ल ने आरामकुर्सी से उठते हुए कहा—'बड़ी उम्र है तुम्हारी, नागर। मैं तुम्हारी ही याद कर रहा था।'

'क्या बात है, भाई ?' नागर ने प्रफुल्ल के निकट आकर एक कुर्सी पर बैठते हुए पूछा—'आखिर मेरी याद करने की क्या आवश्यकता आ पड़ी इस समय ?'

'यह सब अभी बतलाऊँगा।' प्रफुल्ल ने पुनः आरामकुर्सी पर बैठकर सिगरेट-केस नागर की तरफ बढ़ाते हुए कहा—'बस, यही समझ लो कि इस समय मुझे तुम्हारी बड़ी जरूरत थी।'

'मालूम पड़ता है, आज आप किसी गहरी उलझन में हैं।' नागर ने ध्यानपूर्वक प्रफुल्ल की मुद्रा को देखते हुए कहा।

नागर से उम्र में प्रफुल्ल बड़ा है, इसलिए वह अपने बड़े भाई की भाँति ही प्रफुल्ल का आदर करता है। फिर आर्थिक स्थिति का जहाँ तक सम्बन्ध है, प्रफुल्ल बहुत ऊँचे स्तर पर है। यह तो प्रफुल्ल का सौजन्य है कि सहपाठी के नाते वह निर्मल नागर को अब तक अपनत्त्व की परिधि में घेरे हुए है। कोई दूसरा धनिक-पुत्र होता, तो कभी का किनारा काट चुका होता। परन्तु प्रफुल्ल है कि नागर के किसी भी सार्वजनिक प्रस्ताव पर, बिना उसकी गहराई में उतरे ही, हाथ खोलकर क्रियात्मक सहयोग देता रहता है। इसी गान्धी महिला-विद्यालय की स्थापना के समय निर्मल ने जब जैसा कहा, प्रफुल्ल ने वही किया। यह बात दूसरी है कि सार्वजनकि मंच पर जाकर यशार्जन

करने की लालसा से भी प्रफुल्ल मुक्त नहीं है। फिर भी निर्मलकुमार नागर को अपने छोटे भाई की भाँति मानने और उसके प्रस्ताव पर हजारों की थैलियाँ खोल देने में प्रफुल्ल की सरलता और नागर के प्रति उसकी आत्मीयता ही उल्लेखनीय कही जाएगी।

प्रफुल्ल से अपनी बात का कोई उत्तर न पाकर, नागर ने दो-एक क्षण मौन रहकर फिर पूछा—'बताइए न, आज किस उलझन में हैं आप?'

प्रफुल्ल ने कुछ चौंकते हुए कहा—'उलझन!' फिर एक क्षण रुककर कुछ सोचते हुए कहा—'हाँ, मैं एक उलझन में ही आज पड़ गया हूँ।'

'आखिर सुनूँ तो वह क्या है?' नागर ने सिगरेट सुलगाकर उसका एक गहरा कश खींचते हुए कहा।

'खैर, उलझन तो मैं बतलाऊँगा ही!' प्रफुल्ल ने कुछ प्रकृतिस्थ होते हुए कहा—'पहले तुम यह बतलाओ कि आजकल विस्थापित नारियों और कुमारियों से हमारे देशवासी जो विवाह कर रहे हैं, उसे तुम कहाँ तक उचित समझते हो?'

'आद्योपान्त स्तुत्य!'

'क्यों?'

'इसलिए कि जो विधवाएँ अथवा कुमारियाँ दुर्दिन की मारी हैं, उन्हें जीवन की सुविधाएँ प्रदान करना मानवता का बहुत बड़ा आदर्श है।'

'दुर्दिन की मारी!' प्रफुल्ल ने धीमे स्वर में दोहराया और चुप हो गया। उसे स्मरण आया कि आज सम्भाषण के सिलसिले में स्वयं उसने इन्हीं शब्दों का प्रयोग सुमित्रा के लिए किया था।

'आप चुप क्यों हो गए, प्रफुल्लजी?' नागर ने प्रफुल्ल को फिर छेड़ दिया—'दुर्दिन की मारी कौन? आज आप बात-बात में पहेली-सी क्यों बुझा रहे हैं? आखिर अपने मन की परेशानी और उलझन इस प्रकार छिपाकर अपने-आप अकेले ही क्यों घुल रहे हैं?'

'नहीं, नागर! मैं अपनी उलझन और परेशानी म अकेला ही नहीं घुलना चाहता। तुम्हें भी मेरे साथ घुलना होगा—परेशान होना होगा।'

'तो मैं कब अस्वीकार करता हूँ?' नागर ने सहानुभूति के स्वर में कहा—"मैं स्वयं नहीं चाहता कि आप इस प्रकार घुलते रहें। बताइए न, आप कहना क्या चाहते हैं?'

'बतलाता हूँ, नागर!' प्रफुल्ल ने अपना अधजला सिगरेट ऐश-ट्रे में छोड़ते हुए कहा—'तुमने बिलकुल ठीक कहा है कि जो विस्थापित विधवाएँ अथवा कुमारियाँ दुर्दिन की मारी हैं, उन्हें जीवन की सुविधाएँ प्रदान करना मानवता का बहुत बड़ा आदर्श है। लेकिन जो लोग ऐसी नारियों अथवा कुमारियों के साथ विवाह कर रहे हैं, वे मानवता का आदर्श उपस्थित करने की भावना से नहीं, बल्कि अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ही बहती गंगा में हाथ धो रहे हैं।'

'कौन, किस उद्देश्य से, क्या कर रहा है, इसका लेखा-जोखा रखना न तो सम्भव है, न आवश्यक।' नागर ने गम्भीर होते हुए कहा—'परन्तु मानव-कल्याण की दृष्टि से देखा जाए, तो इस कार्य को हमें मानवता का आदर्श ही स्वीकार करना पड़ेगा। कारण, नारियों अथवा कुमारियों की हमारे यहाँ कोई कमी तो हैं नहीं, जो विस्थापित और विवश-विपन्न नारियों अथवा कुमारियों से विवाह करने में यहाँ के पुरुष-वर्ग का स्वार्थ सिद्ध होता हो।'

'तुम अभी मेरा आशय नहीं समझे, नागर!' प्रफुल्ल ने आरामकुर्सी से उठकर कमरे में चहलकदमी करते हुए कहा—'मैं यह कह रहा था कि 'खाओ-पियो और मौज उड़ाओ' के अनुसार जीवन बितानेवालों की आज कमी नहीं है। दुर्दिन की मारी इन नारियों और कुमारियों को खिलौना समझ, कुछ दिनों तक अपने पास रखना और दूध की मक्खी की तरह फेंक देना ऐसे लोगों के लिए साधारण-सी बात है। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है।'

'प्रत्येक बात के दो पहलू होते हैं, भाई साहब!' नागर ने कहा—'जो लोग ऐसा करते हैं, वे मानवता के प्रति विश्वासघात करते हैं।'

'अच्छा, विश्वासघात करनेवालों की बात अब हम न करेंगे। हाँ, हमारे गान्धी महिला-विद्यालय की आचार्या सुमित्राजी भी तो विस्थापित कुमारी हैं और दुर्दिन की मारी भी हैं बेचारी।' प्रफुल्ल ने अब अपनी बात प्रारम्भ करने की चेष्टा की।

'यह तो मैं उनकी नियुक्ति के समय ही आपको बतला चुका हूँ।' नागर ने कहा—'वह और मेरी पत्नी तो सहोदरा बहिनों की भाँति एक-दूसरे को मानती हैं। ये दोनों एक ही नगर की हैं।'

'ओह! अब समझा!' प्रफुल्ल को कुछ हँसी आ गई।

'क्या समझे, भाई साहब?'

'यही कि सुमित्राजी आपकी साली हैं।' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा—'साली का सम्बन्ध भी इस दुनिया में एक ही है!'

'मालूम होता है, आज आप गहरी तरंग में हैं।' नागर के ओठों पर भी मुसकराहट नाच उठी।

'तरङ्ग और मस्ती के बिना मानव की जिन्दगी छोटी हो जाती है, उसका जीवन निरानन्द हो जाता है, नागर!' प्रफुल्ल ने प्रसन्न मुद्रा से कहा—'जहाँ तक बने, इसीलिए हमें प्रसन्न और मस्त रहना चाहिए।'

'लेकिन यह सदा सम्भव नहीं, भाई साहब! दुनिया की परेशानियाँ औसत मानव की प्रसन्नता और मस्ती को छीन लेती हैं। हाँ, आप-जैसे कुछ भाग्यशाली निश्चय ही प्रसन्न और मस्त रह सकते हैं।'

'तो शायद भाग्यशाली से तुम्हारा मतलब धन-पैसे से है, नागर!' प्रफुल्ल ने गम्भीर होते हुए कहा—'लेकिन पैसा किसी को प्रसन्नता और मस्ती नहीं दे सकता।'

'मैं आपकी इस बात से सहमत नहीं।'

'क्यों?

'इसलिए कि भौतिक चकाचौंध के आधुनिक युग में धन-पैसा हो वह शक्ति है, जो मानव को दुनिया के सभी सुख जुटा देता है। मन उदास हुआ, तो पैसे के सहारे धनिक व्यक्ति मनोरंजन के पचासों मार्ग खोज सकता है और उदासी को दूर भगा सकता है। अस्वस्थ हुआ, तो पैसे लुटाकर महँगे-से-महँगा उपचार कर पुनः स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है। परन्तु जिसके पास पैसा नहीं, वह बेचारा इन सब बातों को आकाश-कुसुम ही समझता है, और अपने भाग्य को सदा कोसता रहता है।'

'ओहो!' प्रफुल्ल ने विद्रूप के स्वर में कहा—'तो यह भी कह डालो नागर कि पैसेवाले मृत्यु को भी जीत सकते हैं और सदा इस संसार के रंगमंच पर अपना अभिनय कर सकते हैं।'

'एक मृत्यु-विजय को छोड़कर बाकी सब कुछ कर सकता है पैसेवाला।' नागर ने कहा—'यश, प्रतिष्ठा, क्या नहीं मिल जाता पैसे के बल पर?'

'भाई मेरे, तुम बड़ी गलत-सी बात कह रहे हो।' प्रफुल्ल ने कहा—'पैसे-वाले की आत्मा से पूछो कि तुम्हारी बातें कहाँ तक ठीक हैं। तुम जानते ही हो, पैसे की मुझे कोई कमी नहीं। मान-सम्मान की भी कमी नहीं। परन्तु क्या तुम यह समझते हो कि मैं पैसों को देखकर सदा प्रसन्न और मस्त रहा करता हूँ? यदि तुम ऐसा समझते हो, तो मैं फिर कहूँगा कि बहुत गलत समझ रहे हो। पैसे का विचार आते ही मैं सदा निन्नयानबे के फेर में पड़ जाता हूँ और भूख-नींद-जैसी आवश्यक बातें भी भूल जाता हूँ। पैसों के सहारे मनुष्य चन्द घण्टों या अल्प काल के लिए भले ही मनोरंजन के उपादान जुटा ले, मस्ती की लहरों पर बह ले; परन्तु आन्तरिक सुख और आनन्द का वह स्पर्श भी नहीं कर सकता।' फिर एक क्षण रुककर प्रफुल्ल ने कहा—'मेरी स्वर्गीया पत्नी शैल संस्कृत पढ़ी-लिखी थी। धन के संबंध में वह एक सुन्दर श्लोक सुनाया करती थी :

जगल्लुब्धा धनमयं कामुकाः कामिनीमयम्।
नारायणमयं धीराः पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥

'इस श्लोक को मैं कभी भूल नहीं सकता, नागर ! तुम भी इसे याद कर लो, तो धन को सर्वोपरि कभी न समझोगे।'

'लेकिन मैं संस्कृत का ज्ञाता नहीं हूँ।' नागर ने कहा—'इसका अर्थ भी मुझे समझा दीजिए न !'

'ओह ! मैं यह बात भूल ही गया था। इस श्लोक का अर्थ है कि धन ही जिसका ध्येय है, वह जगत् भर को धन-संग्रह का साधन समझता है। दूसरे शब्दों में यह कह लें कि शोषण-वृत्ति उसमें घर कर लेती है और धनार्जन के अतिरिक्त उसका दूसरा कोई उद्देश्य ही नहीं रह जाता। इसी तरह कामी पुरुष जगत् को स्त्री-प्राप्ति के साधन-रूप में देखता है। परन्तु धीर साधक व्यक्ति ईश्वर-प्राप्ति को जीवन का ध्येय बनाता है, अतः वह ज्ञान की आँखों से जगत् को नारायण-रूप में देखता है। इसीलिए मैं इस धन को जीवन का साध्य—ध्येय—नहीं मानता।'

'हो सकता है', नागर ने कहा—'इसका यही कारण हो कि मेरे पास आपके बराबर धन-सम्पत्ति नहीं, इसीलिए मैं ऐसा समझ रहा हूँ।'

'बिलकुल यही बात है, नागर ! अपनी स्थिति से किसी भी मानव को सन्तोष नहीं रहता, और यही हमारे दुःख का मूल कारण है। इसीलिए मैंने कहा था कि जहाँ तक हो सके, हमें प्रसन्न और मस्त रहना चाहिए।'

'अब समझा !' नागर ने कहा—'इसीलिए आप साली का प्रसंग आते ही मस्ती की लहरों पर बहने लगे थे।'

'हाँ भाई !' प्रफुल्ल ने कहा—'लेकिन तुम जाने कहाँ से कहाँ बहा ले गए मुझे ! मैं कह रहा था, साली का सम्बन्ध इस संसार में बड़ा ही मधुर है। फिर सुमित्रा-जैसी कुमारी जिसकी साली हो, उसके भाग्य पर किसे ईर्ष्या न होगी ?'

'तब हम दोनों बराबर हो गए !' नागर ने कहा—'आप कुबेर-जैसी सम्पत्ति के स्वामी हैं और मैं सुमित्रा-जैसी रूप-परी और शिक्षिता साली का जीजा। मैं आपसे ईर्ष्या करूँ और आप मुझसे !'

'अच्छा, अब इस मजाक को छोड़, हम कुछ काम की बातें करें, नागर!' एक क्षण रुककर प्रफुल्ल ने कहा—'मैं सोचता हूँ, यदि दुर्दिन की मारी सुमित्राजी जात-पाँत का बन्धन तोड़कर विवाहित जीवन बिताने की इच्छुक हों, तो मैं......।' कहते-कहते प्रफुल्ल रुक गया।

'तो आप उसके साथ विवाह करने को तैयार हैं?' नागर ने उत्सुकता के साथ पूछा।

'हाँ, नागर! तुम जानते हो, मेरी पत्नी का निधन हो जाने से मेरा जीवन एकदम मरुस्थल-सा हो उठा है। मुझे यह घर मानो काटने को दौड़ता है। यदि शैल अपने प्राणों का प्रतिबिम्ब—पुत्र—न छोड़ जाती, तो सम्भवतः कलकत्ते से मैं यहाँ कभी आता ही नहीं।'

'मैं यह सब जानता हूँ, भाई साहब!' नागर ने कहा—'और मैं समझता हूँ, आपका यह प्रस्ताव सुमित्रा के लिए स्वर्ण-संयोग सिद्ध होगा।'

'यह अभी नहीं कहा जा सकता।' प्रफुल्ल ने धीमे स्वर में गम्भीर मुद्रा से कहा।

'आप कहें तो मैं इसका पता लगा सकता हूँ।'

'मैं जानता हूँ कि तुम अपनी पत्नी के द्वारा यह पता सहज ही लगा सकते हो, नागर। परन्तु इस मामले में मैं स्वयं आगे बढ़ना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ, यही मार्ग ठीक होगा। तुम्हारी क्या सम्मति है?'

'यह अधिक ठीक होगा, बशर्त्ते कि सुमित्रा इस संबंध में खुलकर बात करे। यों वह इतनी आधुनिका है कि उसे दूसरी कुमारियों की तरह झिझक नहीं होनी चाहिए।'

'तब ठीक है!' प्रफुल्ल ने कहा—'और अब मैं बतलाऊँ, आज क्यों मैं तुम्हारी याद कर रहा था? बस, इसी मामले में मुझे तुम्हारी सम्मति लेनी थी।' फिर एक क्षण रुककर प्रफुल्ल ने अपने नौकर को आवाज दी—'भोला!'

आवाज सुनते ही भोला हाँफता हुआ आ पहुँचा। कहा—'आज्ञा, मालिक ?'

'अरे, चाय-नाश्ता नहीं लाओगे आज ? यह नागर कब से बैठे हैं !'

'तैयार है, मालिक ! बस, आपके हुक्म की राह देख रहा था।'

'अच्छा, तो ले आ !'

'जी, सरकार !' कहकर भोला चला गया।

'तो मेरी सम्मति लेकर अब रसगुल्ले खिलाए जा रहे हैं ?' नागर ने कहा —'जो कहीं, यह सम्मत्ति आपके विरोध में दी जाती, तो शायद....।'

'चाय और रसगुल्ले हरगिज न मिलते !' मुसकराते हुए प्रफुल्ल ने कहा— 'यही न, नागर ! लेकिन यह क्यों भूल जाते हो कि सम्मति-असम्मति के परे भी तुम्हारा जो अधिकार और स्नेह मुझ पर है, वह तुम्हें कभी चाय और रसगुल्लों से वंचित नहीं रख सकता।'

'लीजिए, अब आप मस्ती की लहरों से हटकर गम्भीरता के तट पर जा खड़े हुए।' नागर ने कहा—'मैं तो आपके ही उपदेश पर मस्ती और तरंग का स्पर्श करने की चेष्टा कर रहा था।'

अब तक भोला चाय का ट्रे लेकर आ पहुँचा था और एक छोटी मेज पर चाय-नाश्ता सजाकर रखने लगा था।

'तब मुझे कुछ नहीं कहना है, नागर।' प्रफुल्ल ने कहा—'मस्ती और तरंग का स्पर्श तुम अधिक-से-अधिक किया करो। अच्छा, चलो, चाय पिएँ।'

'चलिए।' कहकर नागर भी प्रफुल्ल के साथ चाय की मेज की तरफ बढ़ गया।

चाय पीते हुए प्रफुल्ल ने पूछा—'यह सब तो हुआ, नागर; लेकिन आज तुम किसी विशेष कार्य से तो नहीं आए थे ? मेरा मतलब यह कि अब तक तो मेरा ही चर्चा चलता रहा। परन्तु अब तुम अपनी बात निःसंकोच कह सकते हो।'

'यों ही चला आया था।' नागर ने रसगुल्ले खाते हुए कहा—'कोई विशेष काम नहीं था। सोचा, आपसे मिलकर कुछ गपशप कर लूँ, नहीं तो आप दो-एक दिन में कलकत्ते...।'

'नहीं नागर! इस बार इतनी जल्दी कलकत्ते नहीं जा रहा हूँ। दो-एक सप्ताह इस बार यहाँ ठहरने का इरादा है।'

'मैं भी क्या कह बैठा!' नागर ने कहा—'जब सुमित्राजी से आप परिणय-प्रस्ताव करनेवाले हैं, तब कुछ सप्ताह यहाँ ठहरना ही होगा।'

'लेकिन एक बात है, नागर। अभी हाल तुम यह बात किसी से न कहना।'

'मुझे क्या आवश्यकता है किसी से कहने की!'

'अपनी पत्नी से भी नहीं कहोगे?'

'यह वादा करना तनिक कठिन है।'

'वादा मैं स्वयं नहीं कराना चाहता। कारण, पति-पत्नी के बीच दुनिया की कोई भी बात साधारणतः छिपी नहीं रहती।' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा।

'लेकिन मेरी पत्नी—नलिनी—से आपको इस संबंध में किसी प्रकार की हानि की आशंका नहीं करनी चाहिए।'

'ओहो! मैं क्या जानता नहीं यह सब!' प्रफुल्ल ने कहा—'बल्कि मेरा लाभ ही हो जाएगा कुछ।'

इसी बीच नौकर ने आकर खबर दी कि डाक्टर राय आए हैं और प्रफुल्लजी से भेट करना चाहते हैं। प्रफुल्ल ने नौकर से कहा—'उन्हें सिगरेट पिलाओ तब तक, और कहो कि मैं अभी बाहरी बैठक में आ रहा हूँ।'

चाय-नाश्ता लगभग समाप्त हो चुका था। फिर भी प्रफुल्ल ने कहा—'नागर, तुम अभी और रसगुल्ले खाओ और यहीं बैठो। मैं डाक्टर राय से बात करके अभी आता हूँ।'

'नहीं, भाई साहब!' नागर ने कहा—'अब आप आज्ञा दें, तो मैं भी जाना चाहता हूँ। काफी समय बैठ चुका और रसगुल्ले भी जी भरकर खा चुका।'

'मुझे कोई आपत्ति नहीं!' प्रफुल्ल ने सिगरेट-केस नागर की तरफ बढ़ाते हुए कहा—'तुम जा सकते हो।'

नागर ने एक सिगरेट सुलगाया और अभिवादन कर अपने घर की राह ली।

—१७—

प्रफुल्ल से बिदा लेकर नागर जब अपने घर की ओर एक रिक्शे पर बढ़े जा रहे थे, तब सहसा उन्हें लगा कि डिप्टी कलैक्टर सिनहा साहब से भी क्यों न आज भेट कर ली जाए। कई दिनों से उनसे भेट नहीं हुई। रास्ते में ही उनका बँगला पड़ता है। वह बड़े ही मिलनसार और मृदुभाषी हैं। रजनी और लता में बड़ी घनिष्ठता है। दोनों एक-दूसरे के यहाँ बहुधा चली जाती हैं।

सिनहा साहब के बँगले के निकट जब रिक्शा पहुँचा, तो नागर ने रिक्शे-वाले से कहा—'सामने के पीले बँगले में मुझे छोड़ दो, रिक्शेवाले।'

'अच्छा, सरकार!' कहते हुए रिक्शेवाले ने सामने के बँगले में जाने के लिए रिक्शा मोड़ दिया।

सिनहा साहब ने अपने बँगले के सामने जो छोटा-सा उपवन गुलजार कर रक्खा है, उसे प्रभात-वेला की सुनहरी सूर्य्य-रश्मियों और सान्ध्य बेला की पीली-पीली निष्प्रभ होती धूप में नागर कई बार देख चुके हैं। बड़ी सुरुचि के साथ सिनहा साहब ने इस उपवन में देशी-विदेशी फूलों के पौधे और लताएँ लगा रक्खी हैं।

इस समय क्षीण चाँदनी के झीने-से आँचल ने इस उपवन को ही नहीं, समस्त वसुन्धरा को मानो छिपा रक्खा था। इस दशा में उपवन का नेत्र-रंजक सौन्दर्य-पान करने में तो नागर असमर्थ रहे; परन्तु बाहरी फाटक के भीतर रिक्शे के प्रवेश करते ही, रजनीगन्धा की मादक सुगन्ध से नागर के

मन-प्राण एक अनोखी मस्ती से मस्त होकर अनायास झूम उठे।

बँगले के बाहरी बरामदे के निकट पहुँच, नागर ने रिक्शे से उतरकर रिक्शेवाले को छः आने देकर बिदा कर दिया।

बरामदे में बैठे हुए नौकर ने, नागर को देखते ही पहचान लिया। झुककर अभिवादन करते हुए कहा—'साहब को मैं अभी खबर देता हूँ, हुजूर! आप आराम से बैठिए।' और बरामदे में पड़ी कुर्सियों की ओर संकेत कर वह भीतर चला गया।

दो-तीन मिनट के भीतर ही नौकर ने आकर नागर को खबर दी—'साहब आपको बुला रहे हैं।'

नौकर के संकेत पर नागर उसके साथ सिनहा साहब के बैठकखाने की ओर बढ़ गए। दरवाजे पर पड़े हलके नीले रङ्ग के पर्दे को नौकर ने एक हाथ से तनिक सिकोड़ दिया और नागर ने भीतर प्रवेश किया।

सिनहा साहब ने कुर्सी से उठते हुए सोल्लास कहा—'आइए नागरजी, जयहिन्द!'

'जयहिन्द!' दोनों हाथ जोड़ते हुए नागरने कहा—'आपके आराम में दखल देने के लिए पहले ही क्षमा माँग लूँ।'

'यह लखनवी तकल्लुफ रहने दीजिए!' सिनहा साहब ने मुसकराते हुए कहा—'यह बताइए, इस समय कहाँ से आ रहे हैं?'

'प्रफुल्लजी की कोठी से लौटते हुए घर जा रहा था। सोचा, बहुत दिनों से आपसे भेंट नहीं की, मिलता चलूँ।'

'इधर तो सचमुच बहुत दिनों से आपने दर्शन नहीं दिए। इस बीच दो-एक बार मैं आपके कुशल समाचार रजनी से पूछ चुका हूँ।' कुछ क्षण रुककर सिनहा साहब ने तनिक जोर से पुकारा—'रजनी!'

'इस समय रजनी बेटी पढ़ रही होगी!' नागर ने कहा—'क्यों उसे बुला रहे हैं?'

सिनहा साहब कोई उत्तर दें कि बगल के कमरे से रजनी बैठक में आ पहुँची। सामने नागरजी को देखा, तो एक क्षण के लिए हरिणी-सी चौंक उठी, फिर दोनों हाथ जोड़, अभिवादन करते हुए कहा—'ओह! नागर चाचा आए हैं।'

'हाँ, बेटी!' नागरजी ने कहा—'बहुत दिनों से नहीं आ सका था, इसीलिए चला आया।'

'आखिर इस कैफियत की जरूरत ही क्या है?' सिनहा साहब ने कहा। फिर रजनी की ओर दृष्टिनिक्षेप करते हुए कहा—'नागर चाचा के लिए चाय तैयार कराओ, बेटी!'

'न बेटी!' नागर ने तत्काल टोक दिया—'मैं इस समय प्रफुल्लजी के यहाँ से आ रहा हूँ। चाय बहुत पी चुका हूँ। नाश्ता भी कर चुका हूँ। पेट के साथ अब अन्याय नहीं करना चाहता। केवल पान के बीड़े भेजवा दो, बस!'

'मेरे यहाँ आकर आप बिना चाय पिए न जा सकेंगे।' रजनी ने स्नेह-सिक्त आग्रह से मुसकराते हुए कहा—'मेरी सहेली लता कभी मुझे बिना चाय-नाश्ते के नहीं आने देती।'

'तो लता को तुम भी बिना चाय-नाश्ते के कभी न जाने दिया करो।' नागर ने भी मुसकराते हुए कहा।

'नहीं, आपको भी मैं बिना चाय-नाश्ते के न जाने दूँगी। मैं अभी ला रही हूँ।' और रजनी तेज पगों से भीतर चली गई।

'बड़ी चतुर है, यह रजनी!' नागर ने सिनहा साहब से कहा—'कितनी आत्मीयता से ओतप्रोत है इसका व्यवहार। जब कभी लता के साथ मेरे घर पहुँचती है और मुझसे बात करती है, तब मुझे लगता है, मानो लता ही रजनी के रूप में बोल रही है। काश! ये दोनों लड़कियाँ पुत्र होतीं!'

'तब इनसे हमें यह आत्मीयता शायद न मिलती।' सिनहा साहब ने गम्भीर होते हुए कहा—'आजकल घर-घर पुत्रों की उच्छृङ्खलता

और माँ-बाप के प्रति उनकी उद्दण्डता ऐसा विकट रूप दिखला रही है कि मैं रजनी-जैसी पुत्री पाकर स्वयं को बड़ा सौभाग्यशाली समझ रहा हूं। और,यही बात मैं आपके लिए भी कहना चाहता हूँ कि लता-जैसी पुत्री पाकर आपको पुत्र के अभाव की बात कभी स्वप्न में भी नहीं सोचनी चाहिए।'

'मैं एक बात कहना चाहता हूँ, सिनहा साहब!' नागर ने कहा—'युग बदल चुका है और युग के साथ संसार की मान्यताएँ भी तेजी से बदल रही हैं। मैं समझता हूँ, जिन पुत्रों की बात आप कह रहे हैं, उनके माता-पिता पुराणपंथी होंगे और युग के साथ अपनी सन्तान के व्यवहारों को सहन करने के आदी न होंगे?'

'नहीं, नागरजी!' सिनहा साहब ने सिगरेट-केस नागर की ओर बढ़ाते हुए कहा—'मैं यह बात नहीं मानता। यदि मैं दो-चार घरों की बात कहता, तो आप यह तर्क पेश कर सकते थे। परन्तु आपने मेरे शब्दों पर शायद ध्यान नहीं दिया। मैंने कहा है, घर-घर ऐसा हो रहा है। मैं कहता हूँ, दो-चार माँ-बाप दकियानूसी हो सकते हैं; लेकिन सभी पुराणपंथी हैं, इसे मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता।'

'मालूम पड़ता है, इधर कोई जबरदस्त घटना आपने अत्यन्त निकट से देखी है और उससे प्रभावित हो चुके हैं।'

'हाँ, भाई!' सिनहा साहब ने अपना सिगरेट सुलगाते हुए कहा—'पण्डित देवदत्त शर्मा को तो आप जानते हैं न!'

'क्यों नहीं!' नागरजी ने भी अपना सिगरेट सुलगाया और उसका जोरों का कश लेते हुए कहा—'वही न, जिन्होंने गत वर्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र के विवाहोपलक्ष्य में शानदार प्रीतिभोज में हम लोगों को आमंत्रित किया था?'

'हाँ-हाँ, बिलकुल वही!' सिनहा साहब ने कहा—'शर्माजी 'त्रिवेणी' जैसी सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका के प्रख्यात सम्पादक हैं। सुलझे हुए विचारों के और अत्यन्त उदार प्रकृति के हैं!'

'इस वर्ष उनका वह पुत्र प्रयाग विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में

बी० ए० की परीक्षा भी तो उत्तीर्ण कर चुका है।' नागर ने कहा।

'यह कहिए कि ससम्मान बी० ए० हुआ है। संस्कृत में उसका स्थान विश्व-विद्यालय में शीर्ष रहा। समावर्त्तन-संस्कार में उसे इसके उपलक्ष्य में रजत-पदक प्रदान किया जाएगा।' सिनहा साहब ने सिगरेट की राख 'ऐश-ट्रे' में गिराते हुए कहा—'लेकिन आप जानते न होंगे, इसी लड़के ने अपने माँ-बाप से विद्रोह कर दिया है।'

'विद्रोह!' नागरजी ने साश्चर्य दोहराया। मानो उन्हें इस कथन की सत्यता पर विश्वास नहीं हुआ।

'हाँ भाई, विद्रोह!' सिनहा साहब ने सिर हिलाते हुए कहा— 'क्यों जनाब, आपको अभी से आश्चर्य होने लगा। आप अपने तर्क पर दृढ़ रहिए और कह दीजिए कि युग के साथ शर्माजी न चल सके होंगे।'

'मैं जानता हूं, अपने इजलास में आप बड़े-बड़े वकीलों को निरुत्तर कर देते हैं। फिर भला, मेरी क्या हस्ती, जो आपके सामने किसी तर्क पर दृढ़ रह सकूं?'

'लेकिन यह इजलास नहीं है, नागरजी! यह तो घर में बैठे हुए दो मित्रों का सम्भाषण-मात्र है। इसीलिए मुझे आपके आश्चर्य पर इतना कहना पड़ा।'

'मेरे आश्चर्य का एक कारण है, सिनहा साहब!'

'वह क्या?'

'यह कि शर्माजी का लड़का मुझे कभी उद्दण्ड प्रतीत नहीं हुआ, फिर माँ-बाप से वह कैसे विद्रोह कर उठा!'

'ओफ्फ़ोह!' सिनहा साहब ने कहा और जोरों से हँस पड़े। हँसी शान्त होने पर बोले—'अजी, नई पत्नी का नशा इस दुनिया में क्या नहीं करा सकता!'

'आप ठीक कह रहे हैं। किते न औगुन हम किए, वय नय चढ़ती बार!' नागर ने गंभीर होते हुए कहा—'यह विद्रोह किस रूप में किया इस लड़के ने?'

'इस रूप में कि फर्स्ट क्लास ग्रेजुएट होते ही उसने माँ-बाप से पृथक् हो जाने की घोषणा कर दी। पिता से गर्मागर्म बातचीत ही नहीं, उनका अपमान भी कर बैठा। पास-पड़ोसवालों ने जी भरकर यह तमाशा देखा। लड़का अपनी पत्नी को लेकर, बीमार माँ की तनिक भी चिन्ता किए बिना,ससुराल चला गया।'

'एक बात है, सिनहा साहब!' नागरजी ने इस प्रसंग में दिलचस्पी लेते हुए कहा—'शर्माजी को मैं भी थोड़ा-बहुत जानता हूँ। जैसा आपने कहा है, वह उदार और सुलझे हुए विचारों के अवश्य हैं, परन्तु स्वाभिमानी भी बहुत बड़े हैं। क्रोध उनकी नाक पर बैठा रहता है। हो सकता है, यही क्रोध इस विद्रोह का कारण बन बैठा हो।'

'जो भी हो, परन्तु मैं स्वयं शर्माजी से इस बीच मिल चुका हूं। मुझे उन्होंने सारी कहानी सुना दी है। बेचारे शर्माजी जिन परिस्थितियों में अपने जीवन की साँसें ले रहे हैं, उन्हीं के कारण वे रुक्ष और चिड़चिड़े हो गए हैं। यही कारण है, उनका क्रोध बहुत जल्द भभक उठता है। कह रहे थे, जब से उन्होंने होश सँभाला है, अब तक संघर्षों का निरन्तर सामना कर रहे हैं। इस पुत्र के निर्माण में उन्होंने अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग लगा दिया। जब तक बारह वर्ष का यह लड़का नहीं हो गया, शर्माजी की कोई सन्तान जीवित नहीं रह सकी, अतः यही लड़का इकलौते बेटे के रूप में रहा। यद्यपि शर्माजी जानते थे कि इस लड़के की जन्मपत्री में ऐसे ग्रह पड़े हैं कि बारह वर्ष का जब तक यह न हो जायगा, तब तक इसके भाई-बहिन जीवित न रहेंगे, फिर भी इस लड़के को देख-देखकर वह सदा सन्तुष्ट रहे। इसके पालन-पोषण और शिक्षण में उन्होंने कभी कोई कमी नहीं आने दी। गत वर्ष इसका विवाह भी कर दिया। इस विवाह में न केवल रही-सही सारी पूँजी शर्माजी ने लगा दी, बल्कि पाँच-सात सौ रुपए का कर्ज भी उन्हें लेना पड़ा, जिसका भुगतान अब तक कर रहे हैं।'

'तो जहाँ लड़के का विवाह किया, वहाँ से कोई रकम नहीं मिली शर्माजी को?' नागर ने प्रश्न किया।

'रकम!' सिनहा साहब हँसने लगे, फिर बोले—'यहाँ भी शर्माजी की उदारता ने स्वयं उन्हें छला। जिस अध्यापक की पुत्री के साथ यह विवाह हुआ, उसकी स्थिति ऐसी नहीं थी कि ग्रेजुएट वर के अनुकूल नेग दे सकता। परन्तु लड़के की रुचि देखकर शर्माजी ने रकम का विचार न कर विवाह कर डाला। सोचा था, संस्कृत पढ़ी-लिखी पुत्र-बधू उनके घर को अपने आगमन से गुलजार कर देगी और भारतीय मान-मर्यादा का ध्यान रखेगी; परन्तु लड़के के पितृद्रोही हो जाने से यह सब परखने का अवसर भी नहीं मिल सका। जो-कुछ अवसर हाथ लगा, उससे शर्माजी को इस ओर से भी निराशा ही हाथ लगी। उधर अध्यापक महोदय ने विवाह के सभी नेगों में मात्र पाँच सौ रुपया दिया और अपने समधी शर्माजी के साथ जो व्यवहार किया, वह घोर अपमानजनक रहा।'

'अध्यापक महाशय अवसरवादी प्रतीत होते हैं। उन्हें शर्माजी का आजीवन ऋणी रहना था और खुलकर शर्माजी का सम्मान कर उन्हें सदा प्रसन्न रखना था। इसका दुष्परिणाम भी अध्यापक महोदय को कभी-न-कभी भोगना पड़ेगा। अच्छा, इस विद्रोह का मूल कारण क्या था?' नागर ने सारी कहानी जान लेने की जिज्ञासा प्रकट की।

'मूल कारण यह था कि पुत्रबधू ने शर्माजी के घर में पहले ही दिन अस्वस्थता के साथ प्रवेश किया। वह सदा बीमार रहती। शर्माजी ने डाक्टरी उपचार कराने में कभी कोई कमी नहीं आने दी। इधर जब शर्माजी की पत्नी कमल रोग से भयंकर रूप में बीमार पड़ी और डाक्टरी उपचार कराने में उनकी शक्तियाँ जवाब देने लगीं, तब उनकी पुत्रबधू को भी बुखार आने लगा। तीन दिन तक शर्माजी ने पुत्रबधू को किसी डाक्टर को नहीं दिखलाया। कह दिया, पाँच-सात दिन में बुखार का रूप निश्चित हो जाने पर किसी डाक्टर को दिखलाना ठीक होगा। बस, इस पर लड़के का मिजाज

गर्म हो उठा। कह बैठा, माँ की बीमारी में जितना खर्च हो चुका है, उसका एक तिहाई भी तो मेरी पत्नी पर नहीं किया गया। यदि डाक्टरी उपचार नहीं कराया जाता, तो मैं बनारस ले जाऊँगा और वहीं उपचार कराऊँगा।'

'बात सचमुच तीखी और अशोभन थी।' नागर ने कहा--'अरे भाई, पत्नी तो दूसरी भी मिल सकती है; परन्तु माँ नहीं मिल सकती। इस लड़के को ऐसी बात नहीं कहनी थी।'

'और ऐसी बात जब लड़का कह बैठा, तब पिता होकर यदि शर्माजी का क्रोध भभक ही उठा हो, तो उसे असंगत कहने की धृष्टता कौन कर सकता है?' सिनहा साहब ने कुछ उत्तेजित होते हुए कहा--'फिर माँ की असाध्य बीमारी में पत्नी को लेकर इस प्रकार भाग खड़ा होना भी तो पुत्र का साधारण विद्रोह नहीं है, नागरजी! जिस साधनहीन पिता ने आँखों का तारा समझ, लड़के को पाला-पोसा और शिक्षित किया हो, उसके लिए पुत्र का यह आचरण कितना कष्टप्रद होगा, इसका अनुमान हम लोग नहीं कर सकते। इतने पर भी शर्माजी कह रहे थे, इस लड़के को विद्रोह ही करना था, तो दो वर्ष बाद एम० ए० हो जाने अथवा पी० सी० एस० में सफल हो जाने पर ही करता।'

'वास्तव में शर्माजी की आत्मीयता बेजोड़ माननी पड़ेगी।' नागर ने कहा—'तो अब साहबजादे एम० ए० नहीं पढ़ रहे हैं?'

'न! नौकरी प्राप्त करने और सपत्नीक रहने के फेर में हैं।'

'तब यह लड़का विवेकहीन है।'

'जो भी हो, इससे हमें कोई मतलब नहीं।' सिनहा साहब ने कहा—'मेरा मतलब केवल इतना है कि ऐसा पुत्र यदि भगवान् हमें देता, तो हम सौभाग्य-शाली रहते अथवा लता और रजनी जैसी पुत्री पाकर हम सौभाग्यशाली हैं?'

'निस्सन्देह हम लोग सौभाग्यशाली हैं, सिनहा साहब!' नागर ने कुछ धीमे स्वर से कहा और दूसरा सिगरेट सुलगाया।

इस बीच रजनी पुनः बैठक में आ गई और उसके साथ ही महाराज चाय का ट्रे और नाश्ता लेकर सामने खड़ा हो गया।

रजनी ने अपने हाथों केटली से चाय का गर्म पानी, प्यालों में उँड़ेला और दूध-चीनी मिलाकर चाय तैयार कर दी।

सबके साथ नागर ने चाय पीते हुए कहा—'तो यह कहना चाहिए कि शर्माजी ने अपने पुत्र की शादी करके स्वयं अपनी बरबादी का अध्याय प्रारम्भ कर दिया!'

'यह कैसे कहा जा सकता है, भाई?' सिनहा साहब ने ओठों से चाय का प्याला हटाते हुए कहा—'मानव स्वयं कर ही क्या सकता है? ग्रहों का फेर उसे लट्टू की तरह नचाता है। मानव तो एक माध्यम मात्र है!'

'आपका तर्क अकाट्य है, सिनहा साहब! लेकिन अदृष्ट के हाथ का खिलौना—यह मानव—माध्यम बनने की बात शायद ही कभी सोचता हो और ऐसी परिस्थितियों में शायद ही वह मानसिक परिताप की ज्वालाओं से कभी बच सकता हो!' नागर ने गम्भीर होते हुए कहा—'युग-युग से सँजोई गई आशाओं के विपरीत यदि मधुर आम फलने के समय किसी वृक्ष में बबूल के तीखे काँटे फूट निकलें, तो उस वृक्ष को रोपनेवाले की सारी आशाओं का महल सहसा ध्वस्त हो जाता है।'

'बेचारे शर्माजी की आजकल यही दशा है, नागरजी!' सिनहा साहब ने अपना एक हाथ सिर के बालों पर फेरते हुए कहा—'इस पुत्र पर उनके जीवन की सारी आशाएँ केन्द्रित थीं। लेकिन हवा के एक ही विकट झोंके ने—आँधी के एक ही झटके ने—उनका जीवन कुछ-का कुछ कर डाला। उनकी बातों से विराग टपकने लगा है। उनकी मुद्रा पर गहन निराशा की रेखाएँ ताण्डव करती दीखने लगी हैं। इस संसार से उन्हें घृणा होने लगी है। यों उनकी अवस्था अभी केवल चालीस को ही पार कर सकी है; किन्तु पचास से कम के नहीं दीखते।'

'अवस्था की छाप परिस्थितियों के अनुसार ही मानव पर पड़ती है ।' नागर ने मेज पर रक्खे पान के बीड़ों में से दो बीड़े उठाए और सुर्त्ती के साथ मुँह में उन्हें दबाते हुए कहा—'यों चालीस वर्ष का जीवन ऐसा नहीं, जिसे बुढ़ापे की संज्ञा दी जा सके; परन्तु शर्माजी के साथ यह बात लागू नहीं होती। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं । एक तो जैसा आपने स्वयं अभी-अभी मुझे बतलाया है कि जब से उन्होंने होश सँभाला है, अब तक संघर्षों का वह निरन्तर सामना किए जा रहे हैं। दूसरे, वे हैं बहुत बड़े स्वाभिमानी ! तनिक-तनिक-सी बात को जो व्यक्ति अपने लिए अपमानजनक समझ बैठे, उसे बुढ़ापा यदि जल्द घेर ले, तो कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। फिर, हमारे देश के हिन्दी पत्रकारों की दयनीय परिस्थितियाँ तो अब तक ऐसी हैं कि उन्हें दिन-रात बुरी तरह पिसना पड़ता है।'

'हाँ, भाई! शर्माजी को सचमुच विषम परिस्थितियों में जीवन बिताना पड़ रहा है!' सिनहा साहब ने कहा —'यही कारण है कि पुत्र-विद्रोह की आँधी में उनका अस्तित्त्व उड़ते पत्ते की भाँति विचलित हो उठा है। लेकिन होनहार बड़ी प्रबल होती है, नागरजी! उसे कोई मिटा नहीं सकता।'

'जो भी हो, मुझे आज इस संवाद से बड़ा धक्का लगा, सिनहा साहब! अच्छा , अब रात काफी भीग चुकी है, मैं चलूँगा।' और अभिवादन कर नागर ने सिनहा साहब से बिदा ली।

-१८-

घर पहुँचकर निर्मल नागर ने देखा, उनकी पत्नी—नलिनी—अब तक जाग रही है। रात काफी भीग चुकी थी, इसलिए नौकर अपने घर जा चुका था। दिन-भर नौकरी करने के बाद छुट्टी पाकर मानव आपने बाल-बच्चों के साथ दो घड़ी चैन से बैठना चाहता है। साधारण नौकर हो या असाधारण, चपरासी हो या क्लर्क , कलक्टर हो या गवर्नर—प्रत्येक मानव में अपने स्त्री-बच्चों से हिल-मिलकर बात करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति पाई जाती है। ऐसी दशा में नागर का नौकर भी अपने घर जा चुका है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

परन्तु आज यह देख, नागर को सचमुच आश्चर्य हुआ है। अभी-अभी सिनहा साहब के घर, नागर ने देवदत्तजी शर्मा के पुत्र-विद्रोह की जो कहानी सुनी है, उसे सुनकर सिनहा साहब से उन्होंने चाहे जो कह दिया हो; परन्तु भीतर-ही-भीतर उनका अन्तस्तल हिल चुका है। जिन स्त्री-बच्चों के लिए मानव इतनी माया-ममता से भरा रहता है, वे भी पराए बनकर मानव को मर्मान्तिक पीड़ा पहुँचाने में कुछ उठा नहीं रखते। आज कोई शर्माजी से जाकर पूछे कि उनके पुत्र ने ही उनके अन्तस्तल में कैसी आग लगा दी है ! फिर पत्नी या पुत्र के लिए मानव की यह माया-ममता निरी मूर्खता नहीं तो क्या है ?

नलिनी के एक हाथ में एक उपन्यास अब तक दबा हुआ था, जो इस बात का प्रमाण था कि नागर की प्रतीक्षा में समय बिताने के लिए उपन्यास के कथानक से वह अपना मनोरंजन कर रही थी। लेकिन कौन कह सकता है कि उपन्यास के जिस कथानक से नलिनी अपना मनोरंजन कर रही है, उसकी पृष्ठभूमि शर्माजी जैसे किसी उपन्यासकार की आपबीती घटनाओं से ही निर्मित हुई हो !

नलिनी चुपचाप नागर की ओर देख रही थी। कदाचित् उसे भी आज नागर के इस अनपेक्षित मौन पर गहरा आश्चर्य हो रहा था। शायद वह सोच रही थी कि इस मनोदशा के बीच किसी संभाषण का सूत्रपात कैसे किया जाए।

नागर अपने कपड़े बदल रहे थे। सदा की तरह आज वह मुखर नहीं थे। शर्माजी के पुत्र-विद्रोह की कहानी—नहीं, सच्ची घटना—ने उनकी वाचालता पर आज शायद तुषारपात कर दिया था।

'क्या आज किसी से कहीं उलझ बैठे आप?' नलिनी ने नागर की ओर ध्यानपूर्वक दृष्टि गड़ाए पूछा।

'किसी से कभी उलझता हूं नलिनी, जो तुम ऐसा कह रही हो?' नागर ने एक कोच पर बैठते हुए कहा।

'तब इस प्रकार मौन क्यों हैं?' नलिनी ने भी उनके ही निकट कोच पर बैठते हुए दूसरा प्रश्न किया।

'लता सो गई?' नागर ने नलिनी के प्रश्न का उत्तर न देते हुए पूछा। शायद उनका मतलब था कि लता न सो चुकी हो, तो नलिनी का उनके साथ एक ही कोच पर इतने निकट बैठना ठीक नहीं।

'लता न सो चुकी होती, तो क्या मैं इस प्रकार ...।' कहते-कहते नलिनी मुसकरा उठी और नीची दृष्टि कर चुप रह गई।

नागर के मन में भीतर-ही-भीतर जो बात उठी थी, उसका नलिनी से यह उत्तर पाकर वह स्तब्ध रह गए। अब उन्होंने नलिनी के पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—'आज मेरे मौन का एक गंभीर कारण है, नलिनी!'

'वह क्या?' नलिनी अधीरता के साथ पूछ बैठी।

'तुम्हें सुनकर शायद प्रसन्नता न होगी।'

'मुझे प्रसन्नता हो या अप्रसन्नता, लेकिन आपका अवसाद तो हलका हो

जाएगा।' नलिनी ने तिरछी दृष्टि से नागर की ओर देखते हुए कह दिया।

'यह तुम कैसे कह सकती हो, नलिनी ?' नागर ने गम्भीर होते हुए कहा—'पता नहीं, मेरा अवसाद कम हो जाने की बात तुमने कैसे कह दी ?'

'इसलिए कि आत्मा के अन्तराल में व्याप्त अवसाद ठीक उमड़ने-घुमड़ने-वाले बादलों की उमस-जैसा ही रहता है। उसके हलके होने की संभावना तभी रहती है, जब बादल बरस जाते हैं। जिस बात को लेकर आप भीतर-ही-भीतर घुट रहे हैं, उसे व्यक्त कर देने पर आपका अवसाद भी कुछ-न-कुछ हलका हो ही जायगा।'

'आज मैं सिनहा साहब के यहाँ ऐसी बात सुनकर आ रहा हूं, जिसने मेरे अन्तर का एक-एक तार झकझोर दिया है। लगता है, तुम व्यर्थ ही कभी-कभी यह सोचकर परेशान रहती हो कि एक पुत्र......।'

'बस भी कीजिए !' नलिनी ने बीच में ही नागर के ओठों पर अपनी एक हथेली धरते हुए टोक दिया।

'मैं कह रहा था न, कि तुम्हें मेरी बात सुनकर शायद प्रसन्नता न होगी।' नागर ने नलिनी की हथेली अपने दोनों हाथों में सस्नेह दबाते—सहलाते हुए कहा।

'अच्छा, अब नहीं टोकूँगी।' नलिनी ने अपनी हथेली छुड़ाते हुए कहा—'लीजिए, अब सुनाइए अपनी बात।'

'मैं देखता हूँ, इस संसार में सभी परेशान हैं, नलिनी ! जिसके पुत्र नहीं है, वह सोचता है, एक पुत्र होता, तो जीवन सार्थक हो जाता। परन्तु जिसके पुत्र है, उसे ऐसे कटु अनुभव होते हैं कि वह सोचता है, पुत्र न होता, तो जीवन शान्ति से गुजरता'

'इस लम्बी-चौड़ी भूमिका के बाद यथार्थ बात भी सुनाएँगे या नहीं ?' नलिनी ने कहा—'अच्छा हो कि भोजन करते-करते ही आप यह बात सुनाएँ। रात बहुत भीग चुकी है।'

'भोजन आज न कर सकूँगा, नलिनी!' नागर ने अपने पेट पर एक हाथ फेरते हुए कहा—'आज प्रफुल्लजी और सिनहा साहब के घर इतना नाश्ता कर चुका हूँ कि इस पेट में तनिक भी गुंजाइश नहीं। तुमने भोजन किया अथवा.....?'

'मैं कर चुकी हूँ। लता के आग्रह पर मुझे उसके साथ भोजन करना ही पड़ा। अच्छा, अब वह बात सुना दीजिए।'

'वह बात जिनकी है, उन्हें तुम भी जानती हो, नलिनी!' नागर ने संक्षेप में शर्माजी की कहानी सुनाते हुए कहा—'पंडित देवदत्त शर्मा का ज्येष्ठ पुत्र इस वर्ष प्रथम श्रेणी में बी० ए० उत्तीर्ण हुआ है। परन्तु वह सपत्नीक अपने माता-पिता से पृथक् हो चुका है। कहाँ शर्माजी उसे एम० ए० तक पढ़ाना चाहते थे और पी० सी० एस० की परीक्षा में बैठाना चाहते थे, और कहाँ वह लड़का अब एक साधारण-सी पत्रिका का सहायक सम्पादक है।'

'क्या कह रहें हैं आप यह?' नलिनी ने मानो आसमान से धरती पर गिरते हुए कहा—'वह लड़का तो बड़ा सुशील और सीधा दीखता था।'

'यही तो आश्चर्य और दुख की बात है।' नागर ने कहा—'लेकिन हाथी के दाँत खाने के दूसरे और दिखलाने के दूसरे होते हैं न! तभी इस लड़के ने उस समय विद्रोह किया, जब माँ-बाप को उसका पूरा-पूरा सहारा मिलना था।'

'मैं समझती हूँ, यह सब नई बहू के कारण हुआ होगा।' नलिनी ने एक हाथ मटकाते हुए कहा—'वह बनारसी लड़की है। विवाह के बाद ही जब मैं शर्माजी के घर एक दिन गई थी, मुझे उसके रंगढंग अच्छे नहीं मालूम हुए।'

'अच्छा, तो तुम बहुत पहले ही यह सब समझ चुकी थीं?'

'नहीं जी!' नलिनी ने मुसकराते हुए कहा—'समझने की बात सच भी हो सकती है और झूठ भी। लेकिन आभास अच्छा नहीं मिला था।'

'वह क्या?'

'यह कि नल पर वह जाती थी, तो पीढ़े पर बैठे बिना हाथ-मुँह नहीं धो सकती थी। चौके में बैठती, तो सास भले ही धरती पर बैठी रहे; लेकिन बहूजी पीढ़े पर ही विराजती थीं। सुनते हैं, वह पढ़ी तो है संस्कृत; लेकिन फैशन करने में अँगरेजी पढ़ी-लिखी लड़कियों को भी मात देना चाहती है। गालों पर पाउडर और नाखूनों पर लाल पालिश लगाती है। एक हाथ में सदा रूमाल लिये रहती है। वाचाल इतनी कि पहले-पहल ससुराल में आने पर पर भी इतना बोलती थी कि सुननेवाली स्त्रियाँ दाँतों-तले अँगुली दबा लेती थीं। लेकिन यह सब उसने ठीक नहीं किया। वह चाहती, तो पथ-भ्रष्ट और कर्त्तव्यच्युत होनेवाले अपने पति को सहज ही सन्मार्ग पर ला सकती थी।'

'जो भी हो, शर्माजी का जहाँ तक संबंध है, इस शादी के साथ ही उनकी बरबादी हो चुकी।' नागर ने गम्भीर होते हुए कहा—'आज मुझे विश्व-विद्यालयों की शिक्षा के प्रति बड़ा क्षोभ हो रहा है। फर्स्ट क्लास ग्रेजुएट होकर भी यदि शर्माजी का पुत्र पितृद्वेषी हो सकता है, माँ-बाप का असम्मान कर उनकी आत्मा पर हथौड़ों की चोट कर सकता है और उनकी सारी आशाओं का सुनहरा महल ध्वस्त कर सकता है, तब इस दुनिया में किससे कर्त्तव्य-पालन की आशा की जाए ?'

'यह आशा उनसे की जा सकती है, जिनमें मानवता रहती है।' नलिनी ने कुछ क्षुब्ध होते हुए कहा—'परन्तु सभी लड़कों में ऐसी पशुता नहीं पाई जाती। माँ-बाप की आत्मा को कष्ट पहुँचानेवाला पुत्र मानव नहीं, पशु है। सन्तान के लिए माँ-बाप क्या नहीं करते, क्या कष्ट नहीं भोगते ? कितनी ममता उनके हृदय में हिलोरें लेती रहती है, इसे वह कृतघ्न पुत्र क्या समझ सकेगा, जिसमें पशुता की प्रबलता जाग उठी हो।'

एक क्षण रुककर नलिनी ने फिर कहा—'और शर्माजी से अधिक तरस तो मुझे उनकी पत्नी पर आता है, जो बेचारी यह आकांक्षा सँजोए बैठी थीं कि हरीश जब पहले–पहल किसी नौकरी पर कहीं बाहर जाएगा, तो वह

अपनी पुत्रबधू को कभी अकेली न जाने देंगी; स्वयं उसके साथ जाएँगी और दो-एक महीने साथ रहकर उसकी गृहस्थी को व्यवस्थित करके ही लौटेंगी।'

कुछ क्षण रात्रि की उनींदी घड़ियों में दोनों पति-पत्नी चुपचाप कोच पर बैठे रहे। शर्माजी पर जो बीत रही होगी, उसकी कल्पना-मात्र से नलिनी और निर्मल नागर आज इतने परेशान हो उठे हैं कि नींद भी उनसे दूर भाग रही है।

इस निस्तब्धता को भंग करते हुए नलिनी ने आग्रहपूर्वक कहा—'अच्छा, अब चलकर सो जाइए। इस संसार में इतना दुख-दर्द और हाहाकार है कि सबके प्रति हम इस प्रकार तिल-तिलकर भस्म होने लगें, तो हमारा जीवन हमें ही भार हो उठे।'

'तुम ठीक कहती हो, नलिनी!' नागर ने एक लम्बी साँस छोड़ते हुए कहा—'इस संसार में क्या गरीब, क्या अमीर; क्या पुरुष, क्या नारी—सभी के हृदय में किसी-न-किसी हाहाकार की विनाशकारी लपटों का अग्निकुण्ड धधकता रहता है। इसे शान्त करने के लिए—इस अग्निकुण्ड को ठण्ढा करने के लिए—मानव के आँसुओं की गंगा-यमुना भी पर्याप्त नहीं होती। यह बात दूसरी है कि आँसुओं की यह धारा सभी को और सदा नहीं दिखलाई पड़ती। ऐसी दशा में हमारा इतना अधिक अभिभूत होना सचमुच ठीक नहीं। चलो, अब सो जाना ही ठीक होगा।'

—१६—

नलिनी के आग्रह पर निर्मल नागर बिस्तर पर जाकर लेट तो गए; परन्तु उनकी आँखों में नींद नहीं थी। नागर ने कुछ ऐसा संवेदनशील हृदय पाया है कि दूसरों की पीड़ा देख, वह विचलित हो उठते हैं। शर्माजी के पुत्र-विद्रोह की कहानी रह-रहकर उनके अन्तराल में हू-हू कर उठती है। शर्माजी के अन्तस्तल में आज जो हाहाकार प्रलय मचा रहा होगा, उसकी कल्पना-मात्र से नागर इस समय बेचैन हो उठे।

शयन-कक्ष के वातायन से नीलाकाश का जो भाग दीख रहा था, उसमें तारों की चमक बड़ी लुभावनी प्रतीत हो रही थी। नागर को लगा, नित्य ही रात की सूनी घड़ियों में ये तारे इसी तरह चमचमाते रहते हैं और मानव-मात्र को मुग्ध किए रहते हैं। परन्तु इन तारों के सौन्दर्य से अपनी आँखों को शीतल और अपने मन को आह्लादित करनेवाला मानव इन्हें कभी प्राप्त नहीं कर सकता—इनका कभी स्पर्श नहीं कर सकता। यह सब तो दूर से देखकर ही तृप्त होने की माया है। माया? हाँ, माया नहीं तो क्या है? और, पंडित देवदत्त का पुत्र भी तो ऐसी ही माया सिद्ध हुआ न!

शर्माजी ने कितनी आशाओं का केन्द्र मानकर अपने पुत्र हरीश को पाला-पोसा, और अपना पेट काटकर उसे शिक्षा दिलाई। पुत्र की प्रत्येक अभिलाषा को पूरा करने में उन्होंने अपनी शक्ति से बाहर व्यय किया। हरीश की वेश-भूषा देखकर कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि उसके पिता की आय बहुत ही सीमित है—इतनी सीमित कि उससे उनके परिवार का भरण-

पोषण भी बखूबी नहीं हो सकता। परन्तु शर्माजी घोर कर्मठ हैं, अमित परिश्रमी हैं। घर में वह कभी आराम करते नहीं देखे गए। मिलने-जुलनेवाले जब कभी उनके घर गए, उन्हें सदा अध्ययन करते अथवा कुछ-न-कुछ लिखते ही पाया। दर्जनों पुस्तकें लिखकर प्रकाशकों को उन्होंने लुटा दीं। हाँ, लुटा देना ही कहा जाएगा। जब कभी कोई आवश्यकता उनके सामने मुँह फैलाकर आ खड़ी हुई, उन्होंने अपनी पुस्तक के सर्वाधिकार किसी भी प्रकाशक को बेचकर अपना निर्वाह किया और अपने स्वाभिमान को सुरक्षित रक्खा। यह बात नहीं कि शर्माजी यह न जानते हों कि हमारे देश में अधिकांश प्रकाशक, हिन्दी-लेखकों को कम-से-कम रुपया देकर, उनका अधिक-से-अधिक शोषण करते हैं। परन्तु शर्माजी ने अपने मित्रों से ऐसे प्रसंगों पर बहुधा यही कहा है कि ईश्वर ने चाहा, तो मेरा बड़ा पुत्र हरीश शीघ्र ही एम० ए० हो जाएगा और पी० सी० एस० में सफल हो गया, तो मेरी सारी दरिद्रता दूर कर देगा—मेरे बुढ़ापे का सहारा बन जाएगा। यही कारण है कि मैं अपनी सारी शक्तियाँ लगाकर उसे पढ़ाने-लिखाने में कोई कमी नहीं करना चाहता, और इन प्रकाशकों के शोषण से तनिक भी नहीं घबराता।

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है, ईश्वर को यह स्वीकार नहीं था। शर्माजी की भाग्य-रेखा तो उसी समय ईश्वर ने अंकित की होगी, जब वह इस संसार में जन्म ले रहे होंगे। उस भाग्य-रेखा में ईश्वर भी अब क्यों कोई उलटफेर करने लगा? सम्भवतः वह अब ऐसा कर नहीं सकता। इस विडम्बना का अनुभव स्वयं शर्माजी अपने जीवन में रात-दिन कर रहे हैं! शर्माजी बहुधा कहने लगते हैं, जब कभी उनकी पत्रिका में, उन्हीं की किसी भूल से कोई त्रुटि छप जाती है, तब उसका सुधार करना स्वयं शर्माजी के लिए असम्भव हो जाता है।

शर्माजी के लाख चाहने पर भी उनका बड़ा लड़का उनके लिए बुढ़ापे का सहारा न बन सका। वह तो हाथी के दाँत का ही प्रतीक रहा। केवल देखने-सुनने के लिए उनका पुत्र है। वह स्वयं अपना सहारा नहीं

बन सका, तो माँ-बाप का सहारा क्या खाक बनेगा! जब तक एम० ए० नहीं हो जाता, तब तक साधारणतः वह अच्छी सरकारी नौकरी नहीं पा सकता। परन्तु हरीश की बुद्धि पर तो जैसे किसी ने जादू कर दिया है! उसने एम० ए० न पढ़कर एक मासिक पत्रिका में सहायक सम्पादक होकर जिन्दगी बिताने का जो मार्ग अपनाया है, वह उस जैसे प्रतिभा-सम्पन्न ग्रेजुएट के लिए सर्वथा निन्द्य कहा जाएगा। फिर ग्रेजुएट होते ही माता-पिता से पृथक् हो जाना तो उसकी घोर कृतघ्नता है।

हरीश को अपने माता-पिता से पृथक् ही होना था, तो शर्माजी की इच्छा का ध्यान रखते हुए एम० ए० करके और पी० सी० एस० में उत्तीर्ण होकर भी यह सब कर सकता था। आज के युग में सभी लड़के माँ-बाप के साथ रहते कहाँ हैं? परन्तु पृथक् रहकर भी लड़का अपने माँ-बाप को सन्तुष्ट रख सकता है और उन्हें पूरी-पूरी अथवा संभाव्य सहायता देकर उनके ऋण से किसी सीमा तक उऋण होने की भरसक चेष्टा कर सकता है। जो पुत्र अपने माता-पिता के बुढ़ापे का सहारा न हो सका और उनकी इच्छाओं तथा कठिनाइयों का भी ध्यान न रख सका, उसका जीवित रहना न रहना बराबर है।

लेकिन हरीश ने तो अपने पिता का असम्मान भी किया है, उनकी इच्छाओं के सर्वथा विपरीत कदम बढ़ाया है। सुनते हैं, हरीश की प्रत्येक बात में अशिष्टता और कड़वाहट भरी रहती है। जो हरीश अपने पिता से भी मधुरता और शिष्टता के साथ बात नहीं कर सकता; उनकी सेवा-शुश्रूषा करना तो दूर की बात, उन्हें कभी कोई सन्तोष नहीं दे सकता, उसकी उच्च शिक्षा पर एक बार नहीं, हजार बार लानत है।

कहते हैं, पिता के दिवंगत हो जाने पर पुत्र द्वारा ही उसकी अन्त्येष्टि और उसके श्राद्ध-तर्पण आदि का जो विधान हमारी भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत है, उससे पिता की दिवंगत आत्मा को अपूर्व शान्ति मिलती है। परन्तु जो पुत्र अपने जीवित पिता को ही शान्ति न दे सके, सन्तुष्ट और

प्रसन्न न रख सके, उसे पुत्र नहीं, पशु कहना ही अधिक उपयुक्त है।

नागर के अन्तर्मन में प्राचीन काल के गुरुकुलों का एक चित्र साकार हो उठा। गुरुकुल के स्नातकों में ऐसी बर्बरता नहीं पाई जाती थी, जैसी आजकल के विश्वविद्यालयों के डिग्रीधारी स्नातकों में। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के प्रति नागर का मन एक गहरे क्षोभ से भर उठा।

नागर को स्मरण आया, त्रेतायुग के श्रवणकुमार-जैसे मातृ-पितृ-भक्त पुत्र का। उसने अपने नेत्रहीन माता-पिता को एक काँवर में बैठाकर और उस काँवर को स्वयं अपने कन्धों पर रखकर उन्हें तीर्थयात्रा कराई और इसी सिलसिले में उसे अपने प्राण तक दे देने पड़े।

महाभारत-काल के उन भीष्म पितामह का चित्र भी नागर की आँखों के सामने झूल उठा, जिन्होंने अपने पिता की प्रसन्नता के लिए, उनकी इच्छा-पूर्त्ति के लिए स्वयं आजीवन अविवाहित रहने का कठोर प्रण किया और उसका निर्वाह भी किया। परन्तु एक यह हरीश है, जिसने अपने उस पिता की इच्छाओं का भी कोई ध्यान न रक्खा, जिसने अपना सर्वस्व उसके निर्माण पर न्योछावर कर दिया और आज उसी के कारण सर्वथा अकिंचन हो गया।

कहाँ उस श्रवणकुमार का आदर्श है, जिसके माता-पिता नेत्रहीन होने के कारण अपने पुत्र के लिए किसी प्रकार उपयोगी नहीं थे, फिर भी पुत्र ने उनकी सेवा-शुश्रूषा और इच्छा-पूर्त्ति के लिए अपने प्राण तक होम दिये। लेकिन इस हरीश का पशुत्व देखो कि जिस पिता के अर्थोपार्जन और लाड़-दुलार की छाया में उसका निर्माण हुआ और विकास हो रहा था, उसी पिता की छाया से वह दूर जा खड़ा हुआ!

कहाँ भीष्म पितामह का वह त्याग कि पिता की इच्छा-पूर्त्ति के लिए उन्होंने आजीवन अविवाहित रहने और संसार के सभी सुखों को ठोकर लगाकर जीवन बिता देने का ऐसा उदाहरण उपस्थित किया कि हजारों वर्ष बीत जाने

पर भी अब तक उनका जय-जयकार होता है, और कहाँ इस घोर स्वार्थी हरीश की यह हरकतें कि नवविवाहिता पत्नी के कारण, माँ की असाध्य बीमारी और पिता की जर्जरता का भी उसे कोई ध्यान नहीं। विश्वविद्यालय का स्नातक होकर ही शायद वह इतना निर्लज्ज हो चुका है कि उसे अपनी लोकनिन्दा का भी कोई ध्यान नहीं है।

यह बात नहीं कि शर्माजी के परिचितों और संबंधियों ने इस हरीश को भली भाँति समझाया न हो; किन्तु किसी की सीख का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। नागर को लगा कि ऐसी दशा में यही मानना होगा कि यह हरीश स्नातक होने पर भी वज्र मूर्ख और घोर स्वार्थी है।

नागर यही सब सोच रहे थे कि घर में नीचे के हिस्से में सहसा बिल्लियों की गुर्राहट सुनाई पड़ी। दो बिल्लियाँ जोरों से लड़ रही थीं—शायद एक दूसरी को चीर-फाड़कर यमलोक पहुँचा देने की तैयारी कर रही थी।

नागर को लगा कि ये बिल्लियाँ जैसी बर्बर और खूँख्वार हैं, आज का उच्च शिक्षाप्राप्त मानव भी इन-जैसा ही बर्बर है। मानव की बर्बरता पर कृत्रिम शिष्टाचार और शिक्षा का एक झीना-सा आवरण-मात्र पड़ गया है, जो तनिक-सा झटका लगते ही फट जाता है और मानव की बर्बरता की वास्तविक बीभत्स झाँकी दिखला देता है।

नागर का मस्तिष्क भन्ना उठा। जब उच्च शिक्षा से भी मानव की बर्बरता मिटाई नहीं जा सकती, तब उसे किस प्रकार बनाया-सुधारा जाए?

हरीश की अशिष्टता की जो कहानी नागर ने अब तक सुनी है, उससे उनका अन्तस्तल हिल उठा है। पता नहीं, आज की रात उन्हें नींद आ सकेगी या नहीं!

दूर किसी घण्टाघर की घड़ी ने जोरों से टन-टन करके तीन बजने की सूचना दी। नागर ने बेचैनी का अनुभव करते हुए करवट बदली। तभी हरीश के पिता—शर्माजी—का वह चित्र उनकी आँखों के सामने नाच उठा, जो

अभी दो-एक दिन पहले ही नागर ने दूर से अनायास ही देख लिया था।

शर्माजी एक हाथ में गान्धी झोला लटकाए सम्भवतः अपने कार्यालय से घर वापस जा रहे थे और नागर एक ताँगे पर बैठे गान्धी महिला-विद्यालय की ओर जा रहे थे। शर्माजी ने नागर को नहीं देखा था। नीची दृष्टि किए वह धीरे-धीरे अपने पथ पर बढ़े जा रहे थे। परन्तु नागर ने उन्हें ध्यानपूर्वक देख लिया था।

शर्माजी का शरीर सूखकर आधा रह गया है। उनके गालों पर दुर्दिन के प्रहारों की छाप, गड्ढों का रूप धारण कर चुकी है। परेशानी और बेचैनी उनकी मुद्रा पर अंकित हो चुकी है। आखिर क्यों न हो? अपना सर्वस्व लगाकर उन्होंने अपने जिस बड़े पुत्र को पाल-पोसकर बड़ा किया; अपना पेट काटकर जिसे बी० ए० तक पढ़ाया-लिखाया और कर्ज लेकर भी जिस का विवाह कर अपने सारे कर्तव्यों को पूरा किया, उसी पुत्र ने उनकी सारी आशाओं पर अचानक ही तुषारपात कर दिया! इस हरीश को अपने माता-पिता से पृथक् होते शर्म भी न आई! छिः!

नागर ने बिस्तर से उठकर एक गिलास ठण्डा पानी पिया और फिर जाकर वह लेट रहे। परन्तु हरीश की उधेड़बुन में कब तक वह करवटें बदलते रहे और कब उनकी आँख लग गई, इसका उन्हें स्वयं स्मरण नहीं।

—२०—

पत्रकार साधारणतः भावुक नहीं होता। परन्तु पण्डित देवदत्त शर्मा पत्रकार होने के साथ ही साथ कवि, कथाकार और उपन्यासकार भी हैं, अतः स्वभावतः गहरी भावुकता उनके व्यक्तित्त्व में ओतप्रोत है। यह भावुकता उन्हें कभी निश्चिन्त न रहने देती। कभी दूसरों की चिन्ता-व्यथा से वह अभिभूत रहते, तो कभी अपनी ही पारिवारिक परेशानियों से पीड़ित रहते। इधर जब से उनका ज्येष्ठ पुत्र हरीश विद्रोह का झण्डा ऊंचा कर उनसे पृथक् रहने लगा, तब से उनकी मानसिक स्थिति एकदम असंतुलित हो उठी है।

देवदत्त का विचार था कि हरीश एम० ए० होकर डाक्टरेट लेकर कहीं प्रोफेसर हो जाएगा अथवा पी० सी० एस० में उत्तीर्ण होकर डिप्टी कलेक्टर हो जाएगा, तो वह इस पत्रकारिता से अवकाश-ग्रहण कर लेंगे और घर बैठे ही कुछ-न-कुछ बराबर लिखते रहेंगे। पत्रकारिता में रहते हुए उनका लेखन-कार्य निरन्तर रूप से हो नहीं पाता। इस लेखन-कार्य से न केवल उनकी मानसिक तृप्ति होगी, प्रत्युत कुछ अर्थोपार्जन भी वह कर सकेंगे। हरीश पर वह अपना भार नहीं डालना चाहेंगे। कम-से-कम अपने ऊपर होनेवाला खर्च वह स्वयं जुटाते रहेंगे। परन्तु इन सारी आशाओं के सुनहरे तार इस हरीश ने एक ही झटके में ऐसे तोड़ दिए कि उतरती उम्र में देवदत्त का अन्तस्तल अप्रत्याशित रूप से अस्तव्यस्त हो उठा।

हरीश के पृथक्करण से अब देवदत्त को ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो स्वयं उनका पुनर्जन्म हुआ हो। पुनर्जन्म इस अर्थ में कि उन्हें अपनी पुत्री लज्जा

को सुखी रखने के लिए उसके विवाह में खासी बड़ी रकम खर्च करनी पड़ेगी और छोटे बच्चे शम्भु को सुखी रखने के लिए उसे थोड़ा-बहुत पढ़ाने-लिखाने के साथ ही किसी ऐसे रोजगार की व्यवस्था करनी होगी, जिसके सहारे वह चैन से अपना जीवन बिता सके। अधिक पढ़ाने-लिखाने में अब देवदत्त का विश्वास नहीं रहा। हरीश को बी० ए० तक पढ़ाने का जो फल उन्हें मिला है, वह इतना कड़वा है कि जन्म-जन्मान्तर तक उसे वह भूल न सकेंगे। यदि हरीश अपने कर्त्तव्यों का ध्यान रखता और अपने पिता को इन चिन्ताओं से मुक्त रख सकता, तो देवदत्त का जीवन विषमता और उदासीनता की कहानी बनकर न रह जाता। किन्तु हरीश पर केन्द्रित सारी आशाएँ एक मृगजल बनकर रह गईं। यही कारण है कि देवदत्त अपनी इस ढलती उम्र में भी अपने पुनर्जन्म का अनुभव करने लगे हैं।

उस दिन आचार्या सुमित्रा 'त्रिवेणी' कार्यालय में देवदत्तजी से भेंट करने आई थीं। उनका लेख देवदत्तजी ने 'त्रिवेणी' में प्रकाशित कर दिया था। सुमित्रा-जी उसी के सम्बन्ध में आभार-प्रदर्शन करने आई थीं। कितनी शालीनता है इस सुमित्रा में! और दूसरों के प्रति जहाँ इतनी शालीनता है, वहीं अपनों के प्रति अगाध आत्मीयता और ममता भी है उस नारी में। सम्भाषण के सिलसिले में देवदत्त ने जाना कि सुमित्रा अपने दिवंगत पिता के प्रति कितनी श्रद्धा सँजोए बैठी है! उनकी स्मृति में सुमित्रा की दोनों आँखें सहसा गीली हो गई थीं। पिता को खोकर वह कितनी दुखी है!

लेकिन यह हरीश है कि अपने पिता—देवदत्त—की छाया में भी नहीं रहना चाहता। पिता के साथ रहने में शायद उसे कष्ट होता है! देवदत्त को लगा कि ऐसा करके हरीश उन्हें संसार की नजरों में नीचा गिराने की कुत्सित चेष्टा कर रहा है। जिन्हें सारी कहानी ज्ञात नहीं, उन्हें यह समझने का मौका दे रहा है कि पिता उसे घोर कष्ट और यन्त्रणा देते होंगे, अन्यथा इस प्रकार पृथक् रहने की आवश्यकता ही पुत्र को क्यों पड़ती! परन्तु यह वास्त-विकता कोई नहीं जानता कि हरीश अपनी हरकतों से देवदत्त को असह्य कष्ट

पहुँचाने में ही गहरे सन्तोष का अनुभव कर रहा है। प्रत्येक मानव में कुछ-न-कुछ पशुत्त्व सन्निहित रहता है; किन्तु विवेक के अंकुश से यह पशुता दबी रहती है। परन्तु हरीश की पशुता इतनी प्रबल हो उठी है कि उसका विवेक तनिक भी काम नहीं कर रहा है।

जो भी हो, माता-पिता की आत्मा को, उनके समस्त त्याग और बलिदान के बावजूद भी घोर क्लेश पहुँचाने का परिणाम कभी सुखद नहीं हो सकता। माता-पिता से पृथक्करण के पश्चात् केवल छः महीने का इतिहास इसका साक्षी है कि हरीश की इन हरकतों का समर्थन ईश्वर भी नहीं कर रहा है।

जिस हरीश को देवदत्त डिप्टी कलैक्टर अथवा प्रोफेसर के रूप में सुखी देखना चाहते थे, वही हरीश अपनी हरकतों के फलस्वरूप बी० ए० के पश्चात् विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड़कर एक साधारण-सी मासिक पत्रिका का सहायक सम्पादक होकर रह गया। देवदत्त ने अपना सारा जीवन सम्पादक रहकर बिता दिया; परन्तु उनकी आर्थिक स्थिति कभी सन्तोषजनक नहीं रही। उन्होंने अनेक बार प्रसंग छिड़ने पर हरीश को हिन्दी पत्रकारिता की विडम्बनाएँ समझाते हुए आगाह किया था कि वह भूलकर भी हिन्दी पत्रकारिता को अर्थोपार्जन का माध्यम न बनावे। लेकिन हरीश है कि इसी हिन्दी पत्रकारिता को अपना बैठा। शायद उसकी परिस्थितियों ने, जो स्वयं हरीश की हठधर्मी से उत्पन्न हो गई थीं, उसे बाध्य कर दिया। यदि वह पितृद्रोही होकर अपने परिवार से पृथक् न होता, तो आज उसे साधारण-सी मासिक पत्रिका के सहायक सम्पादक के रूप में अपना जीवन नष्ट न करना पड़ता। प्रथम श्रेणी का स्नातक होकर यदि किसी दैनिक पत्र में सहायक सम्पादक होता, तो भी उसकी भावी उन्नति का मार्ग प्रशस्त रहता। किन्तु जिस साधारण-सी मासिक पत्रिका का वह सहायक सम्पादक है, वहाँ तो मानो उसकी उन्नति का मार्ग सदा के लिए बन्द ही हो चुका है।

इसे बुद्धि का और ग्रहों का फेर ही कहना होगा कि सहायक सम्पादक रहकर भी हरीश अपने-आपको परम गौरवान्वित समझ रहा है। परिस्थि-

तियों के अनुकूल स्वयं को ढालना और संतुष्ट रहना बुरा नहीं है; परन्तु निर्माण-काल में यह सन्तोष सदा विषाक्त सिद्ध होता है। किसी ने कहा भी है—'राजा और विद्यार्थी, अगर करे सन्तोष; निश्चय ही दिन-दिन घटे, धन विद्या का कोष।'

अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ हरीश एक तंग और गन्दे-से कमरे में जीवन बिता रहा है । एक ही शहर और एक ही मुहल्ले में रहते हुए भी ये पिता-पुत्र उसी तरह एक-दूसरे से सदा दूर रहते हैं, जिस तरह एक ही नदी के दो किनारे। लेकिन देवदत्त का पितृ-हृदय अपने बागी और विद्रोही पुत्र की प्रत्येक गतिविधि का पता लगाए रहता था। सुख-दुख, आशा-निराशा और उत्थान-पतन के इतिहास से भरे हुए लम्बे-लम्बे बाईस वर्षों तक जिस पुत्र को उन्होंने कभी आँखों से ओझल नहीं होने दिया, उसके पृथक्करण पर उनकी आत्मा को कितना क्लेश पहुँचा, इसका अनुमान तरुणाई के उन्माद से उन्मत्त हरीश कभी कर ही नहीं सकता।

देवदत्त को उन दिनों की स्मृतियाँ भुलाए नहीं भूलतीं, जब हरीश को गोद में लेकर वह नित्य चहलकदमी करने जाया करते। कार्यालय से जब देवदत्त के वापस आने का समय होता, तब यह हरीश भी दरवाजे पर उनकी अथक प्रतीक्षा किया करता। देवदत्त आते ही इसे गोद में ले लेते और अपने जीवन-संघर्षों की सारी पीड़ा इसके साथ बातें करते हुए भूल जाया करते। प्रथम बार जब हरीश को पाठशाला में भेजा गया, तब देवदत्त की आँखें गीली हो उठी थीं, मानो चन्द घण्टों का पुत्र-बिछोह भी उन्हें असह्य था। किन्तु कौन जानता था कि हरीश तरुण होकर, ग्रेजुएट होकर और विवाहित होकर देवदत्त के लिए बिच्छू का डंक बन जाएगा।

एक दिन देवदत्त को पता चला कि उनकी पुत्रबधू गर्भवती है। मन-ही-मन उन्हें एक अव्यक्त प्रसन्नता का अनुभव हुआ। भले ही उनका पुत्र हरीश उनसे पृथक् रहता है; किन्तु पौत्र होगा, तो प्रपिता होने का गौरव और संतोष तो देवदत्त को प्राप्त होगा ही। परन्तु देवदत्त की भाग्य-रेखा कुछ ऐसी

है कि किसी प्रकार के सन्तोष और सुख का अनुभव वह कर नहीं सकते। जब हरीश से उन्हें कोई सुख-सन्तोष नहीं हो सका, तब उससे सम्बद्ध किसी भी सुख-सन्तोष की आशा पूरी कैसे होती?

कुछ ही दिनों बाद देवदत्त ने सुना कि पुत्रबधू काफी बीमार रहने लगी है। हरीश जी खोलकर इलाज करा रहा था; किन्तु मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की। माता-पिता से विद्रोह ठान लेनेवाले हरीश को इस संकट-काल में अपनी सास को बुला लेना पड़ा। परन्तु सास के आने पर एक सप्ताह बीतते-न-बीतते हरीश की पत्नी की हालत इतनी गिर गई कि एक दिन उसे स्थानीय महिला-अस्पताल में भरती करा देना पड़ा।

हरीश के निन्द्य और असन्तोषजनक व्यवहार से यद्यपि देवदत्त बहुत ही क्षुब्ध थे, फिर भी पुत्रबधू की असाध्यावस्था का समाचार सुनकर वह अपना सारा सम्मान भूलकर भी सपरिवार महिला-अस्पताल दौड़े गए।

जनवरी का महीना था। मकर संक्रान्ति के पर्व की तीर की तरह ठण्ढी हवा के झोंकों का सामना करते हुए, देवदत्त दिन-भर भूखे-प्यासे और चिन्तित महिला-अस्पताल के फाटक पर सपरिवार खड़े रहे। केवल देवदत्त की पत्नी मीरादेवी भीतर पुत्रबधू की रोग-शय्या के निकट रह सकीं। बीच-बीच में पुत्री लज्जा को भीतर भेजकर देवदत्त पुत्रबधू की गिरती दशा में सुधार होने-न-होने की बात पूछ लेते थे।

धीरे-धीरे सारा दिन सरक गया और सन्ध्या का झुटपुटा होने लगा। सामने के राजपथ की चहल-पहल अपेक्षाकृत शान्त होने लगी। वातावरण में एक भयावह सन्नाटा व्याप्त होने लगा। किन्तु तीर की तरह चलनेवाली ठण्ढी हवा के झोंकों की गति में कोई अन्तर नहीं आया। देवदत्त की पुत्रबधू की गिरती दशा में भी कोई सुधार नहीं हुआ। उसकी दशा उत्तरोत्तर गिरती जा रही थी।

देवदत्त ने जब सुना कि पुत्रबधू के गले में कफ की घड़घड़ाहट बहुत बढ़ गई है और आक्सिजन भी दी जाने लगी है, तब उन्हें लगा कि दिन के जगमग प्रकाश को जिस प्रकार सन्ध्या का झुटपुटा धूमिल कर बैठा है और अब

शीघ्र ही रात्रि का कुहू अन्धकार अपना काला अंचल फैलाने की तैयारी कर रहा है, उसी प्रकार हरीश के सुखद विवाहित जीवन-नाटक का पटाक्षेप होने में भी अब अधिक विलम्ब नहीं है। जिस पुत्रबधू को लेकर यह हरीश इतना इतराया, पथभ्रष्ट और कर्त्तव्यच्युत होकर सारी दुनिया की नजरों में गिर गया और तरह-तरह की आलोचनाओं का लक्ष्य बना, वही पुत्रबधू अब सदा के लिए उसे छोड़ जाने की घड़ियाँ गिन रही है ।

महिला-अस्पताल के जिन कठोर नियमों के कारण देवदत्त दिन-भर अपने बच्चों के साथ फाटक पर खड़े रहे, उनकी भयंकरता रात्रि का आगमन निकट देख उन्हें बहुत क्षुब्ध कर बैठी। उन्होंने पुनः लज्जा को भीतर भेजकर अपनी पत्नी को फाटक पर बुलवाया और कहा—'अब रात हो रही है। इन बच्चों के साथ इस फाटक पर रात में भला, कब तक मैं खड़ा रहूँगा ? हम लोग दिन-भर के भूखे-प्यासे हैं और रात में भी भूख-प्यास को पास न फटकने देंगे; किन्तु इन बच्चों को तो उपवास कराना उचित नहीं। तुम जाकर हरीश से कह आओ कि अब हम लोग घर जा रहे हैं। सबको घर भेजकर, हरीश चाहे, तो मैं फिर यहाँ आ जाऊँगा।'

मीरादेवी दस मिनट में ही हरीश को सारी परिस्थिति समझाकर पुनः फाटक पर आ गईं और एक रिक्शे पर देवदत्त सपरिवार अपने घर की ओर चल पड़े।

रिक्शे पर ही मीरादेवी ने पुत्रबधू की गिरती दशा और बेहोशी आदि का दिन-भर का जो आँखों-देखा समाचार देवदत्त को सुनाया, उससे उनकी यह आशङ्का और प्रबल हो उठी कि अब पुत्रबधू की जीवन-लीला समाप्त होने में अधिक विलम्ब नहीं है ।

घर पहुँचकर देवदत्त ने सबके साथ चाय पीकर नाश्ता किया और पत्नी से कहा—'अब मुझे फिर अस्पताल जाना चाहिए। क्या कह रहा था हरीश मेरे पुनः जाने के संबंध में ?'

'बिच्छू का स्वभाव डङ्क मारने का होता है न !' मीरादेवी ने कहा—

'हरीश ऐसी संकटापन्न घड़ियों में भी इतनी तीखी बात करता है कि हृदय फट जाता है।'

'आखिर क्या कहा उसने?' देवदत्त ने पूछा।

'यही कि दादा की इच्छा हो, तो आवें; अन्यथा तुम सबके मन की तो हो ही रही है।' मीरादेवी ने एक ठण्डी साँस छोड़ते हुए कहा—'यह सुनकर मैंने यही कहा कि हरीश, संकट की इन घड़ियों में तुझे यह बात नहीं कहनी चाहिए। हम लोग आखिर तेरे माता-पिता हैं। हमने कभी तेरा अमंगल नहीं मनाया। लेकिन मैं जानती हूं, तेरे सास-ससुर ने जिस प्रकार तेरे कान भर-भरकर तुझे हम लोगों से पृथक् कर दिया है, उसी प्रकार तेरी इन बातों में जो उन्हीं के स्वर गूँजे रहे हैं, वे पता नहीं क्या करनेवाले हैं। हम लोग यदि तेरा अमंगल चाहते, तो तेरे निन्द्य व्यवहारों की असह्य चोटों की पीड़ा से कराहते रहने पर भी, आज यहाँ दिन भर भूखे-प्यासे हरगिज न खड़े रहते।'

'तुमने उसे उचित उत्तर दिया है।' देवदत्त ने तिलमिलाते हुए कहा—'उसकी सास को मैं बहुत शालीन समझता था; लेकिन हरीश के इस उत्तर में उसकी सास का जो स्पष्ट स्वर है, वह निश्चय ही हलाहल है। ईश्वर सब देखता है। उसके दरबार में देर हो सकती है, अन्धेर नहीं। जो हमारा अमंगल मनाएगा, भगवान् स्वयं उसे सबक देंगे। हम अपने कर्त्तव्य से क्यों चूकें? अच्छा, मैं फिर जा रहा हूँ। शायद उसे मेरी किसी सहायता की आवश्यकता आ पड़े।' और हाथ-मुँह धोकर गरम कोट के भी ऊपर एक शाल ओढ़कर देवदत्त पुनः महिला-अस्पताल की ओर एक रिक्शे पर चल पड़े।

अस्पताल में पहुँचकर देवदत्त ने वही देखा, जिसकी आशंका उन्हें सन्ध्या से ही होने लगी थी। हरीश की पत्नी के प्राण-पंछी उड़ चुके थे। उसका शव एक चादर से ढका हुआ पड़ा था। हरीश अपनी सास के साथ आँसुओं में डूबा हुआ वहीं बैठा था।

देवदत्त ने वहाँ पहुँचते ही हरीश को अपने वक्षःस्थल से लगा लिया। स्वयं आँसुओं में डूबते हुए उन्होंने कहा—'विधि-विधान पर मानव का कोई

वश नहीं, बेटा! अब धैर्य धारण करने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नहीं। तुमने उपचार कराने में—उसे बचाने में—कुछ उठा नहीं रक्खा; बल्कि अपनी सीमा से बाहर खर्च किया। परन्तु ईश्वर को यह सब स्वीकार नहीं था।'

देवदत्त ने अस्पताल से ही फोन करके म्युनिसिपल बोर्ड से शव-वाहक मोटर बुलवाई और उस पर पुत्रबधू का शव रखकर रात में साढ़े दस बजे अपने उसी निवासस्थान में पहुँचे, जिसमें केवल डेढ़ वर्ष पूर्व अपूर्व धूमधाम और बाजे-गाजे के साथ उसे ब्याह कर लाए थे। घर पहुँचते ही कुहराम मच गया। सबकी आँखों से गंगा-यमुना की धाराएँ फूट पड़ीं। वह रात कालरात्रि की तरह अपलक बीती। सुबह गंगा-तट पर पुत्रबधू के शव की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की गई।

देवदत्त ने स्वयं पुत्रबधू का सारा क्रिया-कर्म कराया और हरीश को समझाया-बुझाया कि जिसके कारण तू पथ-विचलित हुआ, कर्त्तव्यच्युत हुआ और दुनिया की आलोचना का पात्र बना, वही जब दुनिया से उठ गई, तो अब इस प्रकार रहो कि हम माता-पिता को और दुनिया को भी तुम्हारे प्रति कोई शिकायत न रहे। मुझे तुम्हारी कमाई की एक पाई नहीं चाहिए। तुम्हारी किसी गतिविधि पर कोई नियंत्रण रखने की भी मुझे आवश्यकता नहीं। लेकिन हम लोगों के साथ तुम रहोगे, तो हमें सन्तोष रहेगा।'

और, एक महीने तक हरीश अपने माता-पिता के साथ रहा भी। परन्तु ठीक होलिका-दहन की सन्ध्या में सहसा अपना सामान लेकर पड़ोस के ही एक होटल में रहने चला गया। कह गया—'जब पत्नी के रहते हुए मैं तुम लोगों के साथ नहीं रहा, तो अब क्या रहूँगा!'

इस हरीश के विचारों पर, इसकी बातों पर और इसके व्यवहारों पर देवदत्त फिर एक बार आश्चर्यचकित रह गए। दुनियावाले भी यह न समझ सके कि अब इस हरीश के पृथक्करण का कारण क्या है!

यह हरीश न केवल दुनिया के लिए, प्रत्युत अपने माता-पिता के लिए भी एक पहेली है!

—२१—

अभूतपूर्व प्रसन्नता के बीच आज सुमित्रा का दिन समाप्त हो गया। बहुत दिनों के बाद आन्तरिक आनन्द का अनुभव आज वह कर सकी। जब से अपने पिता को वह खो चुकी है, कदाचित् ऐसा आनन्द अब तक उससे कोसों दूर ही रहा। पिता को खोकर इस विशद् विश्व में सुमित्रा अपने आपको सर्वथा अकिंचन समझने लगी थी। परन्तु परसों प्रफुल्ल घोष से मिलकर उसे जो आत्मीयता और सहानुभूति प्राप्त हुई है, उसे सुमित्रा अपने लिए किसी वरदान से कम नहीं समझ रही है। हाँ, वरदान!

कितनी आत्मीयता और सहानुभूति थी प्रफुल्ल के इन शब्दों में—'आपकी बातों से मैं यह अच्छी तरह समझ चुका हूँ कि आप अपने पिताजी को खोकर स्वयं को अकिंचन अनुभव कर रही हैं; परन्तु इस भावना को धीरे-धीरे भूलने की चेष्टा आपको करनी होगी।'

प्रफुल्ल की यह बात सुन, सुमित्रा के मन-प्राणों में उस समय जो अद्भुत-कम्पन होने लगा था, उसकी अनुभूति से वह गद्गद हो उठी थी। गद्गद हो उठने का कारण और कुछ नहीं, केवल यही था कि प्रफुल्ल ने सुमित्रा के मर्म को छू लिया था; उसकी वास्तविक व्यथा को समझ, सहानुभूति और आत्मीयता का अमृत उँड़ेल दिया था। प्रफुल्ल से यह आत्मीयता पाकर सुमित्रा को उसके प्रति गहरी कृतज्ञता प्रकट करनी थी; परन्तु जाने क्यों वह ऐसा कर नहीं सकी। सुमित्रा को इस सबका ध्यान आते ही, अपने - आप पर एक खीझ हो रही है। क्यों उसने यह कह दिया—'यह कैसे हो सकता है!'

प्रफुल्ल के स्थान पर अन्य कोई होता , तो सुमित्रा की ऐसी उचटी-उचटी बात सुनकर कदाचित् यही कह बैठता कि नहीं हो सकता, तो न सही। भाड़ में जाओ तुम और तुम्हारी अकिंचनता। परन्तु यह सुनकर प्रफुल्ल की आत्मीयता और भी गहरी हो उठी थी—'हो सकता है, सुमित्राजी ! यदि मैं गलत नहीं समझ सका हूँ, तो कह सकता हूँ कि दिवंगत आत्मा की इच्छा-अनिच्छा और सन्तोष की बात छिड़ते ही आप बहुत गम्भीर हो उठी थीं—कदाचित् अपने पिता की स्मृति से आप भर उठी थीं। इसका अर्थ मैं यह समझ सका हूँ कि आपके पिता की कोई अन्तिम इच्छा अधूरी रह गई है।'

प्रफुल्ल की यह बात सुनकर न केवल उस समय सुमित्रा को गहरा आश्चर्य हुआ था, बल्कि अब तक उसका वह आश्चर्य वैसा ही बना हुआ है। कितना ठीक है प्रफुल्ल का अनुमान ! सुमित्रा ने स्वीकार किया कि प्रफुल्लजी ने उसकी आन्तरिक व्यथा को न केवल भली-भाँति पढ़-समझ लिया है; बल्कि उसका उपचार करने का भी निश्चय कर लिया है। यदि यह बात न होती, तो सम्भाषण के सिलसिले में वह क्यों कहते—'मुझे आप अपने सुख-दुख से बहुत दूर रखना चाहती हैं?... आप जिस रोग से पीड़ित हैं, जिस चिन्ता से अभिभूत हैं, उसका कोई उपचार भी नहीं करना चाहतीं?'

सुमित्रा को हलकी-सी हँसी आ गई। अरे, इस दुनिया में ऐसा कौन रोगी होगा, जो रोगजन्य कष्ट से मुक्ति न चाहता हो—उसका उपचार न कराना चाहता हो? परन्तु जिस उपचार का यह प्रसङ्ग था, उसकी बात एक नारी—सो भी कुमारी—किसी पुरुष के समक्ष, भला कैसे स्वीकार कर सकती है ? यही कारण था कि सुमित्रा ने प्रफुल्ल के आत्मीयता से ओतप्रोत इस प्रश्न का उत्तर भी गोलमोल दे दिया था। परन्तु प्रफुल्ल इतने पर भी अपने निश्चय पर अडिग रहा—अचल रहा।

सुमित्रा के अन्तर्मन ने स्वीकार किया कि प्रफुल्लजी निश्चित रूप से उसकी ओर आकृष्ट हो चुके हैं। यदि उनका आकर्षण सच्चा न होता—

निश्छल न होता, तो मेरे पिता की अन्तिम इच्छा जानने के लिए इतना आग्रह कभी न करते। आज वह मेरे यहाँ चाय पीने आ रहे हैं; परन्तु इस शर्त्त पर कि मैं अपने पिताजी की अन्तिम इच्छा उन्हें बतला दूँ।

परन्तु पिताजी की अन्तिम इच्छा बतला देने में सुमित्रा जिस असमंजस में पड़ी है, उसे प्रफुल्ल शायद नहीं समझ रहा है। वह समझ ही कैसे सकता है? और, सुमित्रा ने स्वीकार किया कि यह सब न समझते हुए भी जब प्रफुल्ल उसकी ओर इतना आकृष्ट हो चुका है, तब सुमित्रा को भी अब किसी असमंजस की भूलभुलैयाँ में चक्कर काटना उचित नहीं। उसने निश्चय कर लिया कि आज चाय पीते समय वह अपने पिता की अन्तिम इच्छा निःसंकोच रूप से प्रफुल्ल के सामने प्रकट कर देगी।...

विद्यालय से लौटकर आज सन्ध्या समय सुमित्रा इन्हीं सब विचारों में डूबते-उतराने लगी थी। जब दीवार-घड़ी ने सुरीले स्वर में पौने सात की घण्टियाँ बजा दीं, तब सुमित्रा की विचार-धारा सहसा टूट गई। उसे स्मरण आया कि आठ बजे प्रफुल्लजी को चाय पिलाने का उसने निमंत्रण दे रक्खा है। बैठक से उठकर उसने परिचारिका को बाजार से बंगाली मिठाइयाँ, समोसे, दालमोठ और कुछ फल लाने भेज दिया। फिर रसोईघर में जाकर महराजिन से कह दिया कि ठीक आठ बजे उसे आज चाय तैयार करनी है।

प्रफुल्ल को चाय पिलाने की प्रारम्भिक तैयारियों का सिलसिला बाँधकर सुमित्रा फिर अपनी बैठक में चली गई और एक कोच पर जा बैठी।

बड़ी अधीरता से यह समय काट रही थी सुमित्रा। उसे लगता था, मानो घड़ी की सुइयाँ आज बहुत धीमी गति से सरक रही हैं। इस अधीरता पर वह बीच-बीच में खीझ भी उठती थी। आखिर प्रफुल्ल उसका है कौन? क्यों उसके लिए वह इतनी अधीर हो रही है? परन्तु दूसरे ही क्षण उसका मन पलट जाता कि वाह, प्रफुल्ल उसका क्या नहीं है? अरे, जो हमारे सुख-दुख में अपना हाथ बँटाने के लिए व्यग्र हो, उत्सुक हो और आत्मीयता का अमृत-पान कराने में स्वयं सन्तोष का अनुभव करता हो, उसे अपना नहीं तो क्या

पराया—बेगाना—कहा जा सकता है ? नहीं, भूलकर भी नहीं।

सुमित्रा की खीझ फिर कुछ बढ़ने लगी। उसने जाकर रेडियो का स्विच दबा दिया। इस समय वह कोई ऐसा सुरीला संगीत सुनना चाहती थी, जिसे सुनकर वह आत्मविभोर हो सके और इस आन्तरिक ऊहापोह से मुक्ति पाकर ऐसी दुनिया में पहुँच सके, जहाँ इस संसार का कोई दुख-दर्द न हो, अपना-पराया न हो; बल्कि चिर वसन्त की मादकता हो, सलोने सावन की बहार हो, और मन की सारी उमंगें पूरी होने में किसी विघ्न-बाधा का नाम न हो।

परन्तु सुमित्रा की यह आशा रेडियो से पूरी न हो सकी। उसे रेडियो-कार्यक्रम का ध्यान नहीं था, अन्यथा इस समय वह मादक संगीत सुनने की आशा करती ही नहीं। रेडियो का स्विच दबाते ही उसने सुना कि इस समय ग्राम-पंचायत की काँव-काँव चल रही है। तत्क्षण उसने रेडियो का स्विच 'आफ' कर दिया—बन्द कर दिया। सुमित्रा को रेडियो-कार्यक्रमों में इस 'ग्राम-पंचायत' से बड़ी नफरत है।

वह फिर कोच पर जा बैठी। उसकी खीझ बढ़ती ही जा रही थी। अपने भोले और भ्रमित मन पर उसका मानो कोई नियन्त्रण नहीं रह गया था। तभी सहसा टेलीफोन की घण्टी टनटना उठी।

क्षण-भर को उसे लगा कि बहुत सम्भव है, प्रफुल्ल का ही फोन हो। वह सोल्लास फोन के निकट जा पहुँची। रिसीवर उठाकर बोली—'हल्लो! आप कहाँ से बोल रहे हैं?'

'बोल रहा हूँ!' किसी ने दोहराया और उसके खिलखिलाने की आवाज भी सुमित्रा को सुनाई पड़ी।

सुमित्रा को यह आवाज पहचानते देर न लगी, कहा उसने—'ओहो! आप बोल रही हैं, नलिनी जीजी!'

'गनीमत है कि मेरी बोली पहचान गई, समित्रा!' नलिनी ने टेली-

फोन के दूसरे छोर से बात करते हुए कहा—'मैं समझती हूँ, इस समय तुम किसी नारी की नहीं, नर की प्रतीक्षा में हो।'

'यह आप क्या कह रही हैं, जीजी ?' सुमित्रा ने सकपकाते हुए कहा।

'मैं नहीं, तुम स्वयं पूछ रही थीं बहिन, कि आप कहाँ से बोल रहे हैं ?'

'ओहो !' सुमित्रा ने प्रकृतिस्थ होते हुए कहा—'फोन पर मैं ऐसा अकसर पूछ बैठती हूँ, जीजी ! कारण, छात्राओं के अभिभावक ही बहुधा टेलीफोन पर बात किया करते हैं।'

'अच्छा, इस मजाक को छोड़ो !' नलिनी ने कहा—'यह बतलाओ, आजकल हम लोगों से तुम नाराज क्यों हो ?'

'यह किसने कहा, जीजी ?'

'तुमने स्वयं।'

'मैंने !' गहरे आश्चर्य के साथ सुमित्रा ने कैफियत देते हुए कहा—'किससे और कब कहा मैंने ?'

'मेरी भोली बहिन !' नलिनी ने कहा— 'मेरे कहने का यह अर्थ है कि जब तुम कई दिनों तक हम लोगों से मिलती-जुलती नहीं, तब तुम्हारे कहे बिना ही हम यदि यह समझ लें कि तुम नाराज हो, तो......।'

'तो यह मेरे साथ आपका अन्याय है।' सुमित्रा ने नलिनी की बात पूरी होने के पहले ही उसे टोक दिया—'मिलने-जुलने की बात तो समय और सुविधा पर निर्भर करती है न, जीजी ! परन्तु नाराज होना या मुकर जाना तो मन का व्यापार है। और, मेरा मन स्वप्न में भी आपसे कभी मुकर नहीं सकता—नाराज नहीं हो सकता। जन्म-जन्म तक मैं आपको भूल नहीं सकती, जीजी !

'बस कर बहिन !' नलिनी ने कहा—'कृतज्ञता की इस बौछार से कहीं तुम मुझे बहा न देना।'

'डूबते को तिनके का सहारा होता है न, जीजी! जब मैं किसी प्रवाह में

बह रही हूँ, तो आपको मेरे साथ बहना ही होगा, गीला भी होना पड़ेगा—मुझे बचाने के लिए ही सही!'

'सुमित्रा, तेरा यह रहस्यवाद मेरी समझ में नहीं आ रहा है।' नलिनी ने कहा—'कुछ साफ-साफ कह, तो समझने की चेष्टा करूँ।'

'फोन पर यह सब कहना ठीक नहीं होगा, जीजी! दो-एक दिन में ही आप से मिलूँगी और सब बतलाऊँगी!'

'कुछ-कुछ तो मैं समझती हूँ, सुमित्रा! परन्तु .....।'

'परन्तु समझकर भी मेरी समस्या हल नहीं करना चाहतीं?'

'अवसर आने पर तुम्हारी पहेली सुलझाने में कुछ उठा न रखूँगी।'

'यह तो मैं भी जानती हूँ कि जीवन-संग्राम के प्रत्येक मोर्चे पर मेरा कवच बनकर मेरी जीजी ही मेरी रक्षा करेगी।' सुमित्रा ने कहा—'लेकिन अभी-अभी आपने कुछ-कुछ समझने की जो बात कही है, जीजी, वह आखिर क्या है?'

'क्या करोगी पूछकर?'

'यह देखूँगी कि मेरी जीजी कहाँ तक मेरी समस्या को समझ सकी हैं!'

'ऐसी जल्दी क्या है? जब मिलोगी, तब बतला दूँगी!'

'आपकी मर्जी!' सुमित्रा ने विरक्ति के स्वर में कहा।

'अरे! मालूम पड़ता है, तुम अभी सुनना चाहती हो। अच्छा, लो अभी सुनाए देती हूँ।'

'मेरी अच्छी जीजी! हाँ-हाँ, कहिए, मैं सुन रही हूँ।'

'कुछ-कुछ समझने का मेरा आशय यही है सुमित्रा, कि अब तुम अपने पिता की अधूरी अच्छा को शायद शीघ्र ही पूरी करना चाहती हो।'

'यह तो कोई नई बात नहीं हुई, जीजी!'

'तो नई बात भी सुन ले।' नलिनी ने कहा—'अब तू जीवन-डगर पर अकेले यात्रा नहीं करना चाहती; बल्कि किसी जीवन-संगी के साथ...।'

'बस करो, जीजी!' सुमित्रा ने बीच में ही कहा—'मालम पड़ता है, नागर जीजा ने इधर कोई नई बात...।'

'कह दी है!' नलिनी ने भी बीच में ही टोक दिया—'यही न सुमित्रा! लेकिन इसमें चौंकने की बात ही क्या है? यह सब अस्वाभाविक नहीं है। उम्र का तकाजा भी तो कोई चीज है न! खैर, अब भेट होने पर ही सारी बातें करूँगी।' और नलिनी ने सुमित्रा की अन्य कोई बात सुने बिना ही टेलीफोन का सम्बन्ध तोड़ दिया।

सुमित्रा ने भी टेलीफोन का रिसीवर यथास्थान रख दिया और कोच पर जाकर बैठ गई। उसे लगा कि प्रफुल्ल घोष और निर्मल नागर दोनों में अभिन्न मित्रता है। बहुत सम्भव है, प्रफुल्लजी ने नागर जीजा को मेरे आकर्षण का कोई सुराग दे दिया हो। और, कोई भी पुरुष अपनी पत्नी से ऐसी नई बात शायद ही छिपाकर रखता हो। फिर नागर जीजा जानते हैं कि नलिनी बहिन मुझे अपनी सहोदरा से भी बढ़कर चाहती हैं। ऐसी दशा में यदि उन्होंने प्रफुल्लजी के प्रति मेरे आकर्षण की खबर नलिनी बहिन को सुना दी हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या हो सकता है!

सुमित्रा ने स्वीकार किया कि नलिनी बहिन का यह कथन ठीक ही है—'उम्र का तकाजा भी तो कोई चीज है न! यह सब अस्वाभाविक नहीं।' फिर ऐसा हो जाने में सुमित्रा की कोई हानि भी तो नहीं। आखिर उसका आकर्षण छिपा तो रहेगा नहीं। छिपाकर वह स्वयं नहीं रखना चाहती। अतः जो कुछ हो रहा है, सब ठीक है।

सुमित्रा इसी विचार-धारा पर शायद अधिक समय तक तिरती रहती; परन्तु परिचारिका ने आकर उसे टोक दिया, कहा—'फल और मिठाइयाँ मैं ले आई हूँ, आचार्याजी।'

सुमित्रा ने प्रकृतिस्थ होते हुए कहा—'अच्छा, इसी कमरे में प्रफुल्ल घोष आज चाय पिएँगे। आठ बजे वह आएँगे। सारी तैयारी कर रक्खो।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'कर सकोगी तुम यह सब?'

'क्यों नहीं !' परिचारिका ने कहा—'चाय पिलाने की तैयारी कुछ पहली बार थोड़े ही कर रही हूँ। आपके यहाँ रहकर यह तो मेरे बाएँ हाथ का काम हो गया है, आचार्याजी !'

'अच्छा, तो जाओ।' महराजिन से कहकर चाय की सब तैयारी कर रक्खो। पन्द्रह-बीस मिनट में घोष साहब आते ही होंगे।'

'जी, अच्छा !' कहकर परिचारिका उस कमरे से चली गई।

–२२–

आठ बजने में ठीक पाँच मिनट शेष थे कि बाहरी दरवाजे पर किसी मोटर के रुकने की आवाज सुनाई पड़ी। सुमित्रा समझ गई कि प्रफुल्लजी आ गए हैं। कोच से उठकर वह सोल्लास अपने अतिथि का स्वागत करने बाहर जा पहुँची।

बाहरी बरामदे में पहुँचकर सुमित्रा ने देखा कि प्रफुल्ल घोष अपनी मोटर से उतरकर बरामदे की तरफ आ रहे हैं। सुमित्रा के बढ़ते पग सहसा रुक गए। वह बरामदे में ही खड़ी हो गई। शायद यह प्रतीक्षा करने लगी कि प्रफुल्ल स्वयं उसके निकट आकर उसे अभिवादन करे। परन्तु उसी क्षण उसे लगा कि यह ठीक न होगा । किसी आमन्त्रित व्यक्ति को अपने घर बुलाकर ऐसी झिझक और अपेक्षा अशोभन ही कही जाएगी।

सुमित्रा इसी प्रकार अपने-आपमें उलझ रही थी कि प्रफुल्ल ने उसके निकट पहुँचकर कहा—'मैं समझता हूँ, ठीक समय पर ही मैं आ गया हूँ।'

प्रफुल्ल की बात मानो सुमित्रा के कानों में प्रवेश नहीं कर सकी। उसने चुपचाप अपने दोनों हाथ उठाकर प्रफुल्ल को अभिवादन किया और कहा—'आइए, घोष साहब!'

सुमित्रा के अभिवादन से प्रफुल्ल को प्रसन्नता तो हुई; किन्त यह देख उसे कुछ आश्चर्य भी हुआ कि सुमित्रा अपने-आपमें कुछ खोई-सी और उलझी-सी है। यदि यह बात न होती, तो प्रफुल्ल की बात का वह कुछ-न-कुछ उत्तर अवश्य देती। प्रफुल्ल को जैसे सहसा कोई स्मरण आ गया और

उसने पूछा—'मालूम पड़ता है, इस समय आपके मानस में कोई ज्वारभाटा आ गया है, सुमित्राजी !'

सुमित्रा ऐसे रहस्यपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने के लिए तनिक भी प्रस्तुत नहीं थी। उसने आश्चर्य से भरकर प्रफुल्ल की ओर देखा और भीतरी कमरे की तरफ बढ़ते हुए कहा—'कैसा ज्वारभाटा, घोष साहब ?'

'यह तो आप स्वयं समझती होंगी, सुमित्राजी !' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा—'कल आप कह रही थीं न, मानव के मानस में कब, कैसा ज्वार-भाटा आ जाता है, इसे सदा शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।'

'हाँ, कहा तो था; परन्तु इस समय इस प्रसंग का आशय मैं नहीं समझ सकी।'

अब तक सुमित्रा अपनी बैठक में पहुँच चुकी थी। अतः प्रफुल्ल से एक कोच पर बैठने का संकेत करते हुए उसने कहा—'बैठिए तो सही, फिर अपनी पहेली का विश्लेषण कीजिए।'

प्रफुल्ल जब कोच पर बैठ गया, तो निकट ही पड़े दूसरे कोच पर सुमित्रा भी बैठ गई और बोली—'हाँ, अब आप अपनी बात साफ-साफ कहिए, तो उसका उत्तर देने की मैं चेष्टा करूँ।'

'मैंने ऐसी कोई अस्पष्ट बात नहीं कही, जिसका स्पष्टीकरण करना पड़े।'

'तब ज्वारभाटे की बात आपको कैसे याद आई ?'

'इसलिए कि आप अपने-आपमें खोई-सी और उलझी-सी दीख पड़ीं।' प्रफुल्ल ने कहा—'मैंने आपसे आते ही कहा था कि ठीक समय पर ही सम्भवतः मैं आ गया हूँ। परन्तु आपने उसे एकदम सुना ही नहीं।'

'ओह! अब समझी!' सुमित्रा ने कहा और तनिक खुलकर हँस पड़ी वह। हँसी समाप्त होते ही उसने कहा—'आपका अनुमान गलत नहीं है। जाने क्यों, आपके आते ही मैं कुछ उलझ गई थी अपने-आपमें।'

'तो मैं थोड़ी देर के लिए यहाँ से चला जाऊँ?'

'नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है ? यह मैंने कब कहा ? आप आखिर मुझे ठीक-ठीक समझने की चेष्टा क्यों नहीं करते, घोष साहब ?'

'चेष्टा तो मैं बराबर कर रहा हूँ, सुमित्राजी !' प्रफुल्ल ने स्निग्ध मुसकराहट के साथ कहा—'परन्तु सफलता नहीं मिल रही है।'

'कभी-न-कभी सफलता मिल ही जाएगी !' सुमित्रा ने प्रफुल्ल की निश्छलता पर न्योछावर होते हुए अचानक ही कह दिया।

परन्तु दूसरे ही क्षण उसे उपनी इस अभिव्यक्ति पर खीझ हो आई। आखिर उसे यह बात कहने की अभी आवश्यकता ही क्या थी ? क्या समझेंगे प्रफुल्लजी उसकी इस अभिव्यक्ति का अर्थ ? सोचते होंगे, सुमित्रा भी साधारण नारी-जैसी ही चंचल है। फिर उसने अपने-आप ही यह सोचकर सन्तोष कर लिया—ऊँह ! ऐसी तनिक-तनिक-सी बातों पर वह कहाँ तक विचार किया करेगी और सरदर्द मोल लिया करेगी। तभी उसने कोच के सामने रखी मेज पर विजड़ित बिजली का एक बटन दबा दिया, जिसकी सुरीली टनटनाहट निकट के ही किसी दूसरे कमरे में साफ-साफ सुनाई पड़ी।

दो मिनट के भीतर ही प्रफुल्ल ने देखा कि एक परिचारिका चाय का ट्रे लेकर हाजिर हो गई और दबे पाँव अदब के साथ प्रफुल्ल के सामने एक छोटी मेज पर रखकर चली गई।

बंगाली मिठाइयों, नमकीन और फलों के साथ चाय देखकर सुमित्रा की सुरुचि का अनुमान कर प्रफुल्ल एक अव्यक्त प्रसन्नता से भर उठा। लगभग वही चीजें सुमित्रा ने चाय के साथ प्रस्तुत की थीं, जो प्रफुल्ल ने कल सुमित्रा के लिए जुटा रक्खी थीं। ऐसा करने में सुमित्रा की अन्य कोई भी भावना रही हो; परन्तु इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्रफुल्ल की रुचि का उसने विशेष ध्यान रक्खा है।

प्रफुल्ल ने सुमित्रा के साथ चाय पीते हुए आन्तरिक प्रसन्नता का अनुभव किया। उसे सहसा अपनी दिवंगत पत्नी—शैल—का स्मरण हो आया। शैल में सबसे बड़ा गुण यही था कि वह प्रफुल्ल की रुचि-अरुचि का सदा ध्यान रखती

थी। रूप-रङ्ग का जहाँ तक सम्बन्ध है, सुमित्रा की ओर प्रफुल्ल पहले से ही आकृष्ट हो चुका है। उसके शिष्ट व्यवहार और मधुर वाणी से भी प्रफुल्ल अत्यन्त प्रभावित हो चुका है। और, आज रुचि-अरुचि को परखने की यह विशेषता देखकर तो प्रफुल्ल मानो इस सुमित्रा पर एकदम न्योछावर हो उठा।

चाय पीते-पीते प्रफुल्ल ने कहा—'मैं देखता हूँ, सुमित्राजी; आपमें वही सारी विशेषताएँ हैं, जो मेरी दिवंगत पत्नी शैल में थीं।'

सुमित्रा चुप रही। प्रफुल्ल की इस बात का वह उत्तर ही क्या देती ? हाँ, प्रफुल्ल की यह बात सुन, सुमित्रा का रोम-रोम गद्गद अवश्य हो उठा।

'अरे ! आप चुप क्यों हैं ?' प्रफुल्ल ने कहा—'क्या मेरी इस बात से आपको कुछ बुरा लग गया ?'

'ऊँहुँ !' सुमित्रा ने सिर हिलाते हुए कह दिया।

'तब मैं अपनी बात आगे बढ़ा सकता हूँ ?'

'ऊँहुँ !' सुमित्रा ने सिर हिलाते हुए प्रफुल्ल को ऐसा करने से रोक दिया।

'क्यों ?' प्रफुल्ल ने अधीरता के साथ छोटा-सा प्रश्न किया।

'इसलिए कि आपकी स्मृति इस समय जिस रस-सागर में डूब-उतरा रही है, उसे आप इस पृथ्वी पर शायद न पा सकें।'

'सुमित्राजी ! आप कभी-कभी बहुत गम्भीर होकर बात करने लगती हैं।' प्रफुल्ल ने व्यग्रता के साथ कहा—'और मैं आपका आशय एकदम नहीं समझ पाता।'

'यह बात तो गम्भीर नहीं है, घोष साहब !' सुमित्रा ने प्रफुल्ल की ओर दृष्टिनिक्षेप करते हुए कहा—'आप अपनी स्नेहशीला पत्नी का जो स्मरण कर रहे हैं, और उनकी जिन विशेषताओं की झलक मुझमें देखने की बात कह रहे हैं, मैं कहती हूँ, यह सब आपका दृष्टि-दोष है।'

प्रफुल्ल मानो आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़ा ! क्या कह रही है यह

सुमित्रा ! यह सब मेरा दृष्टिदोष है? तो क्या मैंने इस सुमित्रा को लेकर अब तक जिस काल्पनिक रंगमहल का निर्माण किया है, वह सब इन्द्रजाल ही है? उसने कुछ खीझ प्रकट करते हुए कहा—'अब तक आप गम्भीर ही थीं; परन्तु अब रहस्यमयी हो रही हैं। क्या आप अपनी बात का विश्लेषण कर सकती हैं ?'

'किस बात का विश्लेषण ?'

'दृष्टिदोष वाली बात का।'

'अरे! यह तो कोई रहस्यमयी बात नहीं है, घोष साहब!' सुमित्रा ने मधुर मुसकराहट के साथ कहा—'फिर भी आपका आग्रह है, तो मैं इसका विश्लेषण किए देती हूँ। देखिए, ईश्वर की इस सृष्टि में—संसार में—दो व्यक्तित्त्व कभी एक-से नहीं पाए जाते। ईश्वर साधारण कलाकार नहीं है। उसकी कला-सृष्टि में कुछ-न-कुछ अन्तर सर्वत्र पाया जाता है। इतने पर भी यदि दो नारियों में आप समानता देख रहे हैं, सारी विशेषताएँ एक-सी देख रहे हैं, तो यह आपका दृष्टिदोष ही कहा जाएगा न?'

सुमित्रा की पैनी बुद्धि पर प्रफुल्ल स्तब्ध रह गया। किस सुन्दर ढंग से सुमित्रा ने अपनी बात का विश्लेषण कर दिया कि प्रफुल्ल निरुत्तर-सा रह गया। उसके अन्तर्मन ने स्वीकार किया कि वास्तव में सुमित्रा का कथन सत्य है—ईश्वर साधारण कलाकार नहीं है। उसकी कला-सृष्टि में दो व्यक्तित्त्व कभी एक से नहीं पाए जाते। उनमें कुछ-न-कुछ अन्तर अवश्य रहता है। कुछ समय लगा प्रफुल्ल को सुमित्रा की इस बात का उत्तर देने में।

प्रफुल्ल को इस प्रकार मौन देख, सुमित्रा ने कहा—'यह मैं कभी नहीं मान सकती कि शैल बहिन की सारी विशेषताएँ मुझमें होंगी।'

'न सही सारी विशेषताएँ, परन्तु अधिकांश विशेषताएँ आपमें हैं।' प्रफुल्ल ने अपनी पराजय स्वीकार करते हुए कहा—'मेरा मतलब जिन विशेषताओं से है, सुमित्राजी, उनका उल्लेख किए बिना काम न चलेगा। रूप-रङ्ग, शिष्ट व्य-वहार और मधुरवाणी के साथ आपमें मेरी रुचि-अरुचि को समझने की जो विशे-

षता है, वह मेरी शैल की स्मृति को साकार रूप देने के लिए पर्याप्त है।'

'अब मैं आपकी बात मान सकती हूँ।' सुमित्रा ने कहा और पुनः मेज पर लगे बिजली के बटन को दबा दिया, जिसकी सुरीली टनटनाहट फिर किसी दूसरे कमरे में साफ-साफ सुनाई पड़ी। इसके साथ ही परिचारिका आ पहुँची और चाय-नाश्ते के खाली पात्रों को लेकर तथा मेज को साफ करके चली गई। दो-एक मिनट के भीतर ही वह पान के बीड़े और सिगरेट का डिब्बा लाकर प्रफल्ल के सामने रख गई।

–२३–

सुमित्रा की सुरुचि और आधुनिकता को इतने निकट से देखने का प्रफुल्ल के लिए यह पहला अवसर था। परिचारिका को बुलाने आदि की यांत्रिक व्यवस्था देख, प्रफुल्ल दंग रह गया। वह स्वयं एक लक्ष्मीपुत्र है; परन्तु ऐसी व्यवस्था अब तक वह अपने निवास-स्थान में नहीं कर सका।

'पान और सिगरेट लीजिए, घोष साहब!' सुमित्रा ने अनुरोध करते हुए पान की तश्तरी और सिगरेट का डिब्बा प्रफुल्ल की ओर बढ़ाते हुए कहा और स्वयं भी पान के दो बीड़े लेकर चबा लिए।

प्रफुल्ल ने पान के बीड़े चबाकर सिगरेट सुलगाया और कहा—'देखता हूँ, आपकी रहन-सहन का ढंग एकदम आधुनिक है।

'बीसवीं सदी में रहकर और इतना पढ़-लिखकर मानव आधुनिक तौर-तरीकों को अपनाए बिना रह नहीं सकता, घोष साहब! इस वैज्ञानिक युग में हमारा सारा जीवन यांत्रिक हो उठा है। बिना यन्त्रों की सहायता के हम सुविधा-पूर्वक रह नहीं सकते।'

'सुविधाओं का जहाँ तक संबंध है, निश्चय ही यन्त्रों का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है; परन्तु इससे मानव-जीवन में निष्क्रियता आ जाती है—वह अपने हाथ-पैर हिलाने में भी कष्ट का अनुभव करने लगता है।'

'प्रत्येक वस्तु के दो पहलू होते हैं, घोष साहब!' सुमित्रा ने प्रफुल्ल की बात काटते हुए कहा—'फूल के साथ काँटों का, प्रकाश के साथ अन्धकार का और

जीवन के साथ मृत्यु का अविच्छिन्न सम्बन्ध है।' और सुमित्रा मुसकरा उ ी।

यह बात सुनते ही प्रफुल्ल को मानो किसी विस्मृत बात का स्मरण आ गया। कहा उसने—'आप बिलकुल ठीक कह रही हैं, सुमित्राजी! जीवन के साथ मृत्यु की बात सुनते ही मुझे एक बात याद आ गई।'

'वह क्या?' सहज जिज्ञासा के साथ सुमित्रा ने प्रश्न किया।

'आपके स्वर्गीय पिताजी की अन्तिम और अधूरी इच्छा जानने की।' कल आपने वादा भी किया था बतला देने का।'

'हाँ, किया था। आज आपको अवश्य बतलाऊँगी। लेकिन परलोक संबंधी जिन बातों का आपने अध्ययन किया है, वे सुन लूँ तव यह सब बतलाऊँगी।'

'अपनी शैल को खोकर परलोकवाद का थोड़ा-बहुत अध्ययन मुझे करना ही पड़ा, सुमित्राजी! आत्मा के अस्तित्त्व पर पहले मेरा विश्वास नहीं था; परन्तु अब हो गया है।'

'इसका कोई प्रमाण भी है?' सुमित्रा ने प्रश्न किया।

'क्यों नहीं।' प्रफुल्ल ने कहा—'आत्मा का अस्तित्त्व अक्षुण्ण न रहता, तो पुनर्जन्म का एक भी उदाहरण हमें इस दुनिया में कहीं खोजने पर भी न मिलता! यदि इस शरीर के साथ आत्मा का भी अन्त हो जाया करता, तो पुनर्जन्म होता ही कैसे? पत्र-पत्रिकाओं में, सम्भव है, पुनर्जन्म के कुछ उदाहरण आपन भी पढ़े होंगे।'

'ऐसे समाचार पढ़े अवश्य हैं; परन्तु जाने क्यों, पुनर्जन्म पर मुझे सहसा विश्वास नहीं होता।'

'परलोक में पहुँचकर यह विश्वास भी हमें कर लेना पड़ता है।'

'लेकिन परलोक में पहुँच जाने के बाद हमारा विश्वास-अविश्वास इस दुनिया के किसी मानव को ज्ञात ही कैसे हो सकता है?'

'आत्माओं से बातचीत करके हम यह जान लेते हैं, सुमित्राजी! इसीलिए तो मैंने परलोकवाद का अध्ययन किया है।' प्रफुल्ल ने सुमित्रा

की जिज्ञासा शान्त करने का प्रयत्न करते हुए कहा—'पटना का एक उदाहरण सुनकर सम्भवतः तुम्हारी जिज्ञासा शान्त हो जाएगी। वहाँ के एक कांग्रेस कार्यकर्त्ता स्वर्गीय मजहरुल हक के पुत्र का देहान्त हो जाने पर, परलोक विद्या से उनका बड़ा अनुराग हो गया था। उन्होंने अपने पुत्र की आत्मा का आह्वान कर पूछा कि पुनर्जन्म के संबंध में उसका क्या विचार है। पुत्र ने कहा कि जीवित अवस्था में उसे पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं था; परन्तु परलोक में उसने प्रत्यक्ष देखा कि वहाँ की अनेक आत्माएँ मृत्युलोक में आती हैं। इसलिए वह भी पुनर्जन्म में विश्वास करने लगा है।'

'तब तो हमें भी विश्वास करना पड़ेगा।' सुमित्रा ने कहा और उत्सुकता के साथ पूछा—'अच्छा, यह तो बतलाइए, परलोकगत व्यक्ति की आत्मा को बुलाने से उसे कोई कष्ट तो नहीं होता?'

'यह हमारा भ्रम है, सुमित्राजी! आत्माओं से की गई बातचीत द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि यहाँ बुलाने से उन्हें कोई कष्ट नहीं होता; बल्कि प्रसन्नता होती है और कभी-कभी वे हमें सहायता भी पहुँचाती हैं। लेकिन कुछ आत्माएँ ऐसी भी होती हैं, जो यहाँ नहीं आना चाहतीं। ऐसी आत्माएँ बुलाने पर भी नहीं आतीं। यदि कभी आ जाती हैं, तो यही कहती हैं कि उन्हें हम न बुलाया करें। कभी-कभी यह भी होता है कि किसी विशेष आत्मा को बुलाने पर उसके साथ दूसरी आत्माएँ भी आ पहुँचती हैं और वे भी अपने सन्देश दे जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि अधिकांश आत्माएँ हम लोगों से बात करने की इच्छुक रहती हैं।'

'परलोकगत आत्माओं से सम्बन्ध स्थापित करने की विधि क्या है, प्रफुल्लजी?'

'मालूम पड़ता है, आज आप परलोकवाद सम्बन्धी सारी बातें पूछकर ही दम लेंगी, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने एक सिगरेट सुलगाते हुए कहा—'क्या आप अपने दिवंगत पिताजी की आत्मा को बुलाना चाहती हैं?'

'यदि मैं कहूँ कि हाँ, तो यह अस्वाभाविक न होगा, प्रफुल्लजी!' सुमित्रा

ने कहा—'लेकिन यह निश्चय तो तभी किया जा सकेगा, जब मैं आपसे इस सम्बन्ध की सारी बातें जान लूँ और यह समझ लूँ कि ऐसा करना सम्भव होगा अथवा नहीं।'

'सम्भव क्यों न होगा!' प्रफुल्ल ने सिगरेट का एक कश खींचकर और ढेर-सा धुआँ नाक के दोनों नथुनों तथा मुंह से उगलते हुए कहा—'मैं स्वयं अपनी स्वर्गीया पत्नी—शैल—की आत्मा को दो-तीन बार बुला चुका हूँ और उससे बातचीत कर चुका हूँ।'

'यदि आप इन आत्माओं से सम्बन्ध स्थापित करने की विधि बतला दें, तो मैं भी अपने पिता की आत्मा को बुलाना चाहूँगी।'

'परलोकगत आत्माओं से सम्बन्ध जोड़ने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं। पहली यह कि जो लोग प्रयोग करें, उनकी मनोदशा एकदम शुद्ध हो, अर्थात् उनमें पक्षपात या अविश्वास की भावना न हो। दूसरी बात यह कि एक माध्यम हो और तीसरी यह कि जिस आत्मा का आह्वान किया जाए, उसकी सहायता मिल सके।'

'पक्षपात या अविश्वासवाली बात तनिक स्पष्ट कीजिए, घोष साहब!' सुमित्रा ने अनुरोध के स्वर में कहा।

'परलोक-विज्ञान को आध्यात्मिक विज्ञान माना गया है, सुमित्राजी! जब तक हम सच्चे मन और शुद्ध भाव से आत्मा का आह्वान नहीं करेंगे, तब तक आत्मा आ नहीं सकेगी। शंकित हृदय से आत्मा को बुलाने में हम कभी सफल नहीं हो सकते। एक बात और: प्रयोग के समय कुछ सुगन्धित पुष्प और अगरबत्ती आदि भी हों, तो इससे आत्माओं को बल मिलता है और हमारा प्रयोग अधिक सफल होता है।'

'और माध्यम किसे बनाना चाहिए? किसी स्त्री को या पुरुष को?'

'इसके लिए कोई बन्धन नहीं। स्त्री या पुरुष कोई भी माध्यम हो सकता है। माध्यम के द्वारा ही हम आत्माओं से बातचीत कर सकते हैं, उनके सन्देश और

फोटो ले सकते हैं और उन्हें प्रयत्क्ष देख भी सकते हैं।' प्रफुल्ल ने कहा।

'प्रत्यक्ष देख सकते हैं!' सुमित्रा ने आँख फाड़कर प्रफुल्ल की ओर देखते हुए कहा—'यह आप क्या कह रहे हैं?'

'मैं एकदम सत्य कह रहा हूँ, सुमित्राजी! आपको आश्चर्यान्वित करने क लिए मैं यह सब नहीं कह रहा हूँ। एक पाश्चात्य लेखक श्री हेरी प्राइस ने अपनी पुस्तक 'फिफ्टी ईयर्स ऑफ फिजिकल रिसर्च' में एक ऐसी ही आँखों देखी घटना का उल्लेख किया है।'

'मुझे भी सुनाइए न, वह घटना!' सुमित्रा ने अनुरोध किया।

'संक्षेप में वह घटना इस प्रकार है: एक लड़की थी रोसेली। उसके पिता प्रथम महायुद्ध में मारे गए थे। विधवा पत्नी और इस पुत्री को वह छोड़ गए थे। कुछ वर्षों के बाद इस पुत्री का भी देहान्त हो गया। रोसेली की माँ परलोक-विद्या को जानती-मानती थी। उसने प्रयोग किए और रोसेली की आत्मा आने लगी। श्री हेरी स्वयं एक दिन इस प्रयोग में सम्मिलित हुए। प्रयोग के समय उन्हें लगा कि कोई वस्तु उनके निकट आ पहुँची है। आँखों से वह वस्तु दिखाई तो नहीं दी; परन्तु एक प्रकार की सुगन्ध आने लगी। इसके बाद उनके घुटने पर किसी कोमल वस्तु का स्पर्शानुभव हुआ। श्री हेरी ने रोसेली की माँ से आज्ञा लेकर उसके सिर पर हाथ फेरा, तो हाथों को कुछ उष्णता का अनुभव हुआ। यह उष्णता उतनी नहीं थी, जितनी साधारण मनुष्य के शरीर में होती है। श्री हेरी ने उसे श्वास लेते हुए भी देखा। उसके शरीर पर हाथ फेरने से उन्हें पता चला कि वह तीन फुट सात इंच की होगी। इतना आकार किसी छः वर्ष की लड़की का ही हो सकता है। पूछने पर पता चला कि मृत्यु के समय रोसेली छः वर्ष की ही थी।'

'जब रोसेली की आत्मा की लम्बाई उतनी ही थी, जितनी कि मृत्यु के समय उसके शरीर की थी, तब आत्मा और जीवित व्यक्ति के आकार में अन्तर क्या रहा?' सुमित्रा ने अपनी शंका प्रकट की।

'निश्चय ही कोई अन्तर नहीं; परन्तु इसे हम आत्मा नहीं, सूक्ष्म शरीर कह सकते हैं। कारण, कुछ आत्माओं के फोटो भी लिये जा चुके हैं, जिनसे उन्हें स्पष्ट रूप में पहचाना जा सकता है। यदि परलोकगत आत्मा और जीवित व्यक्ति के आकार में अन्तर होता, तो हम उन्हें हरगिज न पहचान सकते। फिर इसका एक प्रमाण और है, सुमित्राजी! श्री हेरी ने रोसेली की आत्मा का हाथ उठाया और उसकी नाड़ी भी देखी थी। उसके हृदय के पास अपना कान ले जाकर हृदय की धड़कन भी सुनी थी।'

'कहाँ-से-कहाँ पहुँच गए हम लोग!' सुमित्रा ने कहा—'आत्मा से संबंध जोड़ने की विधि तो अब तक आपने बतलाई नहीं?'

'यह विषय ही ऐसा है, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा—'अच्छा, अब मैं आपको आत्माओं से बात करने की सबसे सरल विधि बतलाता हूँ। इसके लिए तीन पैरों की एक गोल मेज आवश्यक है, जो डेढ़ फुट चौड़ी और ढाई फुट ऊँची हो। इस मेज के चारों ओर चार व्यक्ति कुर्सियों पर बैठ जाएँ और अपने हाथ उस मेज पर हलके रूप से रखकर आत्मा का आह्वान करें।'

'यह आह्वान कैसे किया जाता है?' सुमित्रा ने प्रश्न किया।

'वह भी बतला रहा हूं।' प्रफुल्ल ने कहा—'प्रयोग करनेवाले ऐसी ही आत्माओं का आह्वान करें, जो उनकी परिचित हों। आह्वान करते समय हमें ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि अमुक आत्मा को हमसे बात करने की वह अनुमति दे। ईश-प्रार्थना के बाद जिस आत्मा का हम आह्वान करना चाहते हों, उससे भी प्रार्थना करनी पड़ती है कि हम उससे बात करना चाहते हैं। वह कृपापूर्वक आवे। पितृगण दुष्टात्माओं से हमारी रक्षा करें।'

'ठहरिए, प्रफुल्लजी!' सुमित्रा ने प्रफुल्ल को टोक दिया—'मैं अपनी दो-एक शंकाओं का समाधान यहाँ चाहती हूँ।

'कहिए, क्या शंकाएँ हैं आपकी?'

'पहली शंका यह है कि ईश-प्रार्थना तो आस्तिक ही कर सकता है, नास्तिक

नहीं। इस दशा में क्या आत्माओं से बात करने के लिए आस्तिक होना आवश्यक है ?'

'हाँ, सुमित्राजी ! आस्तिक व्यक्ति ही परलोक-गत आत्माओं से बात कर सकता है, नास्तिक नहीं। फिर यह आस्तिकता और नास्तिकता तो इस मृत्यु-लोक का ही झमेला है। परलोक में जाकर कोई भी आत्मा नास्तिक नहीं रह पाती। वहाँ सबको आस्तिक हो जाना पड़ता है। एक नास्तिक आत्मा ने अपन संदेश में यह तथ्य प्रकट किया था। अब आपकी दूसरी शंका क्या है ?'

'यह कि दुष्ट आत्माएँ हमें कुछ हानि भी पहुँचाती हैं क्या ?'

'अवश्य ! भूत-चुड़ैलों की बातें आपने सुनी ही होंगी। ये दुष्ट आत्माएँ तरह-तरह से मनुष्यों को परेशान करती हैं। प्रयोग करते समय कभी-कभी ये आत्माएँ बीच में ही आ जाती हैं और परेशान करने लगती हैं।'

'और आत्माओं के आह्वान का प्रयोग कितनी देर तक करना पड़ता है, घोष साहब ?'

'यों तो प्रयोग अधिक-से-अधिक पन्द्रह मिनट तक ही करना चाहिए; लेकिन यह आवश्यक नहीं कि सफलता मिल ही जाएगी। सफलता न मिलने पर भी पन्द्रह मिनट के बाद प्रयोग स्थगित कर देना चाहिए। फिर दूसरे दिन वही प्रयोग दोहराया जाए। कभी-कभी पहले ही दिन सफलता मिल जाती है और कभी-कभी छः-छः महीने तक लगातार प्रयोग करना पड़ता है।'

'छः छः महीने !' सुमित्रा ने साश्चर्य दोहराया—'बाप रे ! तब यह प्रयोग सबके लिए सम्भव नहीं।'

'है क्यों नहीं, सुमित्राजी ! इसके लिए अथक धैर्य्य आवश्यक है। प्रयोग की सफलता तो प्रयोग करनेवालों के विश्वास, उनकी शान्ति और पवित्रता पर निर्भर करती है।'

''यह कैसे पता चलता है कि जिस आत्मा को हमने बुलाया है, वह आ गई या नहीं ?' सुमित्रा ने प्रश्न किया।

'इसके लिए हमें मेज पर होनेवाली 'खट-खट' के आधार पर सांकेतिक लिपि निश्चित कर लेनी पड़ती है। जैसे, एक खटके के लिए 'अ' और दो खटकों के लिए 'आ', अथवा एक खटके के लिए 'हाँ' और दो के लिए 'नहीं'। इस प्रकार जब हमारी मेज पर 'खट्-खट्' करनेवाले खटके होने लगें, तब हमें समझ लेना चाहिए कि आत्मा आ गई है और हमसे बातचीत करना चाहती है। जहाँ तक बने, प्रारंभ में आत्माओं से ऐसे ही प्रश्न किए जाएँ, जिनके उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दिए जा सकें। इस प्रकार हम आत्माओं से अनेक प्रश्न कर सकते हैं और उनके उत्तर भी प्राप्त कर सकते हैं।'

'आत्माएँ स्वयं लिखकर हमारे प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकतीं क्या?'

'दे क्यों नहीं सकतीं; लेकिन यह सब माध्यम पर निर्भर करता है। यदि माध्यम-शक्ति प्रबल और पवित्र होती है, तो वह अपने हाथ में जो पेन्सिल या कलम लेकर बैठ जाती है, वह आत्मा की प्रेरणा से स्वयं कागज पर प्रश्नों के उत्तर अंकित करने लगती है। यहीं नहीं, बल्कि विदेशों में तो कुछ ऐसे प्रयोग भी किए जाते हैं, जिनमें आत्माओं की आवाज भी स्पष्ट सुनाई पड़ती है। आत्माओं के फोटो भी लिए जा चुके हैं। परन्तु ये प्रयोग हम लोगों के लिए सहज-सरल नहीं।'

'कहते हैं, मरते समय असह्य वेदना होती है। इस सम्बन्ध में आपका परलोकवाद क्या कहता है, प्रफुल्लजी?'

'एलन कार्डेक के मतानुसार यह कष्ट सूक्ष्म और स्थूल शरीर के पारस्परिक सम्मिश्रण पर निर्भर करता है। सूक्ष्म शरीर जब स्थूल शरीर को जल्द छोड़ देता है, तब क ट क न होता है। परन्तु अनेक आत्माओं से यह पता चल गया है कि यह कष्ट तभी तक रहता है, जब तक शरीर से आत्मा पृथक् नहीं हो जाती। इसके पश्चात् कोई कष्ट नहीं रह जाता।'

'आत्माओं के द्वारा परलोक की रूपरेखा का भी कोई पता चल सका या है नहीं?'

'हाँ, एक आत्मा ने इस संबंध में उत्तर दिया था कि परलोक में वह वृद्ध

नहीं है; बल्कि तरुण की भाँति शक्तिशाली ह। उसका काया-पलट हो चुका है। उसे कोई कष्ट नहीं है, बल्कि असीम प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। स्थूल शरीर से आत्मा का विच्छेद होते ही वह शून्य आकाश में पहुँच गया और किसी अज्ञात लहर के द्वारा ऐसे स्थान में जा पहुँचा, जहाँ सुख ही सुख है। परलोक का अस्तित्त्व पृथ्वी के जीवन का ही एक भाग है। वहाँ भी पृथ्वी के जीवन की रूपरेखा बनी रहती है। हमारा स्वभाव बिलकुल नहीं बदलता। हमारी भावनाएँ भी ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। केवल यह अनुभव होने लगता है कि हमारे सिर से एक बोझ उतर गया। जब कोई आत्मा परलोक में जाती है, तो उसकी सम्बन्धी आत्माएँ उसके समीप आ जाती हैं। पृथ्वी के संबंधियों का स्पर्श भी वह आत्मा यहाँ बराबर करती है; किन्तु उपयुक्त माध्यम के बिना वह अपने-आपको प्रकट नहीं कर सकती। स्वभावतः आत्माओं की इच्छा पृथ्वी पर आने की नहीं होती, फिर भी उन्हें अपनी सन्तान से प्रेम रहता है। यदि परिजन दुखी रहते हैं, तो आत्मा को भी दुख होता है। परलोक में भी आत्माएँ परस्पर मिलकर सत्संग का लाभ उठाती हैं। वहाँ के पुष्प बहुत ही सुन्दर और सुगन्धित होते हैं। परलोक में आत्मा का जो सूक्ष्म शरीर रहता है, उसमें स्थूल शरीर की भाँति ही अनुभूति होती है। इस सूक्ष्म शरीर की आकृति, चिह्न और भाव, सब स्थूल शरीर जैसे ही होते हैं। श्राद्ध कर्म, पिण्डदान आदि से आत्माओं को बड़ा सन्तोष मिलता है।'

'परलोकवाद के संबंध में आज आपने प्रायः सभी बातें मुझे बतला दी हैं। ये बातें कौतूहलप्रद तो हैं ही, साथ ही बड़े काम की हैं। इन बातों को जानकर हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि हमें सात्विक जीवन बिताने का अभ्यास डालना चाहिए।'

'परन्तु संन्यासी बन जाने की आवश्यकता भी नहीं है, सुमित्राजी!'

'आप विश्वास रखें, मैं संन्यासिनी नहीं बनूँगी।' सुमित्रा ने कहा—'और यही मेरे पिताजी की अन्तिम तथा अधूरी इच्छा है।'

'मुझे सच्चा सुख होगा, सुमित्राजी, यदि मैं आपके पिताजी की अधूरी इच्छा को पूर्ण करने में तनिक भी आपके काम आ सकूं।' फिर एक क्षण रुककर प्रफुल्ल ने कहा—'आप जब चाहें, मुझे कसौटी पर कस सकती हैं।'

'अवसर आने पर आपका सहारा लेने में मुझे भी प्रसन्नता होगी। आज इतना अधिक समय देने के लिए मैं आपकी कृतज्ञ हूँ।' और बाहर तक जाकर सुमित्रा ने प्रफुल्ल को बिदा कर दिया।

-२४-

पुत्र-विच्छेद की प्रलयङ्कर आँधी और जर्जर तन की व्याधियों से संघर्ष करते-करते देवदत्त की पत्नी—मीरादेवी—का जीवन-दीप एक दिन सहसा बुझ गया। पुत्र के पृथक्करण का अभिशाप मीरादेवी को जिस हृद्रोग के प्रबल दौरों के रूप में मिला, उसे देवदत्त अपनी सारी शक्तियाँ लगाकर भी दूर न कर सके। महँगे-से-महँगा उपचार उन्होंने कराया; किन्तु विधि-विधान के समक्ष उनकी एक न चल सकी।

पत्नी को सदा के लिए खोकर देवदत्त ने स्वीकार किया कि उनका जीवन आँधियों और तूफानों का सामना करते-करते ही बीत गया। सुख और सन्तोष का वह कभी स्वप्न में भी स्पर्श न कर सके। बचपन, किशोरावस्था, तरुणाई और बुढ़ापा—जीवन की ये सभी अवस्थाएँ घोर संघर्षों का सामना करते-करते ही बीत गईं।

एक प्रकाण्ड ज्योतिषी मित्र ने कभी देवदत्त को बतलाया था कि इस जीवन में पत्नी मीरादेवी बहुत दिनों तक उनका साथ देंगी। इसका अर्थ अब देवदत्त की समझ में आ रहा है । उन्हें स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि अब अधिक दितों तक उनका जीवन-दीप जल नहीं सकता। दीपक को जलाए रखने के लिए जिस स्नेह और वर्तिका की आवश्यकता पड़ती है, वह उनकी पत्नी ही थी। मीरादेवी का अवसान हो जाने पर अब देवदत्त के जीवन में आखिर रह क्या गया? अब तो जीवन की पगडण्डी पर न केवल भयावह सन्नाटा व्याप्त हो उठा है, प्रत्युत कुहू अँधेरा भी छा गया है। विषम

परिस्थितियों के काले मेघों ने देवदत्त के जीवन को चारों ओर से ढक लिया है।

स्नेह और वर्त्तिका ! हाँ, इन्हीं दो उपादानों से दीपक जलता रहता है। और, ये दोनों उपादान मीरादेवी के रूप में देवदत्त को सहज-सुलभ थे। किन्तु जीवन-संघर्षों से रात-दिन टकराते और निराशाओं तथा असफलताओं की असह्य पीड़ा से चीखते-चिल्लाते देवदत्त कभी भूलकर भी अपनी इस पत्नी को सुख-संतोष न दे सके। उस पत्नी को सुख-सन्तोष न दे सके, जो स्वयं उनके जीवन-दीप को जलाए रखने के लिए स्नेह और वर्त्तिका बनकर रात-दिन तिल-तिलकर अन्त में समाप्त हो गई।

देवदत्त को आज मीरा की एक-एक स्मृति पर आन्तरिक क्षोभ होता है, पश्चात्ताप होता है, दुःख होता है। अपनी विषम परिस्थितियों से सदा विक्षुब्ध और पीड़ित रहनेवाले देवदत्त ने इस सती-साध्वी और देवीरूपा पत्नी को जाने कितनी मानसिक वेदना पहुँचाई और उसके आँसुओं की सरिता प्रवाहित कराई। लेकिन परिस्थितियों की विषमता ने ही उन्हें ऐसा करने पर विवश किया। हाँ, परिस्थितियों की विषमता वह राक्षसी है, जो किसी भी मानव के विवेक को पलक मारते अविवेक बना डालती है और सरलता को कुटिलता में परिवर्त्तित कर देती है। इस दशा में आज देवदत्त केवल अपने आँसुओं का अर्घ्य ही उस पत्नी की पावन स्मृतियों पर अर्पित कर, प्रभु से दिवंगत आत्मा को शान्ति-प्रदान करने और स्वयं को उन समस्त कृत्यों के लिए क्षमा-प्रदान करने की प्रार्थना करते रहते हैं, जो परिस्थितियों की विषमताओं से बाध्य होकर उन्होंने जाने-अनजाने इस जीवन में अनेक बार किए हैं।

देवदत्त स्वयं को इस दुनिया का महा अभागा प्राणी समझते हैं। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक उन्होंने अपना जीवन विकट अभावों और विषमताओं से निरन्तर टक्कर लेते हुए बिता दिया। कभी किसी सुख-सन्तोष का गहरा अनुभव वह नहीं कर सके। दार्शनिक परिभाषा के अनुसार सुख और सन्तोष

मानव के अपने मन की जिस स्थिति का नाम है, उसे प्राप्त करने का भी देवदत्त ने अनेक बार यत्न किया; किन्तु वह उन्हें कभी उपलब्ध न हो सका। उन्हें तो जो कुछ मिला, वह था सदा असन्तोष, अभाव और तज्जन्य गहरी पीड़ा।

देवदत्त ने अपनी सीमित-सी परिस्थितियों में रहकर भी अपने परिवार को सदा सुखी रखने में कभी कुछ उठा नहीं रक्खा। पत्नी और सन्तान के प्रति वह सदा निश्छल रहे और किसी तपस्वी की भाँति ही तिल-तिलकर उन्होंने अपने-आपको उत्सर्ग कर दिया। परन्तु सुख, सन्तोष और शान्ति थी कि सदा उनसे दूर भागती रही।

कितनी आशाएँ सँजोकर उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र हरीश को पाला-पोसा और शिक्षित किया; किन्तु ग्रेजुएट होकर उसी पुत्र ने उनका एक दिन भी साथ न दिया। कितनी उमंगों के साथ उन्होंने हरीश का विवाह किया; किन्तु विवाह होते ही छः महीने के भीतर ही वह हरीश पितृद्रोही होकर परिवार से पृथक् हो गया।

देवदत्त ने सोचा था कि पत्नी की उतरती उम्र में पुत्रबधू के गृह-प्रवेश से जो सहारा मिलेगा, उससे मीरादेवी को आराम मिलेगा और चैन से जिन्दगी के शेष दिन बीत सकेंगे। परन्तु सहारा मिलना तो दूर रहा, उलटे उनकी बीमारी में ही हरीश अपनी नवविवाहिता पत्नी को लेकर इस घर से चला गया और मीरादेवी को हृद्रोग का अभिशाप सदा के लिए दे गया। यही हृद्रोग अन्त में उनके निर्वाण का कारण बन गया।

यह हरीश न केवल पितृद्रोही बना; प्रत्युत मातृहन्ता भी सिद्ध हुआ और पितृहन्ता भी यही होगा। देवदत्त को लगता है, वह तो अभागे हैं ही; लेकिन उनकी पत्नी भी अभागिन थी। यदि वही भाग्यशालिनी होती, तो जिन आशाओं को सँजोकर देवदत्त ने हरीश की उच्च शिक्षा पूरी की थी और उसका विवाह किया था, वह सब पूरी होकर रहतीं। लेकिन यह सब एक स्वप्न था, एक छलना थी और जीवन का बहुत बड़ा मृगजल था।

इधर पारिवारिक प्रहारों से देवदत्त का हृदय छलनी हो चुका था, उधर 'त्रिवेणी'-संचालक भी उनके बुढ़ापे और जीवन-व्यापी सम्पादकीय अनुभव की चिन्ता न कर उन्हें परेशान करने पर तुले हुए थे। तरह-तरह के नवीन बन्धनों में जकड़कर वह ऐसी स्थिति उत्पन्न कर रहे थे कि देवदत्त स्वयं त्यागपत्र दे बैठें। 'त्रिवेणी'-संचालक की इस परवर्त्तित नीति का रहस्य भी देवदत्त से छिपा नहीं रहा। जनतंत्रीय सरकार का ध्यान पत्रकारों की गिरती हुई दशा पर आकृष्ट हो चुका था। प्रेस-कमीशन की स्थापना हो चुकी थी और जोरों से उसने पत्रकारों की स्थिति की छानबीन प्रारंभ कर दी थी। 'त्रिवेणी'-संचालक जिस अल्प वेतन पर अब तक देवदत्त की सेवाएँ ले रहे थे, उसकी सम्भावना अब नहीं रह गई थी। निकट भविष्य में ही कभी-न-कभी भरपूर वेतन देने की विवशता से बचने के लिए ही, देवदत्त को पृथक् कर देने की यह भूमिका 'त्रिवेणी'–संचालक की ओर से बाँधी जा रही थी।

सरकारी प्रयत्नों का इतिहास हमारे देश में बड़ा अजीब-सा है। गणतंत्र भारत में कोई भी कार्य करने के पूर्व सरकारी मशीनरी जो लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँधती है और यथेष्ट शोर मचाकर सार्वजनिक कल्याण करने को अग्रसर होती है, उसमें उसे जो सफलता मिलती है, वह बहुत ही गौण रहती है। ऐसे कार्यों की पृष्ठभूमि पर जिन पीड़ितों-शोषितों को लाभ पहुँचाने की सद्भावनाएँ रहती हैं, वे ठीक नींव के पत्थर की भाँति नवनिर्मित इमारत के नीचे एकदम दब जाती हैं। इसी प्रेस-कमीशन की स्थापना के मूल में शोषित पत्रकारों को लाभ पहुँचाने की सरकारी सदाशयता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता; परन्तु इसका शोर मचते ही पूँजीपतियों ने देवदत्त-जैसे जिन कर्मठ पत्रकारों को पृथक् कर दिया, उनके लिए यह प्रेस-कमीशन अब क्या कर सकेगा? होना तो यह चाहिए कि सरकार चुप-चुप पत्रकारों की स्थिति का पता लगाती और उनके कष्टों को दूर करती।

दुनिया के सभी अभिशापों में गरीबी निकृष्ट है। फिर गरीबी में किसी असाधारण बीमारी का प्रवेश तो और भी भयावह है। देवदत्त शर्मा ने पेट

काट - काटकर जो थोड़ा-बहुत रुपया डाकघर के सेविंग बैंक में जमा कर रक्खा था, उसमें से अधिकांश तो ज्येष्ठ पुत्र के विवाह में झोंका जा चुका था; फिर पत्नी की असाधारण बीमारी में भी वही जमा-पूँजी काम देती रही। अब जो थोड़ा-सा रुपया बच गया था, उसे यदि अपनी बीमारी में डाक्टरों को लुटा दिया जाता, तो उन दो सन्तानों के लिए क्या बच रहता, जो देवदत्त की आँखें बन्द होते ही अनाथ हो जायँगी ? बड़े लड़के हरीश से तो कोई आशा रही नहीं। वह तो देवदत्त के जीवन की सबसे बड़ी छलना और कभी ठीक न हो सकनेवाला नासूर सिद्ध हो चुका।

इन परिस्थितियों में देवदत्त अपना उचित उपचार नहीं करा सके और दिनोंदिन क्षीण होने लगे—घुलने लगे।

पूँजीपतियों के सामने केवल उनका अपना स्वार्थ रहता है। उन्हें किसीके सुख-दुख से कोई मतलब नहीं। 'त्रिवेणी'-संचालक की सख्तियाँ इतनी बढ़ गईं कि एक दिन सचमुच देवदत्तजी को वहाँ से पृथक् हो जाना पड़ा। पारिवारिक प्रहारों से यों ही देवदत्त तिलमिला उठे थे, अब उनकी मनोदशा और भी खराब हो गई। धीरे-धीरे वह स्वयं खाट से लग गए और अस्वस्थ रहने लगे।

—२५—

रोग-शय्या पर पड़-पड़े देवदत्त को अपना अवसान अत्यन्त निकट दीखने लगा। संसार की क्षणभंगुरता और आत्मीय जनों की प्रवंचना रह-रहकर उनके मानस-क्षितिज पर कौंधने लगी। पत्नी की स्मृति में देवदत्त की आँखें बराबर गीली हो उठतीं; किन्तु वह सयत्न उन्हें पोंछ लेते। जो कहीं उनका छोटा पुत्र शम्भु और बेटी लज्जा, गीली आँखों का कारण पूछ बैठें, तो वह क्या उत्तर देंगे उन्हें?

जीवन के मध्य तक देवदत्त का छोटा-सा परिवार कितना सुखी था! रुपए-पैसे का सदा अभाव रहने पर और गरीबी से निरन्तर संघर्ष करते रहने पर भी देवदत्त का छोटा-सा परिवार अपनी परिस्थितियों की विषमता की चिन्ता न कर सदा सन्तुष्ट रहता और हँसते-मुसकराते दिन बिताए जाता। देखनेवालों पर इस परिवार के सुख-सन्तोष की गहरी छाप अनायास पड़ जाती। स्वयं देवदत्त मन-ही-मन एक सन्तोष का अनुभव कर लेते कि न सही रुपया-पैसा, किन्तु भरा-पूरा परिवार तो है। पारिवारिक सुख और आनन्द की छाया में धन-दौलत की प्यास ने देवदत्त को कभी बेचैन नहीं किया। परन्तु आज जीवन के अन्तिम क्षणों में उन्हें लगता है कि उनकी सारी आशाएँ केवल स्वप्न-जाल थीं।

आज यदि देवदत्त की पत्नी इस संसार में होती, तो देवदत्त को रोग-शय्या पर पड़े-पड़े असह्य बेचैनी का अनुभव कदापि न होता। सेवा-शुश्रूषा के लिए भी उन्हें अपने छोटे पुत्र शम्भु और लज्जा बेटी के खेलने-खाने की

घड़ियों का अपहरण न करना पड़ता। लेकिन ज्येष्ठ पुत्र हरीश ने जब उनकी सारी आशाओं का रङ्गमहल ध्वस्त कर दिया, तब कोई दूसरा चारा ही क्या था ?

ज्येष्ठ पुत्र हरीश की कृतघ्नता पर देवदत्त का हृदय भर-भर उठता। इस मातृहन्ता और पितृहन्ता पुत्र को वह अपने पूर्वजन्म का सबसे बड़ा शत्रु समझने लगे। यों देवदत्तजी यह जानते हैं कि इस धरती पर जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु अनिवार्य है। 'गीता' के दूसरे अध्याय में अर्जुन से कही गई भगवान् कृष्ण की यह बात उन्हें सदा याद रहती :—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

अर्थात् जन्म लेनेवाले की मृत्यु निश्चित है और मरनेवाले का जन्म लेना निश्चित है। इसलिए इस बिना उपायवाले विषय में शोक करना उचित नहीं।

फिर भी इस मृत्यु का जो कारण होता है, उस पर मानव-मात्र का ध्यान बरबस चला जाता है। और, देवदत्त को यह विश्वास हो गया है कि उनकी पत्नी की मृत्यु का कारण उनका यही कृतघ्न पुत्र है और स्वयं उनकी आसन्न मृत्यु का कारण भी यही होगा।

इस पुत्र के पृथक्करण पर देवदत्त के मित्रों और संबंधियों न उन्हें जिन पत्रों द्वारा धैर्य प्रदान करने की चेष्टा की थी, उन पत्रों को उन्होंने सुरक्षित रख छोड़ा था। आज बिस्तर पर लेटे-लेटे देवदत्त उन्हीं पत्रों को पुनः पढ़ने का लोभ-संवरण न कर सके।

जिस समय हरीश अपने माता-पिता से पृथक् होकर एक होटल में जाकर रहने लगा था, उसके कुछ समय बाद ही देवदत्त का एक नया चित्र उनकी एक कहानी के साथ एक मासिक पत्रिका में छपा था। उस चित्र को देखकर देवदत्त के एक मित्र ने, जो राजस्थान के एक डिग्री-कालेज में अँगरेजी के प्रोफेसर हैं, एक लम्बा-चौड़ा पत्र लिखकर देवदत्त को लिखा था—'आपके

चित्र को देखकर चिन्ता की लकीरें चेहरे पर साफ पढ़ी जा सकती हैं। आप चिन्तित न रहा करें। हरीश के पृथक् हो जाने का मानसिक कष्ट मन से निकाल दीजिए। आपके अशान्त मन की स्थिति को मैं समझ रहा हूँ। गत दो-तीन वर्षों से आप निरन्तर बीमारियों और मानसिक अशान्ति के शिकार हो रहे हैं। किन्तु संसार जब इतना कठोर है, तो क्या किया जाए?

'वास्तव में आजकल के सम्बन्ध दिखावटी रह गए हैं। पुत्र-प्रेम भी स्वार्थमय है। इस स्वार्थमयी सृष्टि को समझकर किसी दूसरे के सहारे नहीं रहना चाहिए। परमेश्वर ने आपको ऐसा बनाया है कि आप स्वयं अपने ऊपर निर्भर रह सकते हैं। दूसरे के सहारे की आपको जरूरत नहीं है। परमेश्वर करे, वह दिन आपको न देखना पड़े कि दूसरे का सहारा ताकना पड़े।

'नब्बे प्रतिशत आज के शिक्षित युवक ऐसे ही स्वार्थी हैं, जिन्हें अपनी नाक के नीचे का ही दीखता है। वे स्वयं अपने लाभ को नहीं समझते। वे समझते हैं कि माता-पिता अथवा परिवार की जिम्मेदारियों को क्यों अपने ऊपर उठाएँ।

'पुत्र-वियोग एक महाव्याधि है। दशरथजी इसी महाव्याधि के शिकार बने। मेरी आपसे प्रार्थना है, आप अपने मन से पुत्र-बिछोह का मानसिक कष्ट निकाल फेंकें और अपना सुख अपने में ही है, इसी भाव को दृढ़ करें। परमेश्वर को धन्यवाद दीजिए कि लक्ष्मीस्वरूपा पत्नी आपको प्राप्त हुई हैं। संसार में एक से दो, दो से तीन, तीन से चार-पाँच तक परिवार की संख्या बढ़ती है, फिर ज्यों-ज्यों बच्चे योग्य होते जाते हैं, फिर पाँच से चार, चार से तीन, और अन्त में एक रह जाता है। यही ईश्वरीय नियम है। आप इस कष्ट को मन से निकाल दीजिए। आपको साहित्य में ही अपना सुख ढूँढ़ना है।'

इन प्रोफेसर मित्र को जब देवदत्त ने पत्र भेजकर सारी बातें विस्तार के साथ लिख भेजीं, तब उनका दूसरा पत्र मिला था—'पत्र मिला, तो जैसे गोली लग गई। हरीश से मुझे ऐसी आशा नहीं थी। मैं मानता हूँ कि जीवन और यौवन के प्राचीन और नवीन दृष्टिकोणों में प्रतिदिन इतना अधिक

अन्तर और वैषम्य होता जा रहा है कि पारिवारिक जीवन संघर्षमय हो गया है। लेकिन हरीश को मैं आदर्श पिता का आदर्श पुत्र समझता था। उससे मुझे इस अशिष्टता की आशा कदापि नहीं थी।

'वास्तव में शिक्षा-प्रणाली का ही यह दोष है कि आज पाश्चात्य देशों की तरह विवाह के पश्चात् पुत्र और बधू संयुक्त परिवार में नहीं रहना चाहते। अपनी भावनाओं की पगडण्डी पर स्वच्छन्द विहार करना चाहते हैं।

'जो हुआ, सो हुआ; अब तो सन्तोष ही करना चाहिए। यह स्मरण रखिए, पुत्र-पुत्री से वृद्धावस्था में सहायता की आशा करना मृग-मरीचिका है। पुत्र-पुत्री से कोई बड़ा लाभ नहीं। एक प्रकार का भार-सा बनकर वह रह जाते हैं।

'कभी-न-कभी हरीश को अपने कृत्यों पर पश्चात्ताप अवश्य होगा। उसके सात्त्विक संस्कार, जो क्षणिक आवेश की उत्तेजना में बहक गए हैं, सन्मार्ग पर आएँगे और वह आपके चरणों पर सिर धरकर आँसू बहाएगा।

'आप शान्त रहिए। मन को भारी और व्यग्र न करें। जीवन के कड़वे-मीठे घूँट हमें पीना ही पड़ते हैं।'

लेकिन देवदत्त को अफसोस है कि इस कृतघ्न पुत्र हरीश के सात्त्विक संस्कार आज तक न जागे, और अब क्या जागेंगे ? देवदत्त की आँखें मुँद जाने पर यदि उसके संस्कार जागे भी, तो किस काम के ?

देवदत्त को स्मरण आया कि उनके ताऊ ने भी, जो अनेक पुस्तकों के रचयिता हैं, हरीश को इस संबंध में कुछ पत्र लिखे थे; किन्तु उन्हें भी हरीश ने जो कुछ लिखा, वह इसी बात का प्रमाण है कि उसके सात्त्विक संस्कार शायद ही कभी जागें।

ताऊ ने देवदत्त को लिखा था—'गृह-परिस्थिति की विचित्रता सुनकर कष्ट हुआ; पर तुमको अपने चित्त में अधिक खेद नहीं करना चाहिए। चि० हरीश आगे पढ़ता, तो बहुत अच्छी बात थी। नहीं पढ़ता है, तो इसमें तुम्हें खेद

करने की आवश्यकता नहीं। तुमने तो अपने कर्त्तव्य का पूरा-पूरा पालन किया।

'हरीश के पृथक् हो जाने से हम सबको हार्दिक क्लेश हुआ। कुछ दिन तो तुम्हारी छत्रच्छाया में रहकर वह निश्चिन्त रहता और तुम्हें सन्तोष देता। परन्तु आजकल की सन्तति ऐसी स्वार्थी और निर्मोह है कि वह अपने बड़ों की भावनाओं का रत्ती-भर विचार नहीं करती।

'मैंने हरीश को पत्र लिखा था; किन्तु उसके उत्तर से स्पष्ट है कि व्याधि असाध्य जान पड़ती है। तुम लोगों के बीच इतना पार्थक्य कैसे पड़ गया, मैं तो कुछ सोच नहीं सकता। कल मैंने उसे पुनः पत्र लिखा है। उसे फिर समझाने का प्रयत्न किया है और उसके हृदय में करुणा उत्पन्न करने के लिए मैंने यहाँ तक लिखा है कि तुम्हारा पिता जन्म का दुखिया है। बचपन में पिता का प्यार नहीं जाना। किशोरावस्था में किसीका स्नेह नहीं पाया। तरुणाई में कोई सुख नहीं मिला। किसी तरह पढ़-लिखकर, घरद्वार छोड़ परदेश में नौकरी करता फिरा और तुम्हें पाला-पोसा; स्वयं कष्ट सहा; किन्तु तुम्हें उच्च शिक्षा दिलाई। कभी उसे चैन की साँस लेने का अवसर नहीं मिला। अब समय था कि तुम पढ़-लिखकर ग्रेजुएट हो चुके हो, तो अपने पिता के बुढ़ापे में उनको शान्ति पहुँचाते, उनकी सेवा करते और उन्हें सन्तोष प्रदान करते। परन्तु तुमने दूसरा मार्ग पकड़ा है और उन्हें बेचैन कर रक्खा है। फिर तुम्हारा पिता साधारण व्यक्ति नहीं है। वह हिन्दी का यशस्वी कवि, प्रख्यात कथाकार और प्रतिष्ठित पत्रकार है। ऐसे पिता की सेवा करने और उसकी आज्ञा मानने में तुम्हें अपने भाग्य को सराहना था; किन्तु तुम हो कि उसे चैन से जीवित भी नहीं रहने देना चाहते।'

और, अब तो दिन के प्रकाश की भाँति स्पष्ट है कि हरीश ने देवदत्त को सचमुच चैन से जीवित न रहने दिया। देवदत्त के ताऊ का उक्त पत्र पाकर भी उस कृतघ्न हरीश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जाने किन तत्त्वों से हरीश का निर्माण हुआ है कि किसीकी अच्छी बात का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

देवदत्त के वयोवृद्ध श्वसुर ने भी हरीश को बहुत समझाया-बुझाया और सन्मार्ग पर लाने की अथक चेष्टा की; किन्तु उन्हें भी अपने प्रयत्नों में निराशा ही हाथ लगी। उस समय उन्होंने जो कुछ कहा था, उसका आज तक देवदत्त को अच्छी तरह स्मरण है—'हरीश के मस्तिष्क में जो विषाक्त कीटाणु उत्पन्न हो चुके हैं, उनका नाश असम्भव है।'

एक अन्य कथाकार मित्र ने दिल्ली से देवदत्तजी को हरीश के पृथक्करण पर लिखा था—'आपके पुत्र का पृथक्करण और यह अनपेक्षित व्यवहार सनकर मैंने एक बार पुनः यह समझा कि ये नाते-रिश्ते और गृहस्थी के धन्धे एक दूकानदारी के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। इस वसुधा पर है तो सब कुछ, परन्तु भाग्य और अच्छे संस्कारों के बिना कुछ नहीं मिलता। पिता के रूप में आपको जो क्षोभ तथा दुःख हुआ, उसकी कल्पना मैं बखूबी कर रहा हूँ, कारण मैंने इन बातों को भोगा और पाया है।

'सचमुच आपका पुत्र अभागा रहा। यौवन के प्रवाह में बह गया। नारी के उन्माद ने उसे ग्रस लिया। शिक्षा संस्कृत की हो या अँगरेजी की, अन्तर कुछ नहीं; वातावरण और संस्कारों का फल ही अपना काम करता है। लेकिन किसी-न-किसी दिन वह अभागा पुत्र अपनी करनी पर रोएगा। आखिर यौवन का झंझावात क्या सदा टिकनेवाला है!'

यौवन का झंझावात अब टिके या नष्ट हो, देवदत्त को मतलब ही क्या। उन्होंने लज्जा बेटी को बुलाकर पत्रों का यह ढेर अपनी आलमारी में जहाँ का तहाँ रख देने के लिए कहा।

लज्जा चुपचुप जाकर आलमारी में यह रख रही थी कि देवदत्त ने पुनः पुकारा—'लज्जा बेटी, सुनो।'

लज्जा ने निकट आकर कहा—'क्या दादा?'

'पत्रों का वह ढेर यहीं ले आ, बेटी!'

'अच्छा, दादा!' कहकर लज्जा फिर आलमारी से पत्रों का वह ढेर

ले आई और पिता के आदेश की प्रतीक्षा करने लगी ।

'इन्हें सहन में रखकर जला दे, बेटी!'

'वर्षों से सहेजकर जिन पत्रों को रखे रहे, दादा; आज उन्हें जला क्यों रहे हैं?' लज्जा ने नम्रता के स्वर में पूछा।

'अब इनकी जरूरत नहीं, बेटी!'

'अच्छा, दादा!' कहकर लज्जा ने सहन में जाकर सब पत्रों में आग लगा दी। अधिक कुछ पूछकर वह अपने रुग्ण पिता को कोई मानसिक कष्ट नहीं पहुँचाना चाहती थी।

रोग-शय्या पर पड़े-पड़े देवदत्त इन जलते पत्रों को टुकर-टुकर देखते रहे। उनकी आँखों में आँसुओं की छोटी-छोटी बूँदें अनायास झलमला उठीं।

अभी-अभी लज्जा बेटी ने इन पत्रों को जला देने का कारण पूछा था; परन्तु देवदत्त ने उसे जो उत्तर दिया था, वह सत्य नहीं था। उन्होंने जान-बूझकर लज्जा को यथार्थ बात नहीं बतलाई। अपनी इसी प्रवंचना पर देवदत्त की आँखें गीली हो उठीं।

अपने अन्तस्तल की यह आवाज वह कैसे अपनी पुत्री को सुनाते कि बेटी, इस बूढ़े का यह जर्जर शरीर ही जब चिता पर जाकर भस्म होने की प्रतीक्षा कर रहा है, तब इन पत्रों को भी भस्म कर देना ही मैं ठीक समझता हूँ। इन्हें रख छोड़ने से आखिर होगा क्या? इन पत्रों पर जिस किसी की दृष्टि पड़ेगी, उसे हरीश-जैसे मातृ-पितृहन्ता पुत्र की कृतघ्नता पर गहरा क्षोभ ही हाथ लगेगा। लेकिन देवदत्त अब इस प्रसंग को लेकर दुनिया के किसी प्राणी को क्षुब्ध नहीं करना चाहते। वह स्वयं जितने क्षुब्ध और प्रपीड़ित हो चुके हैं, वही बहुत है।

—२६—

प्रफुल्ल के चले जाने पर सुमित्रा ने भोजन किया और चुपचाप जाकर अपने पलंग पर लेट रही। परलोकवाद के संबंध में आज उसने प्रफुल्ल से जो बातें सुनी हैं, वे अब तक उसके अन्तराल में रह-रहकर प्रतिध्वनित हो उठती थीं। आत्मा की अमरता का विश्वास, जो सुमित्रा के मन में पहले से ही था, आज और भी अधिक पुष्ट हो चुका था।

अपने पिता की अन्तिम इच्छा पूरी करने की जो भावना सुमित्रा को समय-समय पर दुविधा में डाल देती थी, आज एक निश्चय में परिणत हो चुकी थी। परलोकवाद की चर्चा से, सुमित्रा को यह निश्चय करने में बड़ी सहायता मिली कि उसे अपने पिता की अन्तिम और अधूरी इच्छा पूरी करनी ही होगी। ऐसा न करने पर उसके पिता की आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी। और, पिताजी की अन्तिम इच्छा को पूरा करने का अर्थ है प्रफुल्ल के साथ सुमित्रा के जीवन-सूत्र का गुम्फित हो जाना।

प्रफुल्ल को परखने का जहाँ तक सम्बन्ध है, सुमित्रा ने यथेष्ट सावधानी से काम लिया है। रूप-रङ्ग, स्वास्थ्य, शिक्षा और व्यावहारिकता के साथ-साथ प्रफुल्ल धनवान् भी है। उसके साथ रहकर सुमित्रा सम्पूर्ण अर्थों में सन्तुष्ट और सुखी रह सकेगी। ऐसा होने पर उसके पिताजी की आत्मा को निश्चय ही शान्ति मिलेगी। और, अपने इस आन्तरिक निश्चय का आभास भी सुमित्रा आज प्रफुल्ल को दे चुकी है।

बहुत रात तक सुमित्रा इन्हीं विचार-वीचियों पर तिरती रही। कब

उसकी आँख लग गई, इसका उसे स्वयं पता नहीं।

सुबह जब पाँच बजे उसकी आँख खुली, तो नित्य की तरह वह अपनी मेज के सामने एक कुर्सी पर जा बैठी और महिला-विद्यालय की आवश्यक फाइलें देखने लगी। इसके बाद वह हाथ-मुँह धोने गोसलखान में चली गई।

हाथ-मुँह धोकर जब सुमित्रा अपनी बैठक में आई, तो मेज पर सदा की भाँति आज भी उसे चाय का ट्रे तैयार रक्खा मिला। इतमीनान से वह चाय पीने लगी। अभी आधा प्याला ही उसने पिया होगा कि टेलीफोन की घण्टी जोरों से टनटना उठी।

सुमित्रा मन-ही-मन खीझ उठी। सुबह-सुबह यह कौन है, जो उसे फोन कर रहा है? वह पूर्ववत् चाय पीती रही।

टेलीफोन की घण्टी की टनटनाहट बन्द हो चुकी थी। सुमित्रा को लगा, फोन करनेवाले ने शायद यह समझकर चुप रह जाना ठीक समझा हो कि इस समय पता नहीं, मैं सोकर उठी भी हूँ या नहीं।

लेकिन एक मिनट के बाद ही फिर टेलीफोन की घण्टी टनटना उठी। सुमित्रा को अब फोन का रिसीवर उठाकर बात करनी ही पड़ी—'हलो।'

'कौन, सुमित्राजी?'

परिचित स्वर था। सुमित्रा की खीझ सहसा काफूर हो गई। बड़ी उत्सुकता से बोली—'हाँ-हाँ, मैं सुमित्रा हूँ। कहिए, इस प्रातः वेला में....?'

बीच में ही टेलीफोन के दूसरे छोर से आवाज़ आई—'फोन करके आपको कष्ट देने की क्या आवश्यकता आ पड़ी? यही न, सुमित्राजी?'

'आप भी जाने क्या सोचने लगते हैं।' सुमित्रा ने कहा—'मेरी बात पूरी सुने बिना ही अपना अनुमान प्रकट कर बैठते हैं। मैं कह रही थी, आपको यह कष्ट क्यों करना पड़ा?'

'तब गनीमत है!' प्रफुल्ल ने कहा—'मैं अभी-अभी कलकत्ता जा रहा हूँ। आवश्यक काम आ गया है। ट्रंक-काल से रात में वहाँ से सन्देश आया था कि मेरी उपस्थिति आज संध्या समय वहाँ अनिवार्य है।'

'कब तक लौटेंगे वहाँ से ?' सुमित्रा ने प्रश्न किया।

'आप तो जानती हैं कि वहाँ मेरा व्यवसाय चलता है।' प्रफुल्ल ने कहा— "कह नहीं सकता, कब लौटूँगा। इसीलिए फोन पर मैंने आपको अपने अचानक चले जाने की सूचना दे देना ठीक समझा।'

'लेकिन इस सूचना से मुझे कोई प्रसन्नता नहीं हुई।'

'अच्छा, तो दूसरी बात करता हूँ। मैं समझता हूँ, इससे आपको प्रसन्नता होगी।'

'वह क्या ?'

'यह कि आप कुछ दिनों की छुट्टी लेकर कलकत्ता अवश्य आइए।'

'आजकल विद्यालय में पढ़ाई का महत्त्वपूर्ण समय चल रहा है। इसलिए छुट्टी लेना मेरे लिए ठीक न होगा।'

'लेकिन कुछ दिनों बाद, सम्भव है, आपको विद्यालय से सदा के लिए ही छुट्टी ले लेनी पड़े, तब क्या होगा ?'

'यह अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, घोष साहब ! जब ऐसा अवसर आएगा, तब इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार कर लिया जाएगा।'

'तो किसी छुट्टी में ही कलकत्ता आने की चेष्टा करें।'

'हाँ, यह हो सकता है।'

'आने के पहले मुझे तार द्वारा सूचना अवश्य दे दीजिए, जिससे हावड़ा स्टेशन पर मैं स्वयं पहुँच सकूँ और आपको कोई कष्ट न हो।'

'जी, अच्छा ! नमस्कार !' और सुमित्रा ने स्वयं रिसीवर रखकर आगे कोई बात करना उचित नहीं समझा—शायद उसे इस समाचार से तनिक भी प्रसन्नता नहीं हुई। उसका मन भारी हो उठा।

वह फिर जाकर चाय पीने लगी। एक प्याला चाय से सुमित्रा को कभी सन्तोष नहीं होता। कम-से-कम दो प्याले चाय वह पीती है। उसे कभी-कभी

अपनी इस आदत पर स्वयं आश्चर्य होता है। पहले वह कभी चाय नहीं पीती थी। परन्तु इस संसार में एकाकी रह जाने पर—पिताजी को खो चुकने पर—समय काटने और क्षणिक ताजगी का अनुभव करने के विचार से, उसने जो चाय पीनी शुरू की, तो अब एक बार में ही वह दो प्याले से कम चाय नहीं पीना चाहती।

चाय का दूसरा प्याला पीते-पीते प्रफुल्ल के कलकत्ता जाने के अचानक निश्चय पर सुमित्रा बहुत खिन्न हो उठी। फोन पर बात करते-करते ही वह कुछ खिन्न हो उठी थी। कदाचित् यही कारण था कि उसने प्रफुल्ल से यह भी नहीं पूछा कि वह किस ट्रेन से अथवा वायुयान से कलकत्ता जा रहा है। सुमित्रा को अपनी इस मनोवृत्ति पर एक खीझ होने लगी। क्या कहते होंगे प्रफुल्लजी अपने मन में इस सुमित्रा की संस्कृति पर ? और कुछ नहीं, तो शिष्टाचार के नाते ही सुमित्रा को यह पूछा लेना था कि किस ट्रेन या वायुयान से जाने का निश्चय किया है प्रफुल्ल ने। और, अधिक अच्छा होता कि वह स्वयं जाकर उनको बिदा करती।

एक क्षण उसने कुछ सोचा, फिर सहसा उठकर फोन के पास जा पहुँची। रिसीवर उठाकर प्रफुल्लजी के फोन का नम्बर मिलाया और बोली—'हलो. . !'

लेकिन फोन पर किसीका उत्तर नहीं मिला। खीझकर उसने रिसीवर जहाँ-का-तहाँ रख दिया। कुछ क्षण वह असमंजस में पड़ी रही और जाने क्या सोचकर फिर वही नंबर मिलाकर रिसीवर लेकर बात करने की चेष्टा की —'ह. . . .लो. . . .।'

इस बार फोन के दूसरे छोर से प्रफुल्ल की परिचित आवाज सुनाई पड़ी— "आप कहाँ से बोल रहे हैं ?"

'जी, मैं बोल रही हूँ।' सुमित्रा ने प्रसन्नता से भरकर 'रही' पर कुछ अधिक जोर देते हुए कहा—'पहचान नहीं सके क्या ?'

'ओह !' प्रफुल्ल ने कहा—'आपकी आवाज भी क्या मैं भूल सकता हूँ, सुमित्राजी ! कहिए, क्या बात है ?'

'मैं चाहती हूँ कि कलकत्ता प्रस्थान करते समय मैं आपको बिदा दूँ। लेकिन आप ट्रेन से जा रहे हैं या वायुयान से? और किस समय जा रहे हैं?'

'मैं वायुयान से जा रहा हूँ, सुमित्राजी! इसमें लगभग चार घण्टे में ही इलाहाबाद से कलकत्ते का लम्बा पथ तय हो जाता है। ट्रेन में तो सोलह घण्टे से कम नहीं लगते।'

'वायुयान कब उड़ेगा यहाँ के हवाई-अड्डे से?'

'ठीक साढ़े आठ बजे।' प्रफुल्ल ने कहा—'यदि आप हवाई-अड्डे तक चलना चाहें, तो मैं सात बजे आपको अपने साथ मोटर पर लेता चलूँ। लौटते समय ड्राईवर आपको मोटर से ही आपके निवासस्थान पर छोड़ देगा।'

'अच्छा, मैं तैयार रहूँगी। आप यहीं से आने की कृपा कीजिए।'

'हार्दिक धन्यवाद!' प्रफुल्ल ने कहा और रिसीवर यथास्थान रख दिया।

सुमित्रा भी रिसीवर यथास्थान रखकर नहाने-धोने की तैयारी करने लगी। सात बजे के काफी पहले वह तैयार होकर प्रफुल्ल के आने की बाट जोहन लगी। इस बीच उसने परिचारिका से कहकर अपने बगीचे से गुलाब और बेला के कुछ फूल चुनवाकर एकत्र कर रक्खे थे। इन फूलों को एक बढ़िया खादी के रूमाल में रखकर वह कोच पर बैठी-बैठी निहार रही थी और प्रफुल्ल के सम्बन्ध में जाने क्या-क्या सोच रही थी।

सुमित्रा जब अपने-आपमें इस प्रकार कुछ उलझी-सी थी, तभी सहसा दरवाजे के बाहर किसी मोटर के प्रवेश करने की आवाज सुनाई पड़ी और धीमे-से स्वर में हार्न भी बजता सुनाई पड़ा। सुमित्रा समझ गई कि प्रफुल्लजी आ गए हैं। वह कोच से उठी और फूलों का रूमाल एक हाथ में सावधानी से लेकर बाहर की तरफ बढ़ गई। दरवाजे पर खड़ी परिचारिका से उसने कहा—'मैं हवाई-अड्डे तक जा रही हूँ। घोष साहब को भेजकर नौ बजे तक

लौट आऊँगी।' और सुमित्रा तेज पगों से मोटर की तरफ बढ़ गई।

मोटर से उतरकर प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए सुमित्रा का स्वागत किया और पिछली सीट पर बैठने का संकेत किया। सुमित्रा कुछ सकुचाती-सी मोटर कार की पिछली सीट पर जा बैठी। प्रफुल्ल भी सुमित्रा से कुछ अन्तर पर उसी सीट पर जा बैठा और ड्राईवर को आदेश दिया—'चलो शोफर!'

बमरौली के हवाई-अड्डे की ओर मोटर दौड़ने लगी। कुछ देर तक मोटर की पिछली सीट का वातावरण एकदम शान्त रहा। इस शान्ति को भंग करते हुए प्रफुल्ल ने कहा—'मैं समझ रहा था कि सुमित्राजी मुझसे नाराज हैं।'

'और अब नहीं समझ रहे हैं!' सुमित्रा ने मन्द मुसकराहट के साथ प्रफुल्ल की ओर देखते हुए कहा।

'नहीं!' प्रफुल्ल ने भी मुसकराते हुए कहा।

'क्यों भला?'

'इसलिए कि जब आप हवाई-अड्डे तक मुझे बिदा देने चल रही हैं, तब स्पष्ट है कि आप नाराज नहीं हैं।'

'और अस्पष्ट कब था?'

'जब कलकत्ता प्रस्थान करने की सूचना पाकर भी आपने टेलीफोन पर बात करना अचानक बन्द कर दिया था।'

'ओह! अब समझी!' सुमित्रा ने गंभीर वाणी से कहा—'आप मेरी मनोदशा को तनिक भी नहीं समझ सके। बात यह थी कि आपके इस प्रकार सहसा चले जाने का समाचार सुनने के लिए मैं उस समय तनिक भी तैयार नहीं थी।'

'यह मेरे प्रति आपकी आत्मीयता है।' प्रफुल्ल ने कहा—'लेकिन परिस्थितियों की चपेट में पड़कर मानव को कितने ही कार्य इस संसार में अनिच्छापूर्वक भी करने पड़ते हैं, सुमित्राजी!'

'आज मुझे भी इसका अनुभव हो गया।' सुमित्रा ने गम्भीर होकर कहा।

'अच्छा, कभी कलकत्ता आने की चेष्टा अवश्य करें, सुमित्राजी !'

'कह नहीं सकती।'

'क्यों ?'

'मैं एक कुमारी हूँ न !' नीची दृष्टि से सुमित्रा न कहा—'अधूरी नारी को अपना प्रत्येक पग बहुत सोच-समझकर उठाना पड़ता है।'

'लेकिन आप तो आचार्या हैं। साधारण कुमारी में और आपमें धरती-आकाश का अन्तर है। आपको ऐसी बात नहीं सोचनी चाहिए।'

'प्रयत्न यही करूँगी।'

'इसके लिए अग्रिम धन्यवाद।'

'बस ?' एक जिज्ञासा-भरी दृष्टि से मुसकराते हुए सुमित्रा ने कहा।

'ओह !' प्रफुल्ल ने मानो धन्यवाद देने की साधारण-सी व्यावहारिकता का प्रदर्शन अनावश्यक समझते हुए कहा—'इस अभिव्यक्ति के लिए मैं दुःखी हूँ।'

'लेकिन मैंने आपको दुःखी करने के लिए नहीं टोका।'

'यह मैं जानता हूँ, सुमित्राजी !' प्रफुल्ल ने कहा—'और मुझे विश्वास है, आप मुझे कभी दुःखी होने का अवसर न देंगी।'

अब तक प्रफुल्ल की कार इलाहाबाद के पश्चिमी छोर को बहुत पीछे छोड़कर बमरौली की बाहरी सीमा में प्रवेश कर चुकी थी। सुमित्रा ने सम्भाषण का प्रसङ्ग बदल देने की चेष्टा करते हुए कहा—'लीजिए, वह दिखने लगा हवाई-अडडा।'

'हाँ, अब हमारे पृथक् होने की वेला निकट आ रही है, सुमित्राजी !' प्रफुल्ल ने कुछ दबी वाणी से कहा।

'पृथक् होने की वेला ही किसी दूरागत मिलन-सन्धि की पृष्ठभूमि

हुआ करती है, प्रफुल्लजी!' सुमित्रा ने सहसा कह दिया।

'ईश्वर करे, आपकी यह वाणी अक्षरशः और शीघ्र पूरी हो, सुमित्राजी!'

अब कहीं सुमित्रा को अपनी अभिव्यक्ति की भूल का पता लगा और उसे मन-ही-मन एक खीझ हो उठी। ऐसी बात उसे नहीं कहनी थी। परन्तु प्रत्यंचा से छूटा हुआ बाण जिस प्रकार वापस नहीं आ सकता, उसी प्रकार जो वाणी व्यक्त हो चुकी, उसे वापस लेना सम्भव नहीं।

कुछ देर तक दोनों मौन रहे। कुछ ही क्षणों में कार हवाई-अड्डे पर जाकर खड़ी हो गई।

मोटर से उतरकर प्रफुल्ल के साथ सुमित्रा भी तैयार खड़े वायुयान तक चली गई। इधर-उधर की बातचीत करते-करते जब वायुयान के उड़ने का समय हो गया, तब सुमित्रा ने गुलाब और बेला के वह फूल, जो खादी के एक शुभ्र रूमाल में सहेजकर रख छोड़े थे, प्रफुल्ल को देते हुए कहा—'एक नम्र उपहार—एक अकिंचन कुमारी की साधारण भेंट।' और यह कहते-कहते जाने क्यों, सुमित्रा का गला भर आया।

प्रफुल्ल ने फूलों का उपहार स्वीकार कर सुमित्रा की दोनों हथेलियाँ अपनी हथेलियों में सस्नेह दबाते हुए कहा—'मेरे लिए यह उपहार असाधारण और अमूल्य है, सुमित्राजी!'

सुमित्रा ने प्रफुल्ल की हथेलियों के स्पर्श से एक मादक सिहरन का अनुभव किया। कुछ क्षणों तक वह आतमविभोर-सी खड़ी रही।

इसी बीच वायुयान उड़ने की अन्तिम घण्टी टनटना उठी और प्रफुल्ल अपनी सीट की ओर बढ़ गया। सुमित्रा भी हवाई-जहाज की सीढ़ियों से हटकर दूर जा खड़ी हुई। चन्द मिनटों में ही हवाई-जहाज एक तीव्र भर्राहट के साथ कुछ दूर तक मैदान में दौड़कर सहसा आकाश-मार्ग में उड़ गया और देखते-ही-देखते बहुत ऊँचा होकर अदृश्य हो गया।

सुमित्रा मोटर कार पर आकर बैठ गई और कहा—'चलो शोफर।'

–२७–

निर्मल नागर आज सुबह चाय पीकर जब अपनी बैठक में गए, तो स्थानीय दैनिक समाचार-पत्रों के साथ इस मास की 'त्रिवेणी' भी उन्हें मिली। पं० देवदत्त शर्मा के कुशल सम्पादकत्त्व में प्रकाशित होनेवाली 'त्रिवेणी' अनेक प्रतिष्ठित परिवारों में नियमित रूप से खरीदी जाने लगी थी। नागर भी रुचि के साथ 'त्रिवेणी' पढ़ा करते थे।

परन्तु इस मास की 'त्रिवेणी' पर सम्पादक के स्थान पर देवदत्तजी का नाम न देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने उत्सुकतापूर्वक संपादकीय टिप्पणियाँ देखीं, तो अन्त में संचालक की ओर से दी गई एक संक्षिप्त-सी सूचना द्वारा ज्ञात हुआ कि पं० देवदत्तजी शर्मा लम्बी अस्वस्थता के कारण 'त्रिवेणी' का सम्पादन करने में असमर्थ हैं, अतः उन्हें विवश होकर नवीन सम्पादकीय व्यवस्था करनी पड़ी है।

नागर तत्काल बैठक से उठकर 'त्रिवेणी' का यह अङ्क हाथ में दबाए, अपनी पत्नी नलिनी के निकट भीतर पहुँचे और बोले—'देवदत्तजी बहुत अस्वस्थ हैं, नलिनी!' 'त्रिवेणी' का सम्पादन भी अब वह नहीं कर रहे हैं।'

'त्रिवेणी' का नया अङ्क नागर के हाथ से लेते हुए नलिनी ने व्यग्रतापूर्वक कहा—'देखूँ, इसमें कोई सूचना है?'

'संचालक की ओर से एक संक्षिप्त-सी सूचना है।'

शीघ्रता के साथ वह सूचना पढ़कर नलिनी ने कहा—'लेकिन यह सूचना

बहुत अस्पष्ट है। इससे यह पता नहीं चलता कि देवदत्तजी ने स्वयं अवकाश-ग्रहण किया है, अथवा उन्हें इसके लिए विवश किया गया है।'

'सम्भावना यही है कि उन्हें विवश किया गया होगा।' नागर ने गम्भीरतापूर्वक कहा—'अस्वस्थता के समय भला, कौन पत्रकार यह चाहेगा कि उसकी आय का स्रोत एकदम बन्द हो जाए?'

'तो जाकर आप पता लगाइए न!' नलिनी ने अनुरोध के स्वर में कहा—'सुमित्रा से मुझे मालूम हुआ है कि देवदत्तजी बहुत ही भले मानुष हैं, बड़े ही सहृदय और उदार हैं; परन्तु दुनिया ने उनकी सरलता, निश्छलता और सहृदयता का बहुत ही अनुचित लाभ उठाया है।'

'दुनिया की बात जाने दो, नलिनी! स्वयं उनके ज्येष्ठ पुत्र हरीश ने उनकी निश्छलता का सबसे अधिक दुरुपयोग किया है और उनकी सारी आशाओं का रंगमहल ध्वस्त कर उन्हें असमय ही काल-कवलित होने पर विवश कर दिया है।' फिर एक क्षण रुककर उन्होंने कहा—'अच्छा, मैं अभी देवदत्तजी के घर जाकर सब बातों का पता लगाता हूँ।'

और, तत्काल नागर अपनी पोशाक बदलकर देवदत्त के घर की ओर चल पड़े।...

देवदत्त के घर पहुँचकर नागर ने देखा, बाहरी दरवाजा बन्द है। हौले-हौले उन्होंने दरवाजे की कुण्डी खटखटाई, तो एक स्वस्थ और चपल किशोर ने दरवाजा खोलकर दोनों हाथ जोड़ते हुए नागर का अभिवादन किया।

'तुम्हारे पिताजी से मिलने आया हूँ।' नागर ने कहा।

'आइए।' चपल किशोर ने कहा—'वह बीमार हैं।'

'इसीलिए तो मैं उन्हें देखने आया हूँ।' नागर ने भीतर पग बढ़ाते हुए कहा—'तुम्हारा नाम क्या है, भाई?'

'शम्भुदयाल!' उस चपल किशोर ने उनके आगे-आगे चलते हुए कह दिया।

'जय शम्भु ! जय शङ्कर !' नागर ने कहा—'सुन्दर नाम है। साक्षात् शङ्कर इस घर में रहते हैं।'

'शङ्कर तो कैलास में रहते हैं—हिमालय पर्वत पर !' शम्भु ने धीमे स्वर में कह दिया और मुड़कर एक क्षण के लिए नागर की ओर दृष्टिनिक्षेप किया।

किशोर के इस उत्तर से नागर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। अब तक वह सहन में पहुँच चुके थे। सहन से सटे हुए एक कमरे में देवदत्त की रुग्ण-शय्या दीखने लगी थी, अतः इच्छा रहने पर भी नागर अब शम्भु से और अधिक बातचीत न कर सके।

सहसा नागर को अपनी शय्या के सामने देख, देवदत्त ने साश्चर्य मुद्रा से कहा—'अरे, आप इस दीन-हीन की कुटिया में ?' और बिस्तर पर ही उठकर बैठने की उन्होंने चेष्टा की; किन्तु तनिक-सा उठकर लड़खड़ा गए और पुनः लेट गए।

'आप आराम से लेटे रहिए !' नागर ने वहीं पड़ी एक कुर्सी पर बैठते हुए कहा—'मुझे तो आज ही 'त्रिवेणी' का नया अङ्क देखने पर यह पता चला कि आप बीमार हैं।'

'हाँ, नागरजी !' देवदत्त ने कहा—'अब यह बीमार उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा है, जो जीवन-नाटक के पर्दे को सदा के लिए गिरा देता है।'

'उस क्षण की प्रतीक्षा अभी से न कीजिए, शर्माजी !' नागर ने ध्यान-पूर्वक देवदत्त के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखा और कहा—'अभी आपको अपनी बेटी का विवाह करना है और इस छोटे बच्चे का शिक्षण भी पूरा करना है न !'

'इच्छा तो यही थी, नागरजी !' देवदत्त ने एक ठण्ढी साँस छोड़ते हुए कहा—'लेकिन इच्छाएँ कब, किसकी पूर्ण होती हैं ? उस दुष्ट हरीश को लेकर कितनी ही इच्छाएँ मैंने कर रक्खी थीं; किन्तु एक भी तो पूरी न हो सकी।'

'लेकिन हरीश की दुष्टता से इस प्रकार अपना दिल तोड़ बैठना और इन बच्चों के प्रति अपने कर्त्तव्य-पालन से उदासीन हो जाना आप-जैसे समझदार व्यक्ति के लिए शोभाजनक नहीं, शर्माजी !'

'कुछ बातें ऐसी होती हैं, नागरजी !' देवदत्तजी ने करवट बदलते हुए कहा—'जिन पर मानव का वश नहीं चलता। लज्जा बेटी के विवाह और चिरजीव शम्भु की उचित शिक्षा-दीक्षा की चिन्ता-चिता पर मैं जीवन के अन्तिम श्वास तक जलता रहूँगा; लेकिन विवश हूँ कि कुछ कर न सकूँगा। भगवान् जाने, मेरी आँखें बन्द होने पर इनका क्या होगा। और मेरी आँखें बन्द होने में अब अधिक समय नहीं रहा, नागरजी !' कहते-कहते देवदत्त की आँखों में अश्रु-मुक्ता झलमला उठे।

'आप अपने जीवन से एकदम निराश न हों, शर्माजी !' नागर ने कहा—'ईश्वर करे, आप जैसा कह रहे हैं, वह हरगिज न हो। लेकिन ऐसा हुआ भी, तो मैं आपको यह वचन देता हूँ कि लज्जा और शम्भु दोनों मेरी पुत्री के ही साथ रहेंगे और इनका पालन-पोषण तथा शिक्षण-विवाह आदि उसी तरह होगा, जिस तरह मेरी पुत्री का।'

'मुझे सन्तोष ह कि एक हिन्दी साहित्यकार के प्रति आप-जैसे धनिक में इतनी आत्मीयता हिलोरें ले रही है। आपका यह आश्वासन पाकर अब मैं शान्तिपूर्वक अपनी आँखें बन्द कर सकूँगा, नागरजी !' देवदत्त ने धीमे स्वर में कहा और चुप हो गए।

निकट ही खड़ी लज्जा यह सब बातचीत सुन रही थी; लेकिन उसकी उपस्थिति का नागरजी और देवदत्तजी को शायद पता ही न चलता, यदि वह अचानक ही जोरों से सिसकियाँ भरकर रो न उठती।

नागर ने तत्काल कुर्सी से उठकर लज्जा के सिर पर अपना एक हाथ सहलाते हुए कहा—'इस तरह नहीं रोते, बेटी ! मैं जानता हूँ, मेरी और शर्माजी की बातें सुनकर तुम्हें क्लेश पहुँचा है; परन्तु तुम अपना धीरज तोड़ दोगी,

तो तुम्हारे पिताजी को असह्य कष्ट होगा।'

'इधर आ बेटी!' देवदत्तजी ने हाथ फैलाकर लज्जा को अपने पास बुलाया।

लज्जा सिसकती हुई अपने पिता के पलंग पर जा बैठी। उसकी पीठ थपथपाते हुए देवदत्त ने कहा—'रो मत बेटी! नागरजी को अच्छी तरह पहचान ले। मैं न रहूँगा, तो यही चाचाजी तेरे काम आएँगे।'

लज्जा की सिसकियाँ बन्द होने के स्थान पर और अधिक बढ़ गईं।

'शर्माजी, आप यह सब क्या कर रहे हैं?' नागर ने कहा—'बच्चों को इस प्रकार अधीर न होने दीजिए। ऐसी बातें करने से लाभ ही क्या?'

'लाभ क्यों नहीं है, नागरजी!' देवदत्तजी ने नागर की ओर दृष्टिनिक्षेप करते हुए कहा—'मेरी आँखें बन्द हो जाने पर इन बच्चों का जब कहीं कोई सहारा मुझे नहीं दीखता, तब इन्हें सहारा देने की जिस उदारता का आश्वासन आपने दिया है, उसका पता इन बच्चों को भी तो हो जाने दीजिए।' फिर एक क्षण रुककर पूछा—'शम्भु कहाँ है, बेटी?'

'अभी-अभी तो यहीं था, दादा!' सिसकियाँ भरते हुए रुक-रुककर लज्जा बोली—'पता नहीं, कहाँ चला गया।'

'होगा कहीं!' नागर ने कहा—'क्या उसे भी आप इसी तरह रुलाना चाहते हैं?'

'मैं नहीं नागरजी, ईश्वर ही इन बच्चों को रुलाने पर तुला बैठा दीखता है।'

'वह रहा शम्भु भैय्या!' लज्जा ने इसी बीच कहा।

'कहाँ गए थे, शम्भुदयाल?' नागर ने पूछा।

'आपके लिए पान के बीड़े लाने चला गया था।' कहते हुए शम्भु ने नागरजी के सामने पान के बीड़े कर दिए।

'बड़ा समझदार है, मेरा शंभु!' देवदत्त ने कहा—'आ बेटा, मेरे निकट आ!'

नागरजी को पान के बीड़े देकर शम्भु अपने पिता के निकट जाकर पलंग पर बैठ गया, फिर लज्जा की ओर देखते ही बोला—'अरे, तुम रो रही हो, बहिनजी?'

'नहीं, भैय्या!' कहकर लज्जा ने अपनी दोनों आँखें पोंछ डालीं।

'देख, बेटा!' देवदत्तजी ने कहा—'इन नागर चाचा को तू पहचान ले। इनका घर जानता है या नहीं? कभी कोई जरूरत पड़ी, तो इनके घर पहुँच सकोगे तुम?'

'क्यों नहीं, दादा!' शम्भु ने अपनी स्वाभाविक अल्हड़ता के साथ कह दिया—'इनके बँगले का नम्बर और मार्ग का नाम जान लेने पर जब आप कहेंगे, मैं इनके यहाँ पहुँच जाऊँगा।'

'देखा, नागरजी, इसकी प्रगल्भता को?' देवदत्तजी ने कहा—'भगवान् इसे सदा स्वस्थ और सुखी रक्खे।'

'अच्छा, तुम लोग अब खेलो-कूदो।' नागर ने स्नेहपूर्वक बच्चों की ओर देखते हुए कहा—'मैं तनिक देर तुम्हारे दादा से बात करना चाहता हूँ।'

'चलो भैय्या!' लज्जा ने शम्भु से कहा—'दादा के लिए सन्तरे का रस हम तैयार करें।'

'चलो!' कहकर शम्भु अपनी बहिन के साथ दूसरे कमरे में चला गया।

बच्चों के हटते ही देवदत्तजी की आँखें एकदम बरस पड़ीं। रुद्ध कण्ठ से उन्होंने कहा—'यदि वह दुष्ट पुत्र हरीश हम लोगों के प्रति इतना कृतघ्न न होता, तो आज मुझे यह बेचैनी शायद न होती।'

नागर यह सब देखकर मर्माहत हो उठे। उन्हें लगा कि जिन शर्माजी ने अपना सारा जीवन बड़े-बड़े संघर्षों से निरन्तर टकराते हुए बिता दिया, वही आज अपनी जीवन-संध्या में अपनी पुत्री लज्जा और छोटे पुत्र शम्भु

को इस संसार में सर्वथा निरावलंब छोड़ जाने की सम्भावना से अपना धैर्य खो बैठे हैं।

'उसकी बात सोचकर आप व्यर्थ परेशान होते हैं, शर्माजी ! जब वह आपकी सारी माया-ममता को ठोकर मार चुका और कोई सन्तोष उसने आपको नहीं दिया, तब उसकी नीचता का ध्यान कर इस प्रकार दुःखी होने से लाभ ही क्या ? समझ लीजिए, पूर्वजन्म का वह आपका सबसे बड़ा शत्रु है।'

'यही समझकर रहना पड़ता है, नागरजी !'

'अच्छा, 'त्रिवेणी' से आपने स्वयं सम्बन्ध-विच्छेद किया है अथवा संचालक ने आपको पृथक् कर दिया है ?'

'दोनों बातें सत्य हैं, नागरजी !'

'क्या मतलब ?' साश्चर्य मुद्रा में नागरजी ने प्रश्न किया।

'हाँ, दोनों बातें सच हैं, नागरजी !' देवदत्तजी ने कहा—'संचालक ने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं कि मुझे त्याग.पत्र दे देना पड़ा, जिसे उन्होंने फौरन मंजूर कर लिया।'

'मेरा अनुमान यही था। कोई बात नहीं।' नागर ने कहा—'आप तनिक भी चिन्ता न करें। आपके स्वस्थ होते ही मैं एक पुस्तक-माला का प्रकाशन आपके संपादकत्त्व में प्रारम्भ करना चाहता हूँ। नलिनी और सुमित्रा दोनों की यह हार्दिक इच्छा है।'

'स्वस्थ हो सका, तो आपको अपना सहयोग देने में मुझे आत्मीय सन्तोष होगा, नागरजी !'

'आप अवश्य स्वस्थ होंगे।' कुर्सी से खड़े होते हुए नागर ने कहा—'अच्छा, मैं अब चलता हूँ। हाँ, दवा किस डाक्टर की कर रहे हैं आप ?'

'किसी की नहीं, चाचाजी !' यह स्वर लज्जा का था, जो सन्तरे का रस एक प्याले में लेकर अपने पिता को पिलाने के लिए वहाँ आ पहुँची थी और चुपचाप खड़ी थी।

'यह तो इन बच्चों के ही साथ नहीं, प्रत्युत अपने शरीर के साथ भी बहुत बड़ा अन्याय है, शर्माजी!' नागर ने मर्मभेदी दृष्टि से देवदत्तजी की ओर देखते हुए कहा।

देवदत्तजी चुपचाप पड़े रहे। कुछ नहीं बोले।

'अच्छा, डाक्टर राय को मैं आज आपके पास भेजूंगा। मेरा नौकर उनके दवाखाने से दवा लाकर यहाँ दे जाया करेगा।' और देवदत्तजी को अभिवादन कर नागर चले गए।

-२८-

घर पहुँचकर नागर अपनी बैठक में चुपचाप बैठ गए। पोशाक बदलने की भी उन्हें सुधि नहीं रही। देवदत्तजी की जो गिरती हुई दशा देखकर वह अभी-अभी आए हैं, वह एक शूल बनकर उनके हृदय को बेध रही है। एक मार्मिक वेदना से वह आक्रान्त हो उठे हैं। आखिर इस साहित्यिक तपस्वी के असामयिक और आसन्न अवसान के लिए कौन उत्तरदायी है? समाज, उनका ज्येष्ठ पुत्र अथवा उन पत्रिकाओं के संचालक, जिनका सम्पादन कर देवदत्तजी ने अपना सारा जीवन गला दिया?

देवदत्त के तीन रूप नागर की नजरों में झूल रहे थे। पहला रूप एक कुशल कथाकार का था, दूसरा एक सद्गृहस्थ का और तीसरा एक सफल सम्पादक का। इन तीनों रूपों में देवदत्त शर्मा की सेवाएँ, उनका पार्थिव शरीर नष्ट हो जाने पर भी युग-युग तक स्मरणीय और अनुकरणीय रहेंगी। किन्तु यह कैसी विडम्बना है कि उनके जीवित रहते, उनकी इन सेवाओं का उचित मूल्यांकन किसीने नहीं किया।

नागर कुछ और गहराई में उतरकर सोचने लगे। कथाकार के रूप में देवदत्तजी ने अपने उपन्यासों और कहानियों में समाज के शोषित-पीड़ित और उपेक्षित वर्ग को कितना ऊँचा उठाया और आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद का प्रतिनिधित्त्व करनेवाले कितने ही ऐसे अमर चरित्रों की सृष्टि की, जो समाज के उत्थान और उत्कर्ष में युग-युग तक सहायक होंगे। परन्तु समाज ने इसके बदले देवदत्तजी को क्या दिया?

समाज की बात तो दरकिनार रही, स्वयं उनके ज्येष्ठ पुत्र ने देवदत्त को क्या दिया? उनकी एक भी इच्छा पूरी नहीं होने दी उस कृतघ्न हरीश ने! अपने पिता के उपन्यासों और कहानियों के अनुकरणीय चरित्रों का ही यदि इस हरीश ने विवेक के साथ अध्ययन किया होता, तो देवदत्तजी को आज अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में यह न कहना पड़ता कि यदि हरीश उनके प्रति कृतघ्न न होता, तो उन्हें यह बेचैनी न होती!

और, उन पत्र-संचालकों ने भी देवदत्तजी का सदा शोषण ही किया, जिनकी पत्र-पत्रिकाओं का कुशल सम्पादन कर देवदत्त ने अपना सारा जीवन गला दिया। कहने को तो गान्धीवादी-युग में हमारा देश आज पनप रहा है, सर्वोदय-सिद्धान्तों का आज जोरों से प्रचार किया जा रहा है; परन्तु इस प्राणान्तक शोषण और पीड़न का अस्तित्त्व प्रत्येक संस्था में इतनी गहराई तक प्रवेश कर चुका है कि उसके उन्मूलन का स्वप्न कब पूरा होगा, इसे हम विश्वासपूर्वक कहने का साहस नहीं कर सकते।

नागर अपनी बैठक में बैठे हुए देवदत्त के जीवन की विडम्बनाओं पर जब इस प्रकार अभिभूत हो रहे थे, तभी घर के नौकर ने उनकी पत्नी नलिनी को भीतर यह खबर दी कि मालिक बाहर से वापस आ गए हैं और बैठक में चुपचाप बैठे कुछ सोच रहे हैं।

नलिनी तत्काल बैठक में जा पहुँची। देवदत्तजी के समाचार जानने की उसे प्रबल जिज्ञासा जो थी! नलिनी ने देखा, सचमुच नागरजी चुपचाप बैठे किसी गहन विचार-धारा में अवगाहन कर रहे हैं।

दो-एक क्षण चुपचाप खड़े रहने के बाद नलिनी ने कहा—'अरे, आप वापस आकर यहीं बैठ रहे! पोशाक भी नहीं बदली अब तक?'

नागर ने नलिनी की ओर उन्मुख होते हुए कहा—'मैं पोशाक बदलने की बात एकदम भूल गया, नलिनी!'

'देवदत्तजी का समाचार भी आपने नहीं सुनाया?'

'क्या सुनाऊँ, यही तो विचार रहा था।'

'क्यों , ठीक तो हैं शर्माजी ?'

'नहीं !' नागर ने विषादपूर्ण मुद्रा से कहा—'उनकी दशा बहुत गम्भीर है, नलिनी ।'

'तभी उन्होंने 'त्रिवेणी' से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया होगा ?' नलिनी ने एक कुर्सी पर बैठते हुए नागर से दूसरा प्रश्न किया।

'सम्बन्ध-विच्छेद की बात रहस्यपूर्ण है, नलिनी।' नागर ने कहा—'शर्माजी कह रहे थे, संचालक द्वारा ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी गई कि उन्हें त्याग पत्र दे देना पड़ा, जिसे फौरन मंजूर कर लिया गया।' एक क्षण रुककर नागर ने फिर कहा—'और इसका कारण मैं जहाँ तक समझ सका हूँ, देवदत्तजी की अस्वस्थता नहीं, बल्कि प्रेस-कमीशन की स्थापना है। यह प्रेस-कमीशन पत्रकारों की दयनीय स्थिति की जो छानबीन कर रहा है, उसके फल-स्वरूप पत्रकारों की वेतन-वृद्धि अनिवार्य हो जाएगी। इस दशा में अनेक पत्र-संचालक पुराने पत्रकारों को पृथक् करने के पचासों कारण उपस्थित कर देंगे और नवीन नियुक्तियाँ कर अपनी बचत का मार्ग प्रशस्त कर लेंगे।'

'गान्धीवादी देश के पूँजीपतियों की यह प्रवृत्ति बहुत ही गर्हित है।' नलिनी ने एक साँस छोड़ते हुए कहा।

'व्यक्तिगत स्वार्थ के आगे उचित-अनुचित का ध्यान रखना और दूसरों की आलोचना का स्वागत करना अब तक हमारे देशवासियों ने सीखा ही नहीं, नलिनी !'

'अच्छा, देवदत्तजी किस डाक्टर की दवा करा रहे हैं ?'

'किसी की नहीं।'

'अरे, आप कह रहे हैं, उनकी दशा बहुत गम्भीर है, फिर भी वह दवा नहीं करा रहे हैं ?'

'नहीं, नलिनी ! वह अपने जीवन से इतने निराश हो चुके हैं कि जीवित रहने की शायद कोई आकांक्षा उनमें नहीं रह गई है।'

'और इस निराशा का कारण उनका वही कृतघ्न पुत्र होगा!'

'यही बात है, नलिनी ! उनके जीवन की समस्त आशाएँ आकाश-कुसुम होकर रह गईं; उनके सारे अरमान ध्वस्त हो गए। इस दशा म जीवन के प्रति उनमें क्या अनुराग रह सकेगा! लेकिन वह अपने छोटे बच्चे और पुत्री के लिए बहुत चिन्तित हैं।'

'आपने उन्हें इस चिन्ता से मुक्त करने का आश्वासन नहीं दिया? ऐसे साहित्यिक ऋषि के प्रति हमें अपना सर्वस्व भी लगा देना पड़े, तो कम होगा। फिर, एक पुत्री के अतिरिक्त हमारी संपत्ति का कोई दूसरा अधिकारी भी तो नहीं। और देवदत्तजी के बड़े पुत्र की कृतघ्नता को देखते हुए, मैं अब आकांक्षा भी नहीं करती कि कोई पुत्र हमारे घर में जन्म ले। आज के दूषित वातावरण में इने-गिने पुत्र ही माता-पिता को सुखी रख पाते हैं।'

'देवदत्तजी को चिन्ता-मुक्त करने की मैंने पूरी चेष्टा की है, नलिनी! मैं स्पष्ट शब्दों में कह आया हूँ कि आप अपने दोनों बच्चों की तनिक भी चिन्ता न करें। उनका पालन-पोषण और शिक्षण-विवाह आदि सब मेरी पुत्री के समान ही होगा।'

'इससे उन्हें कुछ शान्ति मिली या नहीं?'

'हाँ, नलिनी!'

'अच्छा, आज संध्या समय मैं सुमित्रा के साथ उनके दर्शन करने जाऊँगी।' नलिनी ने कहा—'किसी डाक्टर को भेजकर उनके उपचार की व्यवस्था नहीं की आपने?'

'कर चुका हूँ, नलिनी! डॉ० राय आज जाकर उन्हें देखेंगे और उनका उचित उपचार प्रारंभ हो जाएगा।'

'बस ठीक है। अब चलकर नहा-धो लीजिए। भोजन तैयार हो चुका है।'

'चलो!' कहकर नलिनी के साथ ही नागर भीतर चले गए।

—२९—

इलाहाबाद के हवाई अड्डे—बमरौली—से जब वायुयान ने उड़ान भरी, तब मौसम बिलकुल साफ था। प्रफुल्ल अपनी सीट पर बैठा-बैठा कभी निर्मल आकाश और कभी दूरातिदूर भागती-सी वसुन्धरा की हरियाली देख रहा था। परन्तु नैसर्गिक छटा से सदा तृप्ति का अनुभव करनेवाला प्रफुल्ल आज एक अविदित-सी उदासी का अनुभव कर रहा था। यह उदासी बहुत-कुछ वैसी ही थी, जैसी अपनी पत्नी शैल को छोड़कर कलकत्ते जाते समय प्रफुल्ल को हुआ करती थी।

प्रफुल्ल के अन्तर्मन ने स्वीकार किया कि आज वह सुमित्रा को छोड़कर कलकत्ता जा रहा है, कदाचित् इसीलिए एक प्रच्छन्न-सा अवसाद उसके अन्तराल में बिखर गया है और उसे अभिभूत कर बैठा है। आखिर यह सब क्यों न हो, जब यह सुमित्रा अचानक और अनाहूत-सी आकर प्रफुल्ल के मन-प्राणों पर उसी प्रकार छा गई है, जिस प्रकार किसी अगाध सागर का उज्ज्वल-उच्छल ज्वार, तट पर बिखरी बालु-राशि पर अपना आँचल फैला, उसे ढक लेता है। किसी उत्तुङ्ग पर्वत-शिखर पर जिस प्रकार दिवाकर की सुनहरी धूप सहसा स्वर्ण बिखेरकर उस पर्वत-शिखर को स्वर्णिम बना देती है—अपने ही रङ्ग में रँग लेती है, ठीक इसी भाँति इस सुमित्रा ने प्रफुल्ल के एकाकी और रसहीन होते जीवन में सरसता की मादक बूँदों की वर्षा कर उसे आत्मविभोर कर दिया है। प्रफुल्ल के जीवन के मरुप्रदेश में यह सुमित्रा शाद्वल बनकर आ गई है।

प्रफुल्ल मन-ही-मन उस मङ्गल-वेला की कल्पना करने लगा, जब सुमित्रा उसकी जीवन-संगिनी बनकर उसके साथ एकाकार हो जाएगी। रेशम की चिकनी, मुलायम और उलझी लच्छियों–सी सुमित्रा की कुन्तल-राशि के काल्पनिक स्पर्श का अनुभव कर प्रफुल्ल आत्मविभोर हो उठा। परन्तु अधिक देर तक वह आत्मविभोर न रह सका।

वायुयान जिस स्वच्छन्दता और मस्ती से उड़ा जा रहा था, उसमें सहसा एक व्यतिक्रम आ गया। न केवल विमान की गति कुछ मन्द-मन्थर-सी प्रतीत हुई, बल्कि 'बम्पिङ्ग' भी होने लगा। प्रफुल्ल कई बार हवाई यात्रा कर चुका था, अतः वह जानता था कि वायुयान में ऐसे धक्के और झटके तभी लगते हैं—बम्पिङ्ग तभी होता है—जब वायुमण्डल में तूफान अथवा बादलों की सर-गर्मी रहती है। उसने खिड़की में से झाँककर वसुन्धरा की ओर दृष्टि फेंककर देखा, तो आँधी-पानी का विकट दृश्य देख, वह स्तब्ध रह गया। मूसल-धार पानी तो बरस ही रहा था, साथ ही आँधी और तूफान भी था।

बम्पिङ्ग क्रमशः जोर का होने लगा। सभी यात्रियों के मुख पर गहन विषाद की रेखाएँ उभर आईं। यद्यपि सीट के कमरपट्टों द्वारा सभी यात्री अपनी-अपनी सीट से बँधे हुए थे, फिर भी कुछ यात्रियों को वमन होने लगा और कुछ को चक्कर आने लगे। प्रफुल्ल दो-एक बार पहले भी ऐसी स्थिति में पड़ चुका है और बम्पिङ्ग का अभ्यस्त हो चुका है। उसे न तो चक्कर आए, न वमन हुआ।

वायुयान सहसा ऊँचा उठने लगा। आँधी-पानी से मुक्ति पाने का यही एक उपाय था। ज्यों-ज्यों अधिक ऊँचाई पर विमान उड़ने लगा, बम्पिङ्ग कम होने लगा। प्रफुल्ल ने खिड़की में से झाँककर देखा, उसका वायुयान अब बादलों के ऊपर—बहुत ऊपर—उड़ रहा था। विमान के नीचे विभिन्न रङ्गों के बादलों की दौड़, मेघों की गर्जना, बिजली की चमक, नीचे होनेवाली वर्षा और ऊपर से उस वर्षा पर पड़नेवाली सूर्य की सुनहरी किरणें एक अद्भुत दृश्य का सृजन कर रही थीं। बरसते पानी में इन्द्रधनुष के सातों रङ्ग

बहुत ही मोहक दीख रहे थे। प्रफुल्ल यह देखकर आत्मविभोर हो उठा।

प्रफुल्ल को लगा, बादलों के नीचे तो सभी लोग पृथ्वी पर रहते हैं, परन्तु बादलों के ऊपर, वायुयान में उड़कर ही हम जा सकते हैं। वायुयान का बम्पिङ्ग अब तक बहुत कम हो गया था और पृथ्वी पर बिखरी हरियाली आदि का आकार जितना छोटा दीख रहा था, वह इस बात का प्रमाण था कि हवाई-जहाज इस समय बहुत अधिक उँचाई पर उड़ रहा है। वायुमण्डल में अधिक शीत का अनुभव भी होने लगा था।

प्रफुल्ल ने सन्तोष की एक हलकी-सी साँस ली। यह सन्तोष उसे इसलिए हुआ कि कहीं ऐसे आँधी-पानी में वायुयान किसी दुर्घटना का शिकार हो जाता, तो सुमित्रा से एकाकार होने की जिस मंगल वेला की आशा में अभी-अभी वह आत्मविभोर हो रहा था, वह कल्पना मात्र ही रह जाती और उसकी आशाओं का सुनहरा महल ही ध्वस्त हो जाता।

परन्तु इस सन्तोष का अनुभव भी प्रफुल्ल अधिक समय तक न कर सका। जाने क्या हुआ कि वायुयान पुनः नीचे की ओर उतरने लगा और बादलों के बीच उड़ने लगा। आँधी-पानी से टक्कर लेते हुए वायुयान में पुनः जोरों का बम्पिङ्ग होने लगा। अब सभी यात्रियों की बेचैनी बढ़ने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि महाकाल अपना विकट मुँह फैलाए उस वायुयान को निगल जाने के लिए छटपटा रहा है और सभी यात्रियों का किसी प्रलय में सदा के लिए विनष्ट हो जाना अब सन्देह से दूर नहीं है।

प्रफुल्ल की मनोदशा भी अब डावाँडोल हो उठी। उसे रह-रहकर सुमित्रा का ध्यान आ रहा था। तो क्या सुमित्रा के दिवंगत पिता की अधूरी इच्छा को पूरा करने का मैंने जो संकल्प किया और सुमित्रा ने जिसके फलस्वरूप मेरी ओर इतना अनुराग दिखलाया, वह सब एक खेल ही रह जाएगा? क्या सुमित्रा के पिता की अधूरी इच्छा कभी पूरी न होगी? क्या सुमित्रा आजीवन अधूरी नारी रहेगी? कौन जाने, क्या होगा? जब अपने ही जीवन का अस्तित्त्व संकट में है, तब किसका क्या होगा,

यह सब विचार करना भी इस समय प्रफुल्ल को अच्छा न लगा।...

वायुयान का बम्पिङ्ग उत्तरोत्तर बढ़ता गया। आँधी-पानी का वेग भी बढ़ता जा रहा था। पता नहीं, वायुमण्डल में सहसा यह परिवर्त्तन कैसे हो गया? इलाहाबाद से चलते समय मौसम बिलकुल साफ था, आकाश एकदम निर्मल था। लेकिन दो सौ मील की यात्रा करते-करते वायुयान को ऐसे संकट में फँस जाना पड़ेगा, यह तो कल्पना से भी परे था!

लेकिन मानवीय कल्पनाओं और संकल्पों के परे भी कोई शक्ति अपना अलौकिक अभिनय करती रहती है; अदृष्ट की प्रबलता अचानक ही मानव की सुनहरी आशाओं का महल ध्वस्त कर देती है और अकल्पित घटनाएँ इस संसार में घटकर रहती हैं, इसे मानव समझ ही कब सका है?

सहसा वायुयान के इंजन में खराबी आ गई। विमान-चालक ने उसे एकदम नीचे उतारने की चेष्टा की; परन्तु यह चेष्टा सर्वथा विफल रही और वायुयान का इंजन सहसा वज्रघोष के साथ फट पड़ा—आग की सर्वभक्षी ज्वालाएँ लपलपा उठीं। ऊबड़-खाबड़-सी एक पहाड़ी भूमि पर वायुयान क्षत-विक्षत होकर गिर पड़ा।...

—३०—

रात में नलिनी और निर्मल नागर बहुत देर तक देवदत्त शर्मा और कुमारी सुमित्रा के जीवन की विडम्बनाओं पर अभिभूत रहे। नागर के अनुरोध पर डाक्टर राय ने देवदत्त शर्मा के घर जाकर न केवल बारीकी से उनके स्वास्थ्य की परीक्षा की, प्रत्युत उनका उचित उपचार भी प्रारम्भ कर दिया है। परन्तु रात में डाक्टर राय ने टेलीफोन पर नागर को देवदत्तजी के सम्बन्ध में जो संवाद दिया था, वह बहुत ही निराशाजनक था।

डा० राय जब देवदत्त के संबंध में टेलीफोन द्वारा नागर से बातचीत कर रहे थे, तब नलिनी भी नागर के पास बैठी थी।

टेलीफोन द्वारा बात पूरी हो जाने पर नलिनी ने स्वभावतः चिन्तित होकर नागर से पूछा था—'तो क्या देवदत्तजी का स्वास्थ्य अब . . .?'

'जवाब देने की घड़ियाँ गिन रहा है !' नागर ने नलिनी की बात पूरी करते हुए कहा—'हाँ, नलिनी ! अब ऐसी ही आशंका है।'

'लेकिन संध्या समय जब मैं सुमित्रा के साथ उन्हें देखने गई थी, तब तो वह बराबर बातचीत कर रहे थे। बेहोशी अथवा आसन्न अवसान का कोई लक्षण नहीं दीख रहा था।'

'यह आवश्यक नहीं है नलिनी, कि अवसान की घड़ियाँ गिननेवाले प्रत्येक मानव को बेहोशी आती हो। कुछ लोग तो अन्तिम क्षण तक बात-चीत करते रहते हैं और पूरी तरह होश में रहते हैं।'

'लेकिन बहुत बुरा सम्वाद है!' नलिनी ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—'हम लोगों को पहले ही देवदत्तजी की बीमारी का पता लग जाता, तो सम्भव है...।'

'उनकी मृत्यु टल जाती?' नागर ने विक्षुब्ध होते हुए कहा—'यही तुम कहना चाहती हो, नलिनी? लेकिन यह तुम्हारा भ्रम है—बहुत बड़ा भ्रम। विधि-विधान के समक्ष मानव का कोई प्रयत्न सफल नहीं हो सकता।'

'मानती हूँ कि विधि-विधान को मिटा देने की क्षमता मानव में नहीं है।' नलिनी ने कहा—'यदि ऐसा होता, तो इस संसार में सम्राटों की मृत्यु कभी न होती। और देवदत्तजी ने अपने पुत्र हरीश को बनाने-सुधारने में आखिर क्या कमी रक्खी; लेकिन यह विधि-विधान ही तो है कि वही पुत्र उनके लिए एक स्वप्नजाल सिद्ध हुआ, वह सदा हाथी के दाँत जैसा ही देवदत्तजी के लिए निरर्थक रहा।'

'हाँ, नलिनी! उसी पुत्र की कृतघ्नता और दुर्व्यवहारों से आज असमय ही देवदत्तजी काल-कवलित हो रहे हैं।' फिर एक क्षण रुककर नागर ने कहा—'मुझे तो यह संसार ही एक स्वप्नजाल प्रतीत होता है, नलिनी! मानव की इच्छाएँ यहाँ कभी पूरी नहीं होतीं, वे आकाश-कुसुम बनकर मानव को सदा बेचैन बनाए रहती हैं। दूर जाने और सोचने-विचारने की आवश्यकता नहीं। सुमित्राजी का जीवन भी मुझे ऐसी ही विडम्बनाओं से भरा प्रतीत होता है। बेचारी अब तक जीवन का सच्चा सुख नहीं पा सकी।'

'इधर तो घोष साहब से उसकी काफी घनिष्ठता बढ़ रही है और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब वह जीवन के सच्चे सुख का स्पर्श शीघ्र ही कर सकेगी।'

'घनिष्ठता की बात मैं भी जानता हूँ।' नागर ने कहा—'लेकिन वह इस सीमा तक बढ़ गई है, इसका मुझे कोई पता नहीं था।

'अजी, किसी सीमा-वीमा की कल्पना मत करें!' नलिनी ने तमतमाते हुए कहा—'मैंने तो यों ही प्रसङ्ग छिड़ने पर अपनी संभावना प्रकट कर दी।'...

इसी तरह की बातें करते हुए यह दम्पति बहुत रात तक अभिभूत रहा। उनकी पुत्री लता भी कुछ देर तक इनकी बातें सुनती रही और जागती रही; लेकिन दस बजते-बजते उसे नींद सताने लगी और वह इस समय गहरी नींद ले रही थी।

लगभग ग्यारह बजे नागर और नलिनी भी अपने-अपने बिस्तर पर जाकर लेटे ही थे कि सहसा टेलीफोन की घण्टी टनटना उठी।

'ओफ! इतनी रात को भी यह टेलीफोन दम नहीं लेने देता!' नागर ने खीझते हुए कहा और टेलीफोन के निकट जाकर उसका रिसीवर सँभालते हुए कहा—'हलो!'

टेलीफोन के दूसरे छोर से क्या समाचार आया और किसने क्या कहा, इसे नलिनी अपने बिस्तर पर लेटे रहने के कारण सुन नहीं सकी। लेकिन नागर की यह अभिव्यक्ति उसके कानों में प्रवेश कर सहसा झनझना उठी और उसे स्तब्ध कर बैठी—'बहुत बुरा हुआ, डाक्टर...!'

नलिनी तत्काल अपने बिस्तर से उठकर नागर के निकट जा पहुँची और पूछ बैठी—'आखिर क्या हुआ?'

'वही, जिसकी हम आशंका कर रहे थे, नलिनी!' नागर ने दबे कण्ठ से कहा—'देवदत्तजी की हृदय-गति सहसा रुक गई।'

'डाक्टर राय की उपस्थिति में ही या....?'

'हाँ, डाक्टर राय इस समय भी वहीं हैं।' नागर ने कहा—'शर्माजी के पड़ोस में ही जो पुलिस-थाना है, वहीं से टेलीफोन किया है उन्होंने।' फिर एक क्षण रुककर वह बोले—'मैं अभी वहाँ जा रहा हूँ, नलिनी! देवदत्त-जी के बच्चों को जाकर छाती से लगाना इस कालरात्रि में सबसे पहली आवश्य-कता है। सुबह शर्माजी की अन्त्येष्टि का प्रबन्ध किया जाएगा।'

'अवश्य जाइए।' नलिनी ने मर्माहत होते हुए कहा—'सुबह होते ही मैं नौकर को वहाँ भेजूंगी। उसके साथ देवदत्तजी के दोनों बच्चों को आप

यहाँ भेज दीजिएगा।' फिर एक ठण्ढी साँस छोड़ते हुए कहा—'वह कृतघ्न पुत्र हरीश आखिर पितृहन्ता भी सिद्ध हुआ। धिक्कार है उसके मानव-जीवन पर। उसे भी खबर देंगे क्या ?'

'जिसने अपने पिता के जीवित रहते कभी उनके सुख-दुख की खबर नहीं ली; बल्कि सदा उन्हें कलपाया, उसे उनके देहान्त की खबर देने से ही क्या होगा, नलिनी ! जिस हरीश की कृतघ्नता का स्मरण आते ही देवदत्तजी की आत्मा चीख पड़ती थी और मैं जानता हूँ, ऐसी ही किसी चीख के साथ उनकी हृदय-गति सहसा बन्द हुई होगी, उसे खबर देकर मैं उस दिवंगत आत्मा को अशान्ति प्रदान करने का पाप नहीं बटोर सकता।' और नागर अपने कपड़े बदलने चले गए।

नलिनी की आँखें ही नहीं, हृदय भी गीला हो उठा। वह चुप रही।

नागर अपनी पोशाक बदल रहे थे कि टेलीफोन की घण्टी पुनः जोरों से टनटना उठी। नागर ने कपड़े बदलते हुए कहा—'नलिनी, तनिक सुनो तो, कौन क्या कह रहा है ?'

'अच्छा!' कहकर नलिनी ने जाकर इस बार टेलीफोन का रिसीवर सँभाला—'हल्लो !'

टेलीफोन पर क्या सम्वाद मिला, इसे जानने के लिए नागर बहुत व्यग्र हो उठे। कुरता पहनते हुए नलिनी के पास ही आकर वह खड़े हो गए थे। उन्होंने नलिनी को टेलीफोन पर यह कहते हुए देखा—'मैं अभी आ रही हूँ, बहिन! तुम घबराओ नहीं।'

'क्या बात है , नलिनी ?' नागर ने अधीरता के साथ पूछा—'किसका फोन है ? इतनी रात में तुम कहाँ जा रही हो ?'

'सुमित्रा बहिन के पास!' नलिनी ने घबराहट के साथ कहा—'प्रफुल्ल-जी की कोठी से सुमित्रा को अभी-अभी फोन पर संवाद मिला है कि आज

सुबह प्रफुल्लजी जिस वायुयान से कलकत्ता जा रहे थे, वह मार्ग में चकनाचूर हो गया और एक भी यात्री जीवित नहीं बचा।'

'क्या कह रही हो, नलिनी!' नागर को जैसे उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने फौरन प्रफुल्ल घोष की कोठी पर ही नहीं, स्थानीय अँगरेजी दैनिक पत्र के सम्पादकीय विभाग में भी टेलीफोन करके इस हृदय-विदारक सम्वाद की सत्यता का प्रमाण लेना चाहा।

नलिनी हत्बुद्धि-सी वहीं खड़ी रही। टेलीफोन द्वारा जब नागर को उक्त दु:संवाद की सत्यता का पता चला, तो उनकी मुद्रा एकदम विवर्ण हो उठी। वह अपना मस्तक थामकर वहीं कुर्सी पर बैठ गए।

'आज की रात सचमुच कालरात्रि है, नलिनी!' नागर ने रुद्ध कण्ठ से कहा—'दु:संवादों का ताँता-सा लग रहा है।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'प्रफुल्लजी का मुझे बड़ा सहारा था; लेकिन आज वह भी टूट गया। वैज्ञानिक युग ने मानव को जो अप्रत्याशित सुविधाएँ प्रदान की हैं, उन्हीं में मानव का अनपेक्षित विनाश भी सन्निहित है।'

'उस बेचारी सुमित्रा का अब क्या होगा?' नलिनी ने अपनी गीली आँखें आँचल के एक छोर से पोंछते हुए कहा—'वह भी बड़ी अभागिन है। मैं समझ रही थी कि अब सुमित्रा जीवन के सच्चे सुख का स्पर्श करनेवाली है; परन्तु यह कैसा वज्रपात हो गया बेचारी पर। उसकी भी सारी आकांक्षाएँ आकाश-कुसुम बनकर रह गईं।'

'अभावों और बेचैनियों से टकराना ही मानव-जीवन की कसौटी है, नलिनी! इस कसौटी पर खरा उतरनेवाला ही सच्चा मानव है। इस संवाद से जब तुम स्वयं घबरा उठीं, तब सुमित्राजी को क्या खाक धीरज बँधाओगी?'

'प्रयत्न तो समझाने का ही करूँगी।' नलिनी ने रुद्ध कण्ठ से कहा।

'अच्छा, अब जल्दी करो।' नागर ने कहा—'लता को जगा लो। तुम दोनों को सुमित्राजी के यहाँ छोड़ता हुआ मैं देवदत्तजी के घर चला जाऊँगा।'

'यही ठीक रहेगा।' कहकर नलिनी ने लता को जगाया और उसे तत्काल तैयार कर लिया।

नलिनी और लता के साथ नागर अपनी कार पर जा बैठे। अर्द्ध रात्रि के सघन अन्धकार को चीरनेवाले विद्युत् प्रकाश में, भरे हृदय और गीली आँखों के साथ नागर का परिवार, सुमित्रा के निवासस्थान की ओर तीव्रता से बढ़ा जा रहा था।

कार पर बैठी नलिनी की दृष्टि राजमार्ग से हटकर जहाँ-कहीं भी जाती, सर्वत्र कुहू अन्धकार का आँचल इस भू-मण्डल को आच्छादित किए एक क्रूर अट्टहास करता प्रतीत हो रहा था।

रात्रि का यह कुहू अन्धकार सहसा उमड़ती आँधी का योग पाकर बहुत ही भयावह लग रहा था। बिजली के जगमग प्रकाश में तीव्र गति से दौड़ती कार में बैठी नलिनी साफ देख रही थी कि राजमार्ग के दोनों किनारों पर खड़े विशालकाय वृक्षों के पत्ते अपनी शाखाओं से टूट-टूटकर इस आँधी के साथ लक्ष्यहीन-से इधर-उधर उड़ते जा रहे थे।

कार की खुली खिड़कियों की राह कितने ही उड़ते पत्ते नलिनी की गोद में गिर-गिरकर उसे यह समझने की प्रेरणा दे रहे थे कि ये उड़ते पत्ते जिस प्रकार आँधी के झोंकों से शाखाच्युत होकर सर्वथा अस्तित्त्वहीन हो रहे हैं, ठीक इसी प्रकार मानव भी परिस्थितियों की आँधी के झोंकों में, अपनों से दूर छिटककर बेगाना हो जाता है और इस संसार से कूचकर किसी दूसरे लोक का वासी हो जाता है।